विशेष

हमारे समाज की आज जो आर्थिक, कौटुम्बिक, नैतिक और मानसिक स्थिति है, उसकी—बाहर से देखने में फैली और बिखरी हुई, किन्तु यथार्थ में सम्बद्ध और शृङ्खलित—एक झलक इस अपने दसवें उपन्यास में देने की चेष्टा मैंने की है। मैंने इस विश्वास के साथ इसकी एक-एक पंक्ति लिखी है कि यही सत्य है, यही यथार्थ है। जहाँ कहीं मैंने ..चना अथवा प्रचार का अवलम्ब ग्रहण किया है, वहाँ भी मेरा लक्ष्य शिव ही रहा है।

और इतना ही मेरे संतोष के लिए यथेष्ट है।

एक

"मनुष्य आदर्श के लिए लड़ रहा है। लड़ते-लड़ते उसे कितने युग बीते। किन्तु उसकी लड़ाई का अन्त नहीं है। क्या इसलिए कि वह उसे छू नहीं पाता?—या इसलिए कि आदर्श एक कल्पना-भर है—स्वप्न?

नहीं।

मनुष्य के कन्धे समाज-भवन की चौखट से लगे हैं। वह अपनी योजनाओं को स्वतः पूर्ण कर नहीं पाता। उसे चाहिये अपने पीछे समाज की स्वीकृति का हाथ, उसका पोषण। किन्तु समाज की नीति-रीति और उसकी मान्यताएँ अतीत के अनुभवों—उनके निष्कर्षों—से आधारित रहती हैं। वे वर्तमान को नहीं देखतीं, वे भविष्य को भी नहीं देखतीं। और इसका फल यह होता है कि मनुष्य के अन्तर में आग लग जाती है। सुलगता हुआ मनुष्य कुछ काल तक चलता है—चलता रहता है। लेकिन यह चलना तो गति नहीं है। यह तो घसिटना है—दुर्गति।

इस दुर्गति से बचने का एक ही मार्ग है कि वह आग जो मनुष्य के अन्तर में लगी है, उसकी व्यक्तिगत न रहकर सम्पूर्ण समाज की हो जाय। तब समाज की नीति और उसके मान बदल सकेंगे और वह अपने उस आदर्श को पा सकेगा, जिसके लिए उसने लड़ाई प्रारम्भ की थी। किन्तु तब तक उसका आदर्श और आगे बढ़ जायगा।

उसे लड़ना है, लड़ते जाना है।"

सोचता हुआ गिरधारी उस दिन भी जब सोने के लिए पलँग पर गया, तो ग्यारह बज गया था। नींद उसे आजानी चाहिये थी, लेकिन आ नहीं रही थी।—"सबेरे ही उठकर तो सम्पादकीय लेख लिखना है। नौ बजते-बजते फ़ोरमैन मैटर माँगेगा।''तनख़ाह उसकी कई मास की चढ़ गयी है। आज कह रहा था—'पंडितजी, अब काम चल नहीं रहा। एक-एक दिन बड़ी मुश्किल से कटता है। किसी तरह कुछ रुपये का प्रबन्ध कर ही

संतोष नहीं हुआ। तभी उसने क्षण-भर रुककर फिर कहा—कल अच्छा हो जायगा।

'इसको जब कभी बुखार आता है, यह यही कहता है—कल अच्छा हो जायगा।' लक्ष् करता हुआ गिरधारी उसके उज्ज्वल भविष्य की बात सोचने लगा। आह्लाद की एक लहर आयी और उसके अन्तर में फैल गयी।

इसी क्षण पहले शीशे की छोटी गिलसिया में थोड़ा पानी उँडेलकर रेणु ने उसे पिला दिया; फिर अपनी धोती के अञ्चल से उसका मुँह पोंछ दिया।

रञ्जन थोड़ा उचका और कुछ निश्चय-सा करता हुआ बोला—कल हम को अपने साथ ले चलना। अच्छा बाबू!

"अच्छा, अच्छा। हम तुमको दफ़्तर ज़रूर ले चलेंगे। वहाँ तुमको तसवीरें दिखलावेंगे।" आश्वासन और उत्साह देते हुए गिरधारी कहने लगा। यद्यपि वह जानता है कि अभी दो-चार दिन रञ्जन बाहर जा न सकेगा।

पिता की बात सुनकर रञ्जन कितना प्रसन्न हुआ! विस्मयान्वित होकर वह पूछने लगा—तसवीरें! और सान्त्वना देते हुए गिरधारी ने उत्तर दिया—हाँ, तसवीरें। बहुत-सी दिखलायेंगे। अच्छा; अब तुम चुपचाप सो तो जाओ।

किन्तु रञ्जन एक बात और कहकर चुप होगा। उसे कहे बिना वह कैसे चुप हो! अधीर होकर वह बोला—लाल-लाल तसवीरें दिखलाना। अच्छा बाबू!

"अच्छा-अच्छा" कहते और उसकी पीठ को थपथपाते हुए गिरधारी ने फिर कहा—लेकिन तुम सो तो जाओ।

रञ्जन ने आँखें मूँद लीं।

गिरधारी जब दूसरे कमरे की ओर बढ़ने लगा, तो रञ्जन ने एक बार

चुक रक्खूँ। लेकिन क्या करूँ, जी नहीं मानता। मुझसे कहते हैं—चिन्ता मत करो; और वह चिन्ता होती है, वास्तव में उन्हीं की।

यह सोचती हुई रेणु फिर उठी और रञ्जन की खाट भीतर की ओर खसकाने लगी।

गिरधारी : अवस्था चालिस के लगभग। वदन एकहरा, वर्ण गेहुँआ। लम्बी नाक पर सुनहले फ्रेम के चश्मे का ब्रिज। खादी का कुरता पहनते [illegible] पैरों में अकसर चप्पल रहता है, कभी-कभी लाल महाराष्ट्री जूता, [illegible]ी एड़ी मुड़ी हुई। पैदल जरा तेज चलते हैं। काम के समय मजाक [illegible]ते हैं। हाथ में छाता-छड़ी कुछ नहीं रखते। सिर प्रायः खुला रह[illegible]है। बालों का एक गुच्छा कभी-कभी दायीं भौंह तक आ जाता है।

मजदूरों की सभा में भाषण देना है। संघ के मंत्री शर्म्माजी को घेरे हैं। उनका कथन है कि बिना आपके हमारी सभा कैसे सफल होगी! चलना तो पड़ेगा ही। और शर्म्माजी इक्के पर उस समय भी चले जा रहे हैं, जब मिलों के मालिक खस की टट्टियों के अन्दर अपनी दोपहर की नींद, ताश शतरंज अथवा कैरम की बैठकें भी नहीं पूरी कर पाते।···जिला-किसान-सभा का वार्षिकोत्सव है; और हो रहा है किसी गाँव में। सर्दी के दिन हैं और आजकल पाला गिर रहा है। लेकिन शर्म्माजी को जाना तो पड़ेगा ही। और वे चले जा रहे हैं! रात को जागरण, दिन को विचार-विमर्श; झगड़े और समझौते। सफ़र की थकान और आते-आते "संजीवन" का पिछड़ा हुआ कार्य-निर्वाह।···खाना खाने बैठे हैं और अन्दर खबर आ गयी कि वंशीधर के घर तलाशी हुई। पुलिस ने कुछ कागजात ले लिये और उसको गिरफ़्तार कर लिया। सोचने लगते हैं कि अगर यह वंशीधर जेल में ठूस दिया गया, तो फिर जिले-भर में किसानों के बीच कार्य कौन करेगा!···रात को जाते समय प्रूफ़ पर फ़ाइनल आर्डर दे गये थे। प्रातःकाल पत्र निकल जाना चाहिये था। किन्तु रात को चलते-चलते मालूम नहीं किस प्रकार मैशीनमैन का हाथ मैशीन में दबकर पिसकर रह गया!

रात को बारह बजे खबर मिली। ट्रैडिलमैन को हास्पिटल पहुँचाया। फिर उसके घर जाकर पिता-माता और भार्या को सक्रिय सान्त्वना दी।

विपिन एक कर्मठ युवक है। हजारों मजदूरों को अखबार पढ़ने योग्य बनाने का सारा श्रेय उसी को प्राप्त है। लेकिन बेचारा ग़रीब बहुत है। कांग्रेस का अधिवेशन मद्रास में हो रहा था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह इस अधिवेशन को अवश्य देखने का सुअवसर पाता। लेकिन इतना पैसा कहाँ था उसके पास कि वह जाने का साहस कर सकता। पहले से कुछ कहा भी नहीं उसने। जब चलने का दिन निटक आया, तो उसने कह दिया—शर्म्माजी, मुझे साथ न ले चलियेगा?

विपिन की बात सुनकर शर्म्माजी ने सोचा, इस प्रस्ताव के अन्दर एक कर्मठ किन्तु आर्थिक दृष्टि से असफल, निराश और पराजित—युवक की आकांक्षा है और उसे पूर्ण होना चाहिये। तब विचारों की आँधियाँ आयीं और गयीं। वे सोचने लगे—हम दूसरों की आँखों से प्रायः अपने को देखते हैं और वे आँखें देखती हैं हमारे बहिरङ्ग को। अन्तरंग हमारा उनकी आँखों में आ कहाँ पाता है! वे हमारे मन की बात क्या जानें? वे क्या जानें कि हमारी वास्तविक स्थिति कैसी है? वे तो केवल उतना जान पाते हैं जितना हमारे भीतर न रहकर कार्य के रूप में बाहर आकर प्रकट हो जाता है। यद्यपि वह भी हमारी कल्पना और योजना के लेखे होता अपूर्ण—और कभी-कभी तो अप्रत्याशित—ही है। इस प्रकार हमारा यथार्थ परिचय न संसार को मिल पाता है, न हमको।

—तो मन के अन्दर-ही-अन्दर उठने और घुमड़नेवाली आकांक्षाएँ और योजनाएँ कुछ नहीं हैं। किसी के जीवन और व्यक्तित्व की रेखाओं के साथ उनका कोई महत्व नहीं।—यदि उन्हें कार्य का रूप वह दे नहीं सका।

विपिन जिस समय साथ ले चलनेवाली बात वहाँ कह रहा था, उस समय रात थी और ग्यारह बज रहा थे। और दस बजे के लगभग शर्म्मा जी खद्दर-भंडार में थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि इस बार चेस्टर बनवा

लें। लेकिन इतना टाइम नहीं रह गया था कि चेस्टर वन सकता। तो भी यों ही चर्चा कर वैठे कि देखें, क्या जवाव मिलता है।

वोले—क्यों भई लियाक़त, दो रोज में चेस्टर नहीं सिलवा सकते ?

पहले तो लियाक़त ने सुनकर मुसकरा दिया; फिर वोला—आप भी ख़ूव हैं शर्म्माजी। परसों आपको जाना है और चेस्टर सिलाने की वात आप आज—सो भी इस वक़्त—कर रहे हैं, जव दुकानें वन्द होने को हैं।... खैर, मैं कोशिश करूँगा। आप कपड़ा पसन्द कर लीजिये और नाप दे दीजिये।...अरे भई रामप्रताप, जरा मास्टर घोप को तो देखना; शायद अभी दुकान न वढ़ाई हो।

और सचमुच घोप दूकान वढ़ाकर घर जा ही रहा था। शर्म्माजी का काम है, यह जानकर तुरन्त चला आया। शर्म्माजी ने कपड़ा पसन्द करके नाप दे दिया। यहाँ घर पर आये हुए अभी आधा घंटा भी न हुआ होगा।

तो इस समय विपिन की वात सुनकर उपर्युक्त वात सोचते हुए शर्म्माजी ने मुसकरा दिया। वोले—अच्छी वात है। लियाक़त भाई को मेरा यह पत्र दे देना। वहुत प्राइवेट है।

पत्र लेकर निराश विपिन विना स्पष्ट उत्तर पाये चलने लगा। उसे साहस नहीं हुआ कि अपनी याचना को एक वार फिर से दोहराये।

किन्तु उसी समय शर्म्माजी ने उसे रोककर कहा—और सुनो। चलने का प्रवन्ध हो जायगा। ट्रेन-टाइम से घंटाभर पहले यहीं आ जाना, भला।

और दूसरे दिन विपिन ट्रेन में शर्म्माजी के साथ वैठा कांग्रेस सेशन देखने जा रहा था।

लेकिन लियाक़त भाई को आज तक शिकायत है कि शर्म्मा जी स्वभाव के इतने सनकी हैं कि अपने ऊपर किसी की सद्भावना के जोर का स्पर्श तक नहीं आने देते। एकआध सज्जन से उन्होंने इस सिलसिले में कह भी डाला—मान लीजिये कि उनके पास रुपये की कमी थी। लेकिन इससे क्या!

क्या हम उनके पास तक़ाज़ा भेजते ! जब चाहते, तब रुपया भेज देते। अजीब आदमी हैं साहब, क्या कहा जाय !

और शर्म्माजी हैं कि इस भेद की चर्चा उन्होंने विपिन से भी नहीं की। रह गया लियाक़त। सो उनको सफ़ाई देने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी। कहनेवाले ने जब उनको सूचित किया, तो अपने सम्बन्ध में लियाक़त की शिकायत सुनकर ज़रा-सा हँस भर दिया और बस।

दो

"सृष्टि का कितना अद्भुत क्रम है ! कहाँ का जन्मा व्यक्ति और संसार भर में पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमता चक्कर काटता फिरता है ! शत-शत नारियाँ उसे मिलती हैं, संयोग से हो कि कार्यवश। उनकी थोड़ी-बहुत निकटता भी उसे मिलती है। परन्तु कहीं कोई न आँधी आती है, न तूफ़ान। संसार अपनी गति से चलता रहता है। किन्तु एक-न-एक दिन कहीं-न-कहीं कोई ऐसा संयोग भी आ जाता है, जब समाज और संस्कृति की समस्त सीमाएँ और मर्यादाएँ, अवसरों के अभाव और असुविधाएँ, दूर खड़ी रह जाती हैं। एक दूसरे को देखता है और देखता है। वह फिर-फिर कर देखता है। और देखता चलता है। नित्य, नहीं तो जब कभी अवसर मिला तब। न अवसर मिला, तो अवसर को वह मिलता है। अवसर उसे नहीं पहचानता, तो वह स्वयं अपने आपको अवसर के ऊपर फेंक देता है। विवश अवसर आते हैं और व्यक्ति को अपना पूरक मिल जाता है।

इस मिलन में रुपया बाधक होता है ?

नहीं।

समाज ?

वह भी नहीं।

संस्कृति, धर्म तथा राजव्यवस्था ? कहीं कोई नहीं। पुरुष और स्त्री

के प्रकृत मिलन में किसी प्रकार की कोई विषमता, कोई प्रतिरोध, बाधक नहीं है। मनुष्य की शक्ति, उसका साहस और शौर्य्य इस मिलन के सम्बन्ध में समस्त अवरोधों से ऊपर है। यदि वह इसमें असफल रहा है, आज तक रहता है और सोचता है कि भविष्य में भी रहेगा, तो यह एकमात्र उसकी अपनी निष्क्रियता, दुर्बलता और पराजयभावना है। सृष्टि ने उसको इस विषय में सर्वथा स्वतंत्र और विजयी बनाया है।"

कभी किसी ग्रन्थ में गिरधारी ने पढ़ा था। उस समय उसने इस कथन पर विशेष ध्यान नहीं दिया था। किन्तु आज—और इस समय, जब कि यहाँ नवाबगंज में वह कार्यवश आ गया है और इस चलते राजपथ पर प्रश्नों की झड़ी, उसके समक्ष वर्षा-सी, लग रही है—उसे यही वाक्य बार-बार स्मरण आ रहे हैं। न जाने क्यों?

"अरे आप यहाँ कहाँ मास्टर साहब?"

कुछ अपरिचित स्वर है। लेकिन कथन में यह माधुरी क्यों है? जान पड़ता है, व्यक्ति परिचित है। दृष्टि सामने जा पड़ती है।—ओः यह बात है। कुछ समझ में आ रहा है। अपरिचित और अज्ञात को स्मृति ने अपने अंक में भर लिया है। जान पड़ता है, सब कुछ स्पष्ट रूप से समक्ष आ गया है—वह, जो अपरिचित था और वह भी, जो परिचित था; वह जो अज्ञात था और वह भी जो ज्ञात था। जान पड़ता है; ज्ञात और अज्ञात, अपरिचित और परिचित दोनों-के-दोनों मिलन के पथ पर आ गये हैं।

निदान यह प्रश्न अकेला नहीं है। साथ में वे भी हैं, जिन्होंने प्रश्न किया है। वे गिरधारी के निकट आ रही हैं। पर वे हैं कौन?

यह जार्जेट की साड़ी; रंग हलका आसमानी, जिसमें उड़ते हुए बादलों का आभास। यह किनारे पर सफ़ेद चमकीला गोटा, जिससे पता चले कि कभी-कभी बिजली भी चमक उठती है। यह ब्लाउज़, जिसकी भूमि नारंगी, लेकिन छाप जिसमें अंगूर के बैजनी। गुच्छों और उनकी हरी-हरी पत्तियों की। ये गोरी मांसल अनावृत बाहें और स्कन्धमूल से ऊँचाई का पथ-निर्देश करनेवाले वक्ष-कन्दुक। ये नोकदार नयन, जिनमें आकर्षण

का मद और निमंत्रण। यह शृङ्खलित, नीचे की ओर पतली पड़ती हुई वेणी, गुम्फित, काली रेशमी चोटी को नितम्ब-प्रान्त के और नीचे तक लहराती हुई। अँगरेज़ी से एम्० ए० किया है। वायोलिन बजाने में कई प्रतियोगिता के पुरस्कार और पारितोषिक ले चुकी है। आजकल नृत्यकला में अभ्यास चल रहा है। हाथ में एक पतली जंजीर, जिसमें बँधा हुआ रेशम से मुलायम घने और बड़े-बड़े बालों का कुत्ता जीभ निकाले हाँफ रहा है, कभी-कभी आँखें मूँद-मूँदकर खोलता है।

एक बार देखकर शर्म्माजी विस्मित हो उठे।—'ऐसी नारी और उनसे परिचय!' कुछ सोचते हुए बोले—ओः तुम हो मालती। दूर से देखकर मैं तो हैरान हो उठा कि यह है कौन जो···। और कहो, अच्छी तरह हो न?

"आपकी कृपा से।"

उत्तर में शिष्टाचार है या व्यंग्य, कुछ स्पष्ट नहीं हो रहा है। व्यंग्य हो तो कहीं दूर—प्रच्छन्न - हो सकता है। इस समय तो शिष्टाचार-मात्र झलकता है।

"यों ही ज़रा एक काम से आ गया था।"

जी, तो आप बेकाम भी आते-जाते हैं!

"लेकिन इस तरह यहाँ पैदल कैसे?"

प्रश्न में आभिजात्य है, लक्ष् कर लेते हैं। तो भी उत्तर देते हैं—क्यों, दस क़दम पर इक्का या बस जो मिलेगा!

एक खिल-खिल और मुसकराहट के बीच की हँसी। पश्चिम की ओर संकेत करती हुई बोली—इतनी दूरी को आप दस क़दम कहते हैं!··· (विस्मय के साथ चेष्टा थोड़ी बदलती है। कुत्ता चलने को जिद करता है, तो उसको रोकती हुई कहती है—रुक रे विक्टर, अभी चलती हूँ।) लेकिन यहाँ आप आये किसके यहाँ, यह आपने नहीं बतलाया!

लो, मुख्य प्रश्न यह है कि हज़रत आजकल आते-जाते कहाँ हैं; और यह कि फिर इस बात को छिपा क्यों रहे हैं। उत्तर देते हैं—अपने एक

वर्कर (कार्यकर्ता) के यहाँ। उसको टी० बी० हो गया है। घर में वृद्धा माता, युवती भार्या और तीन छोटे-छोटे बच्चे।

"हाँ, फिर यह तो दुनिया है।" मालती ने कुछ इस तरह उत्तर दिया, जैसे यह एक साधारण बात है और इस दुनिया में इस तरह की बातें तो चलती ही रहती हैं। जैसे इन पर ध्यान देना भी व्यर्थ-सा ही है। किन्तु फिर इस कथन को मानो गौण बनाते हुए उसने कहा—पर आपने हमारे यहाँ कभी आने की कृपा नहीं की!

बात चौंका देने की है; क्योंकि मालती-सी नारी और शर्म्मा जी से उसको यह शिकायत हो! जान पड़ता है तभी मुसकरा उठते हैं। कुछ सोचते और अटकते हुए कहते हैं—तुम्हारे यहाँ?—हाँ, तुम्हारे यहाँ भी आ सकता हूँ। लेकिन पहले यह जान लेना चाहता हूँ कि इस शिकायत का उद्देश्य क्या है!

प्रश्न के अन्दर एक चोट है, एक आरोप; मालती अनुभव करती हुई कुछ सकपका उठती है। किन्तु उस आरोप की पकड़ में आत्मीयता का मार्दव भी तो है, लच् कर तुरन्त मुसकराती हुई उत्तर देती है—चलिये चलिये मास्टर साहब। आप बात बनाना बहुत जानते हैं। आते तो कभी हैं नहीं और···। अरे मुझसे न सही, किन्तु कला से तो आपको कुछ दिलचस्पी हो ही सकती है।

उपालम्भ भी हो, तो इतना मृदुल!

एकाएक सारे बदन में जैसे बिजली दौड़ जाती है। सोचते हैं—'अरे मुझसे न सही'।—तात्पर्य यह कि मुझसे भला काहे को दिलचस्पी होने लगी!

जैसे अपने आपसे पूछना चाहते हैं—क्यों? सचमुच तुम अब अपने को इस दिलचस्पी से बिल्कुल दूर मानते हो?

मन्द-मन्द मुसकराते हुए मालती के साथ चल देते हैं। चलते हुए सोचते जाते हैं—'कला से दिलचस्पी?' प्रश्न अपने में पूर्ण है। व्यापक भी कम नहीं है। किन्तु अपने ऊपर एक कर्तव्यभार का तुरन्त, जैसे एक

झटके के साथ, अनुभव होने लगता है। गम्भीर होकर उत्तर देते हैं—मेरा जो वर्कर आज टी० बी० से आक्रान्त है, उसके जीवन का मूल्यांकन करने और इसे समाज की आँखों में अँगुली डालकर सुझाने में वह सहायक कितनी है, मेरे निकट कला का मूल्य इसी तरह कुछ आंका जा सकता है!

उधर एक झटका अपने चेतन मस्तिष्क के भीतर मालती भी अनुभव करती है। सोचती है कि वह इस व्यक्ति के आगे कितनी तुच्छ है! किन्तु फिर मन में आता है कि कुछ हो, मैं इनको अपने से दूर नहीं मानती। कभी-कभी इस दावे पर उसे सन्देह भी होने लगता है। तब सोचती है—मुझमें क्या ऐसा कुछ है जो ——जो ——!

कुत्ता फिर उसे एक ओर खींच रहा था। उसे रोकती हुई वह कहती है—आप तो हर बात को उपयोगिता की दृष्टि से देखते हैं। तभी आपसे बात करते हुए डर लगता है।

"आरोप यथार्थ है।" शान्त किन्तु स्निग्ध मन से शर्म्माजी बोल रहे हैं—लेकिन यह डर जो लगता है, यही थोड़ा गड़बड़ है। इसी को निकाल डालना होगा।

मालती को लगता है, जैसे कोई उसे छू रहा है। वह कह रही है—अच्छा, आपने मेरा वायोलिन तो सुना होगा।

"कहां ऐसा अवसर कभी मिला?"

"आल-इंडिया-म्यूजिक-कान्फ़रेंस में गतवर्ष मैंने वह जो प्राइज़ पाया था······।"

"हां, सुना था।" शर्म्माजी का उत्तर है—लेकिन सुनने का अवसर कहां मिला! हम लोगों को अपने काम से इतनी छुट्टी कहां मिलती है जो—।

मालती सड़क से हटकर दायीं ओर एक कोठी की तरफ़ घूमने लगती है।

शर्म्माजी—तो आजकल तुम इस कोठी में रहती हो!

"जी, पिताजी ने इसे सन् ३५ में बनवाया था" कहती हुई मालती गौरवभार से विलसित हो उठी। किन्तु गिरधारी को याद आ गया कि

इसी वर्ष उसका जो कच्चा मकान देहात में किसी तरह कुछ खड़ा भी रह गया था, वह भी गिरकर पट पड़ गया। फिर फाटक के भीतर लॉन को पार करते और पोर्टिको तक पहुँचते-पहुँचते बोल उठे—"कितने दिनों बाद मिलना हो रहा है! क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि कभी-कभी आफ़िस में आकर ही मिलती रहतीं।" कहते-कहते एक बार फिर सोचने लगे—उस मकान में रेणु ब्याह में केवल दस-पाँच दिन ही तो रह पायी थी।

बरामदा आ गया है। अमिया (एक नौकरानी) अन्दर से निकलती हुई बोल उठी—आप कहाँ थीं? माँ जी आपको पूछ रही थीं।

मालती अनिच्छापूर्वक बोली—"यहीं सड़क पर तो घूम रही थी" और शर्म्माजी को ऊपर सीढ़ी की ओर ले जाने लगी। विक्टर की जंज़ीर उसने अमिया को दे दी।

आगे-आगे शर्म्माजी चले, पीछे-पीछे मालती।

सीढ़ी पर चढ़ती हुई मालती ने उत्तर दिया—हो क्यों नहीं सकता था?...यह हो सकने की बात आपने ख़ूब कही! (फिर ऊपर के कमरे में पहुँचकर) लेकिन मैंने अभी कहा न था आपसे, आपने कभी मेरे यहाँ आने की कृपा नहीं की!

शर्म्माजी मुसकराने लगे। फिर कमरे की सजावट देखते हुए बोले—हूँ; तो यह बात है!

इसी समय अमिया आ गयी। आते ही उसने पंखा खोल दिया। मालती बोली—दो गिलास शरबत बनाकर ले आना।

अमिया चली गयी। किन्तु तत्काल ही प्रतीत हुआ, कुछ लोग सम्भवतः और आ रहे हैं। नीचे से उनका बोल सुनाई दे रहा था। इसी क्षण उल्लसित मालती बोली—आपको किसी अत्यन्त आवश्यक कार्य से कहीं जाना तो नहीं है? मेरा मतलब केवल यह जानने से है कि आध घंटा तक तो आप ठहरेंगे ही।

जान पड़ता है, शर्म्माजी उसकी ग्रीवा पर उड़ती हुई एक लट की ओर देख रहे थे। बोले—अब तो उलझ ही गया हूँ।

मालती ने लक्ष्य किया—उसका नाम एक लता से भी सम्बद्ध है। बोली—लेकिन सुलझाव आप पर ही निर्भर है।

"चले जाने का संकेत काफ़ी शिष्ट है!" शर्म्माजी इस तरह बोले कि मुसकराहट से उनके दो दाँत भी झलक पड़े।

भावमत्त मालती गम्भीर हो गयी। बोली—ऐसी बात हो, तो मैं जीवन-भर के लिए निमंत्रण देती हूँ। आपको कहीं जाने की आवश्यकता न होगी।

उत्तर में शर्म्माजी ने एकाएक अत्यधिक गम्भीर होकर जैसे एक निःश्वास को दबा लिया हो। बोलने की आवश्यकता नहीं समझी।

इसी क्षण माँ के साथ तारिणी और पूर्णिमा आ गयीं। पुलक हास और उत्साह जैसे उस कक्ष भर में फैल गया।

मालती ने परिचय कराया, फिर वह बोली—देख लो, यही हैं मेरे मास्टर साहब। इन्हीं की प्रेरणा से मेरे हृदय में कला के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ था।

"किन्तु यह श्रेय लेते आज मुझे संकोच हो रहा है" शर्म्माजी बोले—इतना मैं बदल गया हूँ कि मेरे तब और अब में कोई साम्य नहीं है। मैं कला को उद्देश्यहीन नहीं मानता।

माँ, पूर्णिमा और मालती एक साथ शर्म्माजी की ओर देखने लगीं। तारिणी बोली—आनन्द को कदाचित् आप उद्देश्य में सम्मिलित नहीं मानते।

"आनन्द? आनन्द तो सापेक्ष्य वस्तु है। प्रत्येक व्यक्ति आनन्द को पृथक्-पृथक् रूपों, प्रकारों और संयोगों में देख सकता है। फिर व्यक्ति का आनन्द यदि समाज के विकास के प्रतिकूल ठहरता हो तो मैं ऐसे आनन्द की कला को कभी जीवित न रहने दूँगा।

सुनकर माँ स्थिर रहीं, किन्तु तारिणी और पूर्णिमा आवक् हो उठीं। क्षणभर रुककर मालती कहने लगी—उन दिनों शायद बीस रुपये पर (शर्म्माजी के समर्थन की कामना से) क्यों?—हाँ, बीस रुपये पर—मुझे

शहर से (साइकिल पर) हिन्दी पढ़ाने आते थे। आज तो चार-पाँच सै रुपये इन्हें अपने प्रेस में मासिक वेतन बाँटना होता है !

शर्म्माजी बोल उठे—सात-सै से भी ऊपर।

"लो, सात-सै से भी ऊपर !—और इतना ही क्यों ?" मालती गौरव का अनुभव करती हुई कहने लगी—आज तो ये हमारे देश...।

"बस रहने दो।" शर्म्माजी ने बीच ही में बात को समाप्त करने का आदेश करते हुए कहा—"अपनी श्रद्धा को अधिक आगे मत बढ़ाओ। देश बहुत बड़ी चीज है, सेवा भी कम बड़ी नहीं। जो कुछ सोचता हूँ, उसका दशांश भी तो नहीं कर पाता। हमारे देश में जनता शिक्षित ही कितनी है, जो उसकी समस्याओं को लोग ठीक तरह समझ सकें ! फिर वह शिक्षा भी कितनी एकांगी है ! जीवन के असली महत्व को हम में से कितने समझ पाते हैं ?"

सुनकर मालती अपने ऊपर एक चोट का अनुभव करने लगी। उसके मन में बार-बार यही प्रश्न उठता—'एक ये हैं !—एक मैं। तब जान पड़ता है, विषय को बदलने की इच्छा से वह बोल उठी—देखती हूँ, आप हमेशा हर बात में कितनी गहराई खोजते हैं !

आगत पुरुषों के स्वागत में तारिणी और पूर्णिमा प्रायः एक मत होकर उन्हें बनाने की चेष्टा करती आ रही हैं। किन्तु आज वे भी अपेक्षाकृत गम्भीर जान पड़ती हैं। कदाचित् इस विचार से कि ये कितने विचित्र आदमी हैं जो प्रशंसा की बात सुनना भी नहीं स्वीकार करते !

पूर्णिमा बोली—अच्छा मास्टर साहब, आप सदा व्यस्त रहते हैं, या किसी प्रकार के मनोरंजन की भी आवश्यता आपको पड़ती है ?

माँ उठीं और टहलती हुई छज्जे पर आ गयीं। मालूम हुआ, किसी ने कोई सूचना दी है।

शर्म्माजी सोचते थे—मनोरंजन ! कैसा मनोरंजन !! गुलाम और पतित देश, रूढ़ियों और परम्पराओं में बँधा हीनसमाज और संघर्ष-जर्जर मनुष्य को क्या इतना अवसर है कि वह मनोरंजन को खोजता फिरे ?

फिर सोचते हैं—किन्तु क्या वह दृष्टि एकांगी नहीं है? हँसं और अपनी समस्याओं को सुलझाने के सिलसिले में घड़ी-दो-घ मनोरंजन तो सबके लिए अत्यन्त आवश्यक है। कौन इससे इन्व सकता है?

माँ ने भीतर आकर सूचना दी—गेहूँ साढ़े नौ रह गया!

सुनकर सभी क्षण-भर को स्तब्ध रह गये। शर्म्माजी बोले कठिन समय आरहा है!

गम्भीर माँ बोलीं—जैसे-जैसे भगवान रक्खेंगे वैसे-वैसे हमें रहना

थोड़ी देर मौन रहने के बाद फिर मूल विषय पर आते हुए यकाय बदल गया। हँसते हुए शर्म्माजी कहने लगे—ये सब बातें मैं इ सहज में नहीं बतलाता। इस घर में मेरी हरएक बात का मूल्य होता है। कुछ काम बटाने कहो तो बतलाऊँ भी।

माँ, तारिणी और पूर्णिमा सब-की-सब क्रम-क्रम से शर्म्माजी मालती की मुद्राओं को ध्यान से देखने लगीं। क्षण-भर बाद माँ आप-ही-आप शर्म्माजी की 'हर एक बात के मूल्य होने' का अ समझ पाया, तो वे हँस पड़ीं। बोलीं—देखती हूँ, जितने भी आद तक मेरे यहाँ आये, अपनी बातचीत में, किसी ने भी हमको इतना नहीं दिया, जितना बेटा तुम्हारी इस एक बात ने।

मालती इस समय अपना उत्तर रोककर माँ की ओर आकृष्ट ह और पूर्णिमा सोचने लगी कि काम बटाने से इनका अभिप्राय क्या है?

माँ ने इसी क्षण कह दिया—आज भी बेटा तुम्हारी बात खाल जायगी। जिस लायक हूँ, जरूर करूँगी। लेकिन यह काम बट बात मेरी समझ में नहीं आयी।

"हाँ, मैं भी हैरान हूँ कि" मालती तत्काल बोल उठी—आखिर मतलब क्या है? इतने दिनों बाद जो आपका दर्शन भी हुआ, त आप पहेली बुझाते।

अंतिम बात में मालती की दृढ़ता देखकर माँ को किंचित लज्जा का

ण। पूर्णिमा तारिणी के कन्धे से लगकर उसके कान में चुपचाप कुछ ने लगी।

परन्तु उस ओर ध्यान न देकर शर्म्माजी बोल उठे—युग कितना बदल है, कभी आप लोगों ने सोचा है? सोचा है कभी कि आज हमारे को कला के नाम पर वायोलिन की मधुर झंकार, अभिनय और नृत्य-ी के नव-नव प्रकारों की अधिक आवश्यकता है या उस संगठित शक्ति र स्वाधीनता की, जो मदान्ध फ़ैसिस्ट देशों के आक्रमणों से हमें बचा —हमारी संस्कृति की रक्षा कर सके? कर सकेगी रक्षा उसकी उस नय तुम्हारी यह कला, जब फ़ैसिस्ट देशों के सैनिक हमारी सभ्यता, संस्कृति र सामाजिक मर्यादा को भंग करने—उसे कुचलने—आयेंगे?

पूर्णिमा बोली—लेकिन हम कर ही क्या सकते हैं? हमारी सामर्थ्य तनी है?

"इसके सिवा ये समस्याएँ एक तो राजनैतिक हैं, दूसरे क्षणिक" गम्भी-ा-पूर्वक मालती बोली—"समस्त काल-व्यापी कला की शाश्वत सत्ता पर नका क्या प्रभाव हो सकता है?"

इसी समय अमिया शरबत ले आयी। माँ, तारिणी तथा पूर्णिमा के ाच थोड़ी अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हुई। मालती बोली—अब मैं तो शरबत गी नहीं। मुझे चाय बना ला, अमिया। शर्म्मा जी बोले—शरबत के जाय चाय मैं भी अधिक पसन्द करूँगा।

मालती की ओर संकेत कर अमिया बोली—आपने शरबत के लिए ही हा था।

मुसकराती पूर्णिमा की ओर देखती हुई मालती बोली—तू ने देर कर ी, तब मुझे भी राय बदलनी पड़ी।

तब पूर्णिमा बोली—ला, एक गिलास मुझे दे दो। दूसरा माँ तुम ले लो।

माँ ने कहा—मैं न लूँगी। तब तारिणी ने उसे ले लिया।

शर्म्माजी ने कहा—केवल यह कह देने मात्र से आज का कोई नागरिक नहीं हो सकता कि ये समस्याएँ तो राजनैतिक हैं। इसलिए मेरे साथ

इनका सम्बन्ध ही क्या है !...हम कर ही क्या सकते हैं, यह कहना हमारी पराजित भावना का द्योतक है। 'हम कर ही क्या सकते हैं' न सोचकर सोचना हमें यह चाहिये कि हम क्या नहीं कर सकते ?—और यह, कि जो कुछ भी कर सकते हैं, क्या हम उसे कर रहे हैं ?...रह गयी बात समस्त काल-व्यापी कला की शाश्वत सत्ता की। सो कला की कोई भी स्थिति, रूप-रेखा और सत्ता समस्त काल-व्यापी नहीं होती।

उत्तर सुनकर कमरे भर में एक निस्तब्धता-सी छा गयी। उधर इन शास्त्रीय कथनों और विवादों से माँ को जब कोई दिलचस्पी न जान पड़ी, तो मालती की ओर देखती हुई वे बोल उठीं—यह बहस तो ख़तम होने से रही। अपने मास्टर साहब को वायोलिन बजाकर ही सुनाया होता।

किन्तु ऐसे गम्भीर विचार-विमर्श के समय वायोलिन बजाने का मालती में कोई उत्साह न रह गया था। इसका एक कारण यह भी था कि शर्म्माजी के कथनों द्वारा वह अपनी कला-प्रियता की अवमानना का भी उत्तरोत्तर अनुभव कर रही थी। अतएव वह बोली—इस समय तो मैं इसके लिए तैयार नहीं हो सकती माँ।

शर्म्माजी मुसकराते हुए बोले—मैं तुमसे इस समय ऐसे ही उत्तर की आशा करता था।

इस पर पूर्णिमा तारिणी के कन्धे से लगकर खिलखिलाने लगी। यहाँ तक कि उसे रूमाल मुँह से लगा लेने की ज़रूरत पड़ गयी। माँ चुप रहीं। हाँ, एक बार मुसकराने की असफल चेष्टा उन्होंने ज़रूर की।

मालती शान्त भाव से बोली—मैं बहस नहीं करना चाहती। लेकिन इतना अवश्य जानती हूँ कि युद्ध के समय भी हर आदमी सैनिक नहीं बनता। इसके सिवा युद्ध के सैनिकों को भी मनोरञ्जन की आवश्यकता होती है। अवकाश के समय वे मनोरञ्जन के साधनों पर भी उसी प्रकार टूट पड़ते हैं, जैसे भूख लगने पर खाने के लिए। मनुष्य चाहे जिस स्थिति में हो, कभी-न-कभी भावनाओं, तरंगों, जीवन की मधुर स्मृतियों और भविष्य के स्वर्ण-प्रभात की स्वप्न-कल्पनाओं में निमग्न होना अवश्य चाहता है। और इसी

में कला की सार्थकता है। रह गयी बात देश की रक्षा की, सो इसकी जिम्मेदारी सरकार की है, न कि जनता की। जनता पर तो तब होती, जब सरकार ने उसे इस योग्य बनाया होता। निहत्थे आदमी अपने ऊपर आक्रमण हो जाने पर साधारण बौद्धिक प्रयोगों और ज्ञात विधियों द्वारा आगत संकट के दुष्परिणामों से भले ही थोड़ी-बहुत रक्षा कर लें, किन्तु वे आक्रमणकारी को आक्रमण करने से रोक नहीं सकते।

एकाएक माँ तारिणी और पूर्णिमा मालती का उत्तर सुनकर सजग हो उठीं। भावी संकट कल्पना से एक हलचल-सी उनके बीच उपस्थित हो गयी।

किन्तु जरा भी अस्थिर न होकर शर्म्माजी बोले—तुम्हारे तर्क बहुत पुराने हैं। कला की सार्थकता मनुष्य को केवल तरंगित, विह्वल, विवश और अचेत कर देने में नहीं, जीवन के विकास में उसको सजग, सतर्क, सचेत, आरूढ़, कटिबद्ध और उत्तेजित करने में भी है। फिर गुलाम, पंगु और असमर्थ जनता की यह पहले दरजे की कायरता है कि वह सरकार के उन स्वेच्छाचारपूर्ण विधानों को भी, जो उसने व्यवस्था और शान्ति-रक्षा के नाम पर प्रचलित किये हैं, वरदान मानकर चुपचाप सहन करती जाय।

व्यंग के स्वर में, कुटिल मुसकान के साथ, पूर्णिमा बोली—तो इसके लिये क्या आप हम विवाहित स्त्रियों से भी घर-गृहस्थी त्याग कर, सर में कफनी लपेटकर, चल देने की आशा कर रहे हैं?

"यह बात मेरे बतलाने की उतनी नहीं, जितनी उन लोगों के स्वयं सोचने और तै करने की है, जिन्होंने परिस्थितियों के आगे अपने आपको बलि-पशु बना लिया है।" शर्म्माजी ने कुछ इतने गम्भीर होकर ऐसे ओजस्वी स्वर में कहा कि सब अवाक् किंवा अस्थिर हो उठे।

इसी समय अमिया ट्रे में चाय ले आयी। एकाएक तारिणी के होंठ कुछ हिले। वह बोली—आपके लिए चाय मैं बना दूँ।

शर्म्माजी बोल भी न पाये थे कि मालती ने मुसकराते हुए कह दिया—धन्यवाद। उसका तातपर्य्य यह था कि यह कार्य तो मुझे निर्वाह करना था।

पूर्णिमा ने फिर तारिणी के कान में खुसफुस किया। शायद कहा कि कि प्राइवेट-सेक्रेटरी बड़ा तेज़ पड़ रहा है! शब्द कुछ ऐसे अमन्द थे और स्वर में ऐसी हलचल कि शर्म्माजी ने सुन लिया। बोले—पूर्णिमाजी, आपको तो एक सफल सेटायरिस्ट लेखिका होना चाहिये। आप में इसके अनुकूल समस्त गुण हैं।

चाय ढालती तारिणी बोल उठी—इसी तरह एक-एक करके हम सबको बहका लीजिये। आपका यह नुसखा मुझे बहुत पसन्द आया। अच्छा, मुझे आप क्या करने को कहते हैं?

माँ बोल उठी—ऐसी बात मत कहो बड़ी बहू। बेटा, तुम इसकी बात का कुछ ख़याल न करना। ये दोनों-की-दोनों बड़ी हँसोड़ हैं।

पूर्णिमा इसी क्षण कहने लगी—हम लोगों को बाद मुद्दत के जो एक राही मिला भी, तो तुम हमें खुलकर उससे दो बातें तक कर लेने की आज़ादी नहीं देना चाहतीं। तुम ठहरीं बड़ी-बूढ़ी माँ। तुम्हें चाहिए कि हमें आशीष-भर देती रहो, ..बस। दुनिया भर की पंचायत में पड़ने की तुम्हें क्या ज़रूरत?—है न दीदी?

किन्तु तारिणी मुसकराती बोली—पर ऐसी बातों में मेरा समर्थन तुम्हारे काम का न हो, तो...!

इस पर सब ने हँस दिया। किन्तु झट माँ ने उत्तर दिया—अच्छी बात है, मैं अब न बोलूँगी। जो तुम्हारे मन में आये सो बको।

मालती मन-ही-मन घुल रही थी। उसके मन में आया कि वह अम्माजी को संकेत कर दे कि वे पूर्णिमा की बातों में न पड़ें, किन्तु संकोच-वश वह फिर इस सम्बन्ध में कुछ कर न सकी।

पूर्णिमा बोली—तुम्हारे पैर पड़ती हूँ माँ, मुझे दो-चार बातें और कर लेने दो।···हाँ साहब, बतलाइये, दीदी के बारे में आपने क्या तै किया?

तारिणी शर्म्माजी के प्याले में चीनी घोल रही थी। एकाएक उसके होठों में कम्पन हुआ और वह बोली—चाहे जैसी चाय मैं ढाल दूँ, मेरा तो विश्वास है पीनेवाले को कभी शिकायत हो नहीं सकती।···लीजिये, शर्म्माजी।

पूर्णिमा कहने लगी—दो घूँट पीकर बतलाइयेगा, तो *जजमेंट और भी अधिक बैलेंस्ड† रहेगा।

शर्म्माजी समझ गये, ये लोग इस समय वार्तालाप में गम्भीर कितने हैं। तब वे सचमुच दो घूँट पीकर बोल उठे—माफ़ कीजियेगा, अगर आप स्थानीय काफ़े-डी-लक्स की मलका होतीं, तो मैं आपके यहाँ चाय पीने नित्य आया करता।

एकाएक मालती और पूर्णिमा ने ताली पीट दी। हाथ उठाकर एक मुस्लिम नमस्कार (सलाम) के साथ प्रफुल्लित तारिणी ,बोली—शुक्रिया। (दाँतों में जिह्वा ले जाकर) नहीं, धन्यवाद !···पर आपको मालूम होना चाहिये शर्म्माजी कि मेरा छोटा भाई मसूरी में एक होटल का ही बिज़नेस‡ कर रहा है।

आश्चर्य के साथ शर्म्माजी बोले—अच्छा !

और उत्साहित पूर्णिमा कहने लगी—और मैंने भी शर्म्माजी हास्यरस की कुछ कहानियाँ लिख रक्खी हैं। कभी आपको दिखलाऊँगी। लेकिन··· अच्छा, अब के गये आप आयेंगे कब ?

"बारह वर्ष के बाद इसी बार आये हैं।" मालती कुछ इस तरह बोली, जैसे कुछ कहते-कहते रुक गयी हो।

"तो शंकरजी का-सा फेरा होता है आपका !" पूर्णिमा हँसते-हँसते बोल उठी—"यह बात है ! लेकिन पार्वतीजी को भी साथ रक्खा कीजिये, तो अच्छा हो !"

इस क्षण शर्म्माजी के सामने आज की रुग्ण, अस्वस्थ और चिड़चिड़ी रेणु जैसे समक्ष आकर खड़ी हो गयी। और इसी क्षण मालती ने कह दिया—सो इस बार भी अपने मन से थोड़े ही आये हैं। मैं ही जबरदस्ती खींच लायी हूँ।

माँ बोली—"ख़ैर, किसी तरह सही। इतनी कृपा क्या कम है कि आये तो।

---

* निर्णय। †संतुलित। ‡व्यवसाय

"पर अबकी वार जो बारह वर्ष वाद आये, तो कौन जाने वीवी कहाँ हों ···।" पूर्णिमा वोली—और हम लोग···!

चिन्तित-सी माँ बोल उठीं—एक दिन आगे की वात तो कही नहीं जा सकती। कितना समझाती हूँ कि इस तरह नहीं चल सकता। पर इसकी समझ में ही कुछ नहीं आता। आशीर्वाद दीजिये कि इसका जीवन सुखी वने।

संकोच से मालती गम्भीर हो उठी। कुरसी से उठकर टहलती हुई वह कभी माँ की ओर देखती, कभी शर्म्माजी की ओर।

अन्त में उठते हुए शर्म्माजी वोले—पर विवाह के लिए इतनी चिन्ता करने की भी जरूरत नहीं है। एक-न-एक दिन तो वह होगा ही। हाँ, उसकी प्रतीक्षा में जीवन का यह वहुमूल्य समय खोना अलवत्ता शोचनीय है। वल्कि मैं तो यह भी कहना चाहूँगा कि अगर ये देश-कार्य की ओर दृष्टि डालें, तो इनका जीवन अपने आप पूर्ण और सफल होते देर न लगे!

शर्म्माजी को चलने के लिए तत्पर देखकर मालती सब के साथ पीछे-पीछे चलने लगी। वोली—चलिये, आपको पहुँचा आऊँ।

सुनकर शर्म्माजी को आश्चर्य्य हुआ; किन्तु उस आश्चर्य्य में एक विचित्र प्रकार की मधुरता थी। उन्हें अपूर्व प्रसन्नता हुई, कुछ उस तरह की, जैसी समुद्र के किनारे पहुँच जाने पर हो।—आशंका भी हुई, जैसी परीक्षा दे देने के पश्चात् हुआ करती है! वे चल रहे हैं; किन्तु उन्हें प्रतीत हो रहा है, आज इस गति में थोड़ा परिवर्तन है।

कमरे के द्वार पर आकर वोले—इतनी तकलीफ़ उठाने की क्या जरूरत है! मैं चला जाऊँगा।

फिर मालती की ओर दृष्टि डालते हुए कहने लगे—विश्वास मानो, तुरन्त ही लौट न आऊँगा।

माँ वोली—सो आपका घर है। ऐसा सौभाग्य कहाँ मिलता है जो आप जैसा देश-सेवक इस घर को पवित्र करे।

हाथ जोड़कर पूर्णिमा वोली—और मैं अपनी धृष्टता के लिए अगर क्षमा माँगूँ तो आपको कहीं वुरा न लगे, यही सोचकर···। लेकिन क्या आप

हमारे ऊपर कृपा-भाव रखकर कम-से-कम हफ़्ते में एक बार अवश्य···?···मैं गाड़ी भेज दिया करूँगी।···(फिर पेट्रोल-राशनिंग की बात सोचती हुई) ख़ैर, सवारी भेज देने का प्रबन्ध कुछ-न-कुछ हो ही जायगा।

"ख़ैर आने के लिए सवारी बाधा नहीं पहुँचायेगी।" माँ बोल उठीं।

हँसती तारिणी बोली—मैं एक ही बात का आपको प्रलोभन दे सकती हूँ। और वह यह कि चाय आपको आपकी इच्छा के अनुसार···। और उसने हाथ जोड़ लिये।

सब लोग फिर हँस पड़े।

माँ ने कहा—मैं···मैं क्या कहूँ! बड़े बेटा भी इस समय नहीं हैं, लेकिन मेरी प्रार्थना है कि आप आते रहें बराबर।

"मैं थोड़ी दूर आपको भेज ही आऊं माँ?" मालती ने किंचित् संकोच के साथ पूछा।

आश्चर्य्य से माँ बोली—अच्छा, तू भेजने जा रही है! अच्छी बात है। यद्यपि उन्हें यह उचित नहीं प्रतीत हुआ।

फिर सबने नमस्ते की।

गिरधारी ने माँ को प्रणाम किया तो वे बोलीं—जियो, जियो बेटा।

कार पर जब शर्म्माजी पीछे बैठ गये, बग़ल में मालती; तो माँ के जी में कुछ उलझन-सी हो उठी। कार जब चल पड़ी, तो अन्तिम नमस्ते फिर हुई।

हाथ जोड़े पूर्णिमा बोली—मेरी धृष्टता···और तारिणी—मैं क्या कहूँ!

दोनों जब पोर्टिको से अन्दर लौटने लगीं तो कुछ सोच रही थीं; यहाँ तक कि एक को दूसरे से कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

तीन

आज रात को बड़ी देर तक मालती को नींद नहीं आयी। वह करवटें बदलती रही। फिर उठी और उसने आलमारी से एक पुस्तक निकाली। वह उसे पढ़ती रही। किन्तु पाँच पेज तक पढ़ जाने के बाद वह जब अपने आप

से पूछने लगी 'कितना···क्या···पढ़ा ?' तो उसे प्रतीत हुआ कि वह एकदम कोरी है; कुछ पढ़ नहीं सकी। उसने चाहा कि वह वायोलिन बजाये, किन्तु आज उसे उसमें भी कोई आकर्षण नहीं रह गया था। कभी उसके मन में आता, मेरी इस कोमल देह का क्या होगा! कितने कलुष को उसने अपने साथ लपेट रक्खा है! बार-बार उसका ध्यान गिरधारी की ओर दौड़ जाता। उन्हीं की बातें घूम-फिरकर उसके मानस पर तैरने लगतीं। बार-बार वह सोचने लगती, मेरा अब तक का जीवन व्यर्थ चला गया! मैंने अब तक किया क्या? वक्त से खाना खा लेना, इधर-उधर निरुद्देश्य घूमना, वायोलिन बजाना और नित्य का अभ्यास करना और बस सो रहना। लेकिन यह भी कोई जीवन है!

उसने सोचा—कला से प्रेम और उसका आनन्द! लेकिन उससे मुझको मिला क्या! और उससे मैंने किसी को दिया भी क्या! फिर कला के प्रेम से ही क्या जीवन पूर्ण हो जाता है! हाँ, जीवन की पूर्णता अवश्य एक कला है। और वह आनन्द भी कितना अधूरा है, कितना नश्वर, जो मुझे जीवन की पूर्णता की ओर ले जाने में सहायक नहीं है। एक शर्म्माजी हैं, जो कहीं भूल से निकल पड़ें, तो रास्ते से गुज़रनेवाले लोग भी उन्हें घेरकर खड़े हो जाँय और ललच उठें कि वे हमसे दो बातें ही कर लें। समाज की श्रद्धा उनकी अर्चना करती है, देश का हृदय उन पर अपने को न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहता है।···क्या मैं ऐसी नहीं बन सकती! क्या मैं···? क्या ??

एक तो बड़ी कठिनाई से नींद आयी। फिर उस नींद में भी वह स्वप्न ही देखती रही। वह जब सवेरे उठी, तो उसके पलक भारी थे, उसकी आँखें दुख रही थीं। परन्तु जब उसे ख़याल आया कि इन पलकों पर आज रात-भर उनके निमंत्रण रहे हैं, आह्वान गूँजे हैं, तो उसका मन नाच उठा। वह उत्फुल्ल मन से उठी और घुँघरू पहनकर वास्तव में नाचने लगी। वह देर तक नाचती रही, नाचती रही। वह तब तक बराबर नाचती रही, जब तक एकदम से शिथिल होकर गिर नहीं पड़ी।

दूसरे दिन की बात है, तीन बजे के लगभग मालती तारिणी के कमरे में पहुँची, तो वह क्या देखती है कि भाभी अलमारी से साड़ियाँ निकाल रही हैं। मालती जानती है कि कहीं चलने की बात तुरन्त आ पड़े, तो वड़ी भाभी कभी तैयार नहीं हो सकतीं। कम-से-कम एक दिन पहले उन्हें सूचना मिल जानी चाहिये। कौन-सी साड़ी उस अवसर के वातावरण में अनुकूल ठहरेगी, जरा धैर्य्य के साथ इसे निश्चय करना होता है। व्लाउज़ और चप्पल के लिए भी यही बात है। कानों में वह झूमर प्रायः कम पहनती हैं। पर इससे क्या ? कभी पहनने की इच्छा तो हो ही सकती है। इन सब बातों को तै करने के लिए कुछ वक्त भी तो चाहिये।

अस्तु, मालती सोचने लगी—आज ऐसी कहाँ की तैयारी है, जो भाभी साड़ियाँ उलट-पुलट रही हैं।

तारिणी स्नेह-भाव से बोली—आज सिनेमा देखने का इरादा है। तुम तो चलोगी नहीं, इसीसे तुमसे नहीं कहा। शारदा भी साथ रहेगी। शायद छोटी भी चलें।

मालती अन्यमनस्क थी। अतएव उसने कुछ कहा नहीं, केवल सुन लिया। साड़ियाँ देखने में उसका ध्यान लग नहीं रहा था। यद्यपि हैं एक-से एक बढ़िया और क़ीमती साड़ियाँ उसके पास भी; किन्तु इतनी अधिक संख्या में नहीं हैं। और दिन होता, तो सम्भव था कि इस चुनाव में स्वयं भी तारिणी का साथ देती; किन्तु इस समय न जाने क्यों यह कार्य्य उसे रुचिकर नहीं हुआ। थोड़ी देर वह चुपचाप पलँग पर बैठी रही। फिर तकिया सिर के नीचे लगाकर लेट भी रही, किन्तु फिर उठकर कुछ सोचती हुई पूर्णिमा की ओर चल दी।

अन्दर पहुँचते ही—'कहो बीबी, क्या इरादे हैं ?' सदा की भाँति मुसकराकर पूर्णिमा ने तकिया-गिलाफ में रेशमी अक्षर पिरोने का कार्य रोककर पूछा और फिर दोनों हाथों को परस्पर गुम्फित करके उसने ऐसे ढँग से अँगड़ाई ली कि एकदम से जैसे दसो अँगुलियाँ चटाचट बोल उठीं।

मालती ने देखा, तकिये के आवरण पर जो अक्षर बन रहे हैं उनसे मिलकर शब्द होता है—स्वप्न। तब कुतूहल-वश उसने पूछा—यह क्या है?

मृदुकंठ से पूर्णिमा बोली—क्यों, 'स्वप्नों के राजा' लिखना अच्छा न होगा!

सुनकर मालती के होंठों पर मुसकराहट आ तो गयी, पर ठहर न सकी। उसका ध्यान अन्यत्र चला गया। गद्दे पर ही वह पूर्णिमा के पास आकर बैठ गयी थी। अब उठी और दाँतों में कहीं से एक तृण दबाकर उसे खुटकती और फुरकती हुई बोली—बड़ी भाभी आज सिनेमा देखने जा रही हैं, तुम साथ जा रही हो न?

पूर्णिमा उठी और दरवाजे तक आकर बोली—क्यों, तुम नहीं चलोगी क्या?

'नहीं तो।' बिना ठहरे कहती हुई मालती आगे बढ़ गयी और अन्त में माँ के पास जा पहुँची। वे गीता सामने रक्खे, आँखों पर चश्मा धारण किये, ध्यानावस्थित थीं।

बेटी को आया जानकर स्नेहभाव से पूछने लगीं—क्या टाइम हुआ बेटी?

"यही साढ़े-चार के लगभग होगा। क्यों?" कहकर मालती चुपचाप माँ की ओर देखने लगी।

माँ ने कहा—आज चार बजे से रामलाल बाबू के यहाँ कीर्तन है। मुझे भी तो चलना है। पहले से कहने का मुझे ख़याल ही नहीं रहा। उसकी बहू ने हाथ जोड़कर कह दिया था। कहा था कि बीबी अगर न आयीं तो कीर्तन तो होगा, पर वह रंग न जमेगा।

अन्तिम बात कहते हुए माँ कुछ अधिक प्रसन्न देख पड़ीं! कदाचित् वे सोचती थीं कि इस बात को सुनकर मालती अवश्य प्रभावित होकर चलना स्वीकार कर लेगी। परन्तु इसके विपरीत हुआ यह कि माँ का कथन सुन-कर मालती जैसे चौंक पड़ी। अभी वह दोनों भाभियों के यहाँ से होकर

आयी है। उसने जिन कार्यों में व्यस्त और संलग्न उन्हें पाया, उनके प्रति यों भी वह यथेष्ट अरुचि से भर गयी थी। अब यहाँ माँ ने भी उससे ऐसा प्रस्ताव कर दिया।

सुनते ही मालती के मुख की आकृति परिवर्तित हो गयी। जरा रुककर उसने कहना प्रारम्भ किया—तुम जानती हो माँ कि मैं ऐसी जगह नहीं जाती। मुझे इन सब बातों में कोई आस्था नहीं है। फिर भी तुमने...। मैं किसी तरह नहीं जा सकती। मैं पूछती हूँ, तुमको अपनी राम-भक्ति से मतलब है या दुनिया-भर की भक्ति-भावना का तुमने ठेका ले लिया है।

"लेकिन अगर कीर्तन में जरा देर के लिए तू···" माँ ने कहा ही था कि बीच में ही बात काटती हुई मालती बोल उठी—जरा देर को!···किन्तु मैं एक मिनट के लिए भी नहीं जा सकती। मुझे ख़ुद बहुतेरे काम हैं। मैं अभी शर्म्माजी के यहाँ जा रही हूँ। परसों उनसे मेरी बातचीत हो चुकी है। मैं तो बल्कि यही तुमसे कहने आयी थी।

माँ कुछ नहीं बोलीं। मन-ही-मन अत्यधिक असन्तुष्ट हो उठीं। मालती जब चलने लगी, तो सिर्फ़ इतना कहा—जाने मेरे भाग्य में क्या बदा है!

मालती सुनकर लौट पड़ी। वह यों भी कम उत्तेजित नहीं थी; फिर माँ की उपर्युक्त बात को सुनकर तो तिलमिला उठी। बोली—जो लोग भाग्य के नाम पर नित्य सिर पीटते रहते हैं, तुम्हें नहीं मालूम है, मैं उन्हें क्या कहकर पुकारती हूँ?

माँ चश्मे के भीतर से अवाक्, निःशब्द जैसे आँखें फाड़-फाड़कर देखती रहीं, कुछ कह न सकीं।

माँ को चुप पाकर मालती जोर से सिर हिलाकर बोली—वे कायर होते हैं कायर!—और मैं उनकी जमात से घृणा करती हूँ।

कहकर, थोड़ी देर रुककर, उत्तर न पाकर पुनः मालती जाने लगी तो माँ उठीं और गीता की पुस्तक आलमारी में रखने लगीं। एक निःश्वास उन्होंने लिया और बोलीं—हे कृष्ण!···हे कृष्ण!!

× × ×

अन्त में मालती बोली—भाभी ने उनसे जो भी कहा हो। सवेरे मैंने बड़े भैया को बहुत गम्भीर पाया। मैंने भी स्पष्ट रूप से कह दिया—मेरे हिस्से का रुपया आप मुझे दे दीजिये। मैं आपसे और कुछ नहीं चाहती।

उन्होंने जवाब दिया—विवाह से पहले उसमें से एक पाई भी नहीं मिल सकती।

तब से मैं उनसे बोली नहीं।

जब पूरी बात मालती कह चुकी, तो शर्माजी ने सबसे पहले एक चुटकी ली। बोले—व्याख्यान तुम बहुत अच्छा दे लेती हो!

पर मालती उस समय गम्भीर थी। ज़रा भी विचलित न होकर वह बोली—ख़ैर, यह तो भविष्य बतलायेगा; मज़ाक़ बनाने का आपको अधिकार है। लेकिन मैं वास्तव में चाहती हूँ, आप मुझे ठीक रास्ता सुझायें।

शर्माजी विचार में पड़ गये। वे सोचने लगे, इसे इस समय रुपये की आवश्यकता ही क्या हो सकती है? कहीं से भी कोई सूत्र इसकी जानकारी का जब वे नहीं निकाल सके तो उन्होंने सीधे तौर से यही प्रश्न कर दिया। बोले—लेकिन इसी समय रुपया उठा लेने की बात उठाने का अर्थ क्या है, मैं नहीं समझ सका। अपने सारे ख़र्चे के लिए आख़िर घर से पूरी व्यवस्था तो हो ही रही है!

मालती बड़े असमंजस में पड़ गयी। कैसे वह अपना अभ्यन्तर खोल-कर दिखलाये, कैसे वह अपने जीवन की साध प्रकट करे। फिर ऐसी अवस्था में, जब कि वह रक़म उसके हाथ में नहीं है। अगर इस स्थिति में वह अपना सर्वस्व-समर्पण प्रकट भी करे, तो उसका अर्थ क्या होगा?

क्षण भर वह मौन बनी रही। किन्तु मौन रहने से बात तो आगे बढ़ने से रही। अतएव विवश होकर वास्तविक मन्तव्य को थोड़ा इधर-उधर करते हुए उसने कहा—सीधी-सी बात है। वह रक़म जब तक मुझे मिलती नहीं, जब तक वह सुरक्षित है, तब तक उसको अपनी पूँजी मानकर जो एक संस्कारगत गौरव और अभिमान मैं अनुभव करती हूँ, उसके प्रभावों से मैं कैसे बच सकती हूँ। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि मैं उसे किसी ऐसे जनहित-

सम्बन्धी व्यवसाय में लगा दूँ, जिसका एक स्थायी महत्व हो, जो मुझे संतोष दे और जिसके नाते मैं यह सोचने का अवसर पाऊँ कि यहां मेरा कार्य-क्षेत्र है।

शर्म्माजी ने इस समय यह नहीं पूछा कि ऐसा जनहित-सम्बन्धी कौन-सा कार्य तुमने सोचा है। उन्होंने इस स्थिति के मर्म को भी स्पष्ट करने का आग्रह नहीं किया कि जो व्यक्ति वास्तव में रुपये के मोह और उसके प्रभावों से बचने की भावना रखता है, वह उससे बच क्यों नहीं सकता? उन्होंने मूल समस्या को ही स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कहा—लेकिन विवाह तो तुमको एक दिन करना ही पड़ेगा और उस समय तुमको रुपये की कितनी जरूरत होगी, यह स्पष्ट है।

"आप कहते क्या हैं?" मालती दृढ़तापूर्वक बोली—"मैं विवाह नहीं करूँगी—किसी तरह नहीं करूँगी। मैं प्रत्येक विवाहित नारी से घृणा करती हूँ। मैं नहीं मानती कि विवाह का प्रेम के ऊपर कोई अधिकार है, मैं उसे प्रेम के ऊपर मुकुट के रूप में भी मानने को तैयार नहीं हूँ।"

विवाह के विपक्ष में जितनी भी दलीलें दी जाती हैं, शर्म्मा जी जानते न हों, यह बात नहीं है। पर वे मानते हैं कि हमारे देश में स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र बहुत ही सीमित है। उनसे यह भी छिपा नहीं है कि आज हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता नारी के स्वतंत्र जीवन को समादर देने के लिए क़तई तैयार नहीं है। अतएव उन्हें यह मान्य नहीं हुआ कि वे मालती के जीवन को अविचार, असम्मान और समाज की उपेक्षा-दृष्टि के प्रवाह में बह जाने के लिए प्रोत्साहित करें। अस्तु।

"किन्तु यह नशा तभी तक चलता है मालती" शर्म्माजी बोले—"जब खर्च करने के लिए पास काफ़ी रुपया रहता है। एक साधारण व्यक्ति का सा जीवन व्यतीत करना पड़े, तो साल-डेढ़-साल में ही होश ठिकाने लग जायँ।...मैंने कुछ खटकनेवाली बातें कह दी थीं, उन्हीं की प्रतिक्रिया स्वरूप आज यह त्याग-वृत्ति दिखा रही हो। जिस दिन पैसा पास न होगा और एक ओर ये भाई और भाभियाँ भी तुम्हारे स्वतंत्र जीवन-क्रम में छिद्र

कालिमा और कलुष देखना प्रारम्भ कर देंगी, दूसरी ओर रूढ़िवादी और परम्पराओं का ग़ुलाम यह समाज भी तुमको अपने बीच समादर न देगा, उस दिन तुम्हारी क्या स्थिति होगी, कभी सोचा है ?"

सचमुच मालती ने कभी सोचा न था कि शर्म्माजी उसे इस तरह का उत्तर देंगे। वह यह भी नहीं जानती थी कि जब वे उसे सार्वजनिक जीवन में आने का परामर्श देते हैं, तब पचीस हज़ार रुपये की रक़म को किसी जन हित के कार्य में लगा देने का ऐसा संयोग खो देने में उन्हें कोई हिचकिचाहट होगी। किन्तु इन सब बातों के ऊपर एक बात वह बार-बार सोचने लगती—इनको मेरा ध्यान कितना है!—यह मेरा हित कितना देखते हैं!

मालती शर्म्माजी की कुरसी के पीछे आगयी और बोली—आपकी ये बातें मेरे निकट कोई मूल्य नहीं रखतीं। मैं तो केवल यह जानती हूँ कि मैं चाहे जैसी स्थिति में और चाहे जिस प्रकार रहूँ—इसके सिवा यह ज़लील दुनिया भी मुझे चाहे जितना पतित समझे—मुझे किसी से कोई शिकायत न होगी, यदि मैं अपनी दृष्टि में उचित पथ पर अग्रसर बनी रहूँ।

"सुनो मालती, इधर सामने आकर सुनो"—शर्म्माजी कहने लगे—"तुम इस वक़्त प्रमाद की दशा में हो। मैं यह नहीं चाहता कि तुम मेरे प्रभाव में आकर कोई ऐसा काम कर बैठो, जिसके लिए तुम्हें बाद में पछताना पड़े। सार्वजनिक जीवन काँटों का पथ है। एक बार उसमें आगे बढ़कर फिर पीछे लौटने में भी दुर्दशा से मुक्ति मिलना दुर्लभ है।"

शाम हो गई थी और कमरे में अँधेरा हो रहा था, इसलिये शर्म्माजी ने झट उठकर बिजली का स्विच दबा दिया। मालती अपनी कुरसी से उठकर खड़ी हो गयी। बोली—मैंने ख़ूब सोच-समझ लिया है। आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं, यह मैं स्पष्ट देख रही हूँ। लेकिन अब शाम हो गयी। चलिये, जरा घूम आयें। आज आकाश भी स्वच्छ है। बरसने की गुंजायश कम ही है।

शर्म्माजी उठकर चलने को तत्पर थे, किन्तु बारम्बार उनके मन में आता—क्या मालती के साथ खुले-तौर पर मेरा घूमना जनता की दृष्टि में

एक व्यर्थ का कुतूहल उत्पन्न करने का कारण न होगा ? और क्या मुझे इतना अवकाश है कि मैं इस तरह निरुद्देश्य घूमता फिरूँ ? मुझे कांग्रेस-आफ़िस जाना है। कई दिनों से मजदूर-संघ का कोई हाल-चाल नहीं मिला। एक सार्वजनिक सभा श्रद्धानन्दपार्क में भी करानी होगी। उसके सम्बन्ध में चन्द्रगुप्त से मिलना आवश्यक है।...रञ्जन की तबियत अलग गड़बड़ है।...कल अगर पाँच-सौ रुपये का प्रबन्ध न हुआ, तो 'संजीवन' छपेगा कैसे ! कागज़ कहाँ से आयेगा ?

वे कमरे में टहल रहे हैं। मालती एक ओर खड़ी है। उसके हाथ में एक समाचार-पत्र है। वह प्रतीक्षा में है कि कब शर्म्माजी चलें। किन्तु उसने देखा, वे चल नहीं रहे; कुछ सोच रहे हैं। इसी क्षण उसकी ओर जो उनकी दृष्टि जा पहुँची तो मालती जरा मुसकराकर कहने लगी—चलिये न, सोचते क्या हैं ?

सोच यह रहा हूँ कि—शर्म्माजी ने अपने दहकते हुए हृदय की भट्ठी को जरा कुरेदते हुए कहा—चिड़िया तो तुम ज़रूर हो, इसमें शक नहीं, और उड़ना तुम्हारे लिए अस्वाभाविक भी नहीं है, लेकिन देखता यह हूँ कि मैं तुम्हारे साथ उड़ना भी चाहूँ, तो उड़ नहीं सकता। न तो मेरे पर इतने फैले हुए हैं और न मुझमें इतने दूरदेश तक उड़ने का हौसला ही है।

मालती एकदम से स्तम्भित हो उठी। उसके कपोलों पर लालिमा छा गयी। वह बोली—आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

शर्म्माजी के हृदय में एक धक्का-सा लगा। बात एक प्रकार से सत्य थी। किन्तु उन्होंने सोचा, यह नयी बात है। चिन्तक, महात्मा और तपस्वी लोग प्रमदाओं के साथ इस प्रकार का व्यवहार प्राचीनकाल से ही करते आये हैं। आदर्श का पथ ही काँटों से भरा रहता है। हम कर ही क्या सकते हैं !

तब दृढ़ता के साथ अपने को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ। तुमको इतना अवकाश है कि तुम पार्क में जाकर घूमो। वहाँ ठंढी-ठंढी हवा तुमारे कोमल कलेवर को स्पर्श करे, हरे लान पर चहल-

कदमीं करती हुई जब तुम किसी गुलाब के पुष्प की सुवास से तरंगित हो उठो, तो तुम्हारी कल्पनाओं के बन्द, सुप्त और अधखुले स्तर खुलकर, चटककर, तुम्हें किसी के संतप्त वक्ष और तृषित-अधरों की ओर ले जाना चाहें, हरे-भरे नवपल्लव टहनियों के साथ दोलन करें और तुम्हारा जी चाहे कि यहीं—इसी स्थल पर—सृष्टि की इस नैसर्गिक छवि पर मुग्ध होकर नृत्य करूँ। और तुम सोचने लगो—मेरे नटनागर! तुम कितने सुन्दर कलाकार हो!

क्षण भर रुककर टहलना रोककर, किवाड़ से लगकर, रूमाल जेब से निकालकर मस्तक, मुँह और आँखों को झट-से पोंछते हुए वे फिर कहने लगे—किन्तु क्या तुमने यह जानने का कभी कष्ट उठाया है कि जिन वृद्धा माताओं के इकलौते बेटे, जीवन की विषमताओं से लड़ते-लड़ते मृत्यु से आलिङ्गन कर रहे हैं, उनका अवलम्बन क्या है? आज का हमारा पूँजीजीवी अन्धसमाज और ग़ुलाम देश, जिन दुधमुँहे बच्चों को ताजी हवा, पोषक खाद्यसामग्री, सुन्दर खिलौने, फ़सल-फ़सल के अनुकूल स्वच्छ कपड़े और रहने के लिए साफ़-सुथरे मकानों का प्रबन्ध नहीं कर रहा, जिन बालकों और युवकों को, उनकी स्वाभाविक अभिरुचियों के अनुकूल शिक्षा, कार्यक्षेत्र और विकासमूलक सुविधाएँ प्राप्त नहीं, जिनकी महत्वाकांक्षाएँ अपूर्ण, झुलसी हुई और जीर्णजर्जर हैं, उनके सुख-दुःख देखने-समझने—उनकी समस्याओं का समाधान करने—से विरत रहकर आज उस नटनागर की कला कहाँ सो रही है! पर मेरे सामने एक कार्य-क्रम है—एक योजना। मैं उसी के साथ जीता हूँ और उसी की पूर्ति में मरना चाहता हूँ। मुझे इतना अवकाश कहाँ है कि मैं तुम्हारे साथ घूमने चल सकूँ।

सुनकर मालती स्तब्ध रह गयी। तुरन्त कुछ कह सकने की स्थिति से वह बहुत दूर जा पहुँची। उसे प्रतीत हुआ, उसकी सारी आभिजात्य भावना धूल में मिल गयी। एक ओर वह अपने प्रति एक हीनभावना से भर गयी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह मानवता से दूर—बहुत दूर—किसी ऐसे भूखंड में जा पहुँची थी, जहाँ केवल हिंसक और वन्य सभ्यता का निवास था। उसे अपना निकट पूर्व का जीवन—उसका एक-एक क्षण—याद आने लगा।

उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे किसी डॉक्टर ने उसे प्रमाद का इंजक्शन दे दिया है। वह अपने खोये स्वप्नों की ओर दौड़ गयी। कई व्यक्ति उसकी स्मृति पर आये और चले गये। एक घृणा का भाव उनके प्रति उसके मन में भीतर-ही-भीतर विष की भांति फैल गया। अपने आप कुत्सा की एक कालिमा वह अपने मुख पर देखने लगी। वह जहाँ खड़ी थी, वहीं खड़ी रह गयी। उसे बोध हुआ कि वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती। उसे जान पड़ा, इस कमरे की जड़ दीवारें भी उसे एक वासनारत कुलटा के रूप में देख रही हैं।

वह चुप ही बनी रही। धीरे-धीरे उसके मन में अपने आप एक विचार उठने लगा। वह सोचने लगी—उसने कभी कोई ग़लती नहीं की। उसने तो सदा अपनी आत्मा का रस—अमृत—दिया ही दिया है; पाया बदले में कुछ नहीं। कुछ पाया भी, तो वह—धोखा और प्रवञ्चना!

उसका मुख एकदम से विकृत हो गया। दाँतों से एक बार उसने अपने होंठों को इतनी ज़ोर से दबा लिया कि उसे मालूम पड़ा, मानों वे कटना चाहते हैं। फिर सहसा आगे बढ़कर वह कुरसी का पृष्ठभाग पकड़ते हुए पहले अपने को दृढ़ता के साथ थहाने लगी; फिर बोली—आप मनुष्य नहीं हैं शर्म्माजी और मैं इतना जानती हूँ कि आप देवता भी नहीं हैं। आपके हृदय नहीं है। आप पत्थर हैं। आप में वीरोचित साहस नहीं है। आप में पौरुष नहीं है; केवल दम्भ है—मिथ्या और विकृत। आप एक सुसंस्कृत-नारी का सम्मान करना तो दूर, उसके साथ बैठने और उससे बात करने योग्य भी नहीं हैं। आप असभ्य और कायर हैं। ऐसा पुरुष कभी नेता नहीं हो सकता और ऐसे पुरुष को सेवा के किसी जिम्मेदार पद पर रहने का अधिकार नहीं है। मैं जाती हूँ और अब आपके पास कभी नहीं आऊँगी

और इतना कहकर मालती चल दी।

साँप काट लेने पर जो दशा शरीर-भर में विष फैल जाने
होती है, उस समय शर्म्माजी ने अनुभव किया, वही दशा

देर तक वे कमरे में टहलते रहे। उन्हें कई जगह जाना था, पर वे कहीं नहीं जा सके। वे अपने समक्ष एक महासमुद्र का भीम विस्फूर्जन देख रहे थे। वे साफ़ देख रहे थे कि अब तट पर खड़ा रहना कठिन है। फिर उन्होंने कल्पना के उसी पट पर देखा कि वे यद्यपि पहाड़ की एक चोटी पर खड़े हैं और समुद्र की लहरें उन्हें कभी छू नहीं सकतीं, किन्तु वारम्वार वे अपने आपसे पूछने लगते—क्या मैं इनके आह्वानों को निरन्तर अस्वीकार ही करता रहूँ ?

चार

शरीर का कोई विशेष अंग जब जल जाता है, तो उसमें दो प्रकार की पीड़ा होती है। एक तो केवल उसके जले हुए भाग से सम्बन्ध रखती है, दूसरी न केवल उस अंग-विशेष को, वरन् सम्पूर्ण शरीर और मन को भी कुरेदती है। एक तो उस अंग से शरीर के अन्य अंगों के कार्य-संचालन का सम्बन्ध होता है; अतएव एक की क्रियाशीलता रुक जाने से अन्य सम्बद्ध अंगों को भी अपना कार्य-क्रम स्थगित कर देना पड़ता है। दूसरे उस पीड़ा को जिन कारणों ने उत्पन्न किया है, उनके इतिहास के छानवीन की क्रिया भी निरन्तर मन के भीतर चलती रहती है। पीड़ित व्यक्ति सोचता है कि कौन जाने कब इस व्यथा का अन्त होगा—पता नहीं कब तक यातना का यह क्रम चलेगा ! कमजोर हृदय का प्राणी हुआ, तो वह यह भी सोचता है कि वीच में कहीं अन्य कोई व्यतिक्रम उपस्थित न हो जाय ! और ईस्थेटिक सेंस (सौन्दर्य्य-वोध) अगर उसका कुछ विकसित हुआ, तो वह यह भी सोचता है कि जलने के जो—सफ़ेद और लाल—अमिट चिह्न पड़ जाते हैं वे अगर पड़ गये, तो जीवनभर के लिए उनकी एक कुरूपता भी इस शरीर के साथ लगेगी। वार-वार वह उस दुर्घटना की दारुण यातना के इतिहास को कुरेदने का अवसर देगी। विना पूछे, विना आग्रह किये, वह यह वत-लाने को तत्पर रहेगी कि किस प्रकार यह अंग जला था और उससे कैसी

असह्य यन्त्रणा का विस्फोट हुआ था; चिकित्सा का क्रम कैसा चला था और कितने दिनों बाद उससे मुक्ति मिली थी !

किन्तु प्रेमी से मिले हुए अपमान की जलन उस जलन से भी अधिक दाहक होती है। उससे सारा शरीर ही नहीं, मन-प्राण तक जलता है। शरीर के समस्त धर्म नियन्त्रण और व्यवस्था के क्षेत्र में सर्वथा असहाय हो उठते हैं; खाना-पीना, सोना और वार्तालाप करना ही नहीं, चेतन और अर्ध-चेतन अवस्था का कोई भी कार्य अच्छा नहीं लगता। सभी ओर एक व्यर्थता-ही-व्यर्थता पुञ्जीभूत हो उठती है।

फिर यह पीड़ा एक ही ओर नहीं दाह उत्पन्न करती, केवल उसी को व्याकुल नहीं बनाती जिस पर आक्रमण होता या आघात पहुँचता है। वरन उसे भी व्यथित किये बिना नहीं छोड़ती, जो आघात पहुँचाता है। दोनों दूसरे के सम्बन्ध में सोचते हैं—पता नहीं, वह इस समय क्या सोचता हो और कैसी दशा में हो ! जो अपमान करता है, वह सोचता है—मालूम नहीं, इस चोट का उस पर क्या प्रभाव पड़ा हो। और जिसका अपमान होता है, वह सोचता है—मालूम नहीं, इस आघात को पहुँचा लेने के अनन्तर उन पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई हो !

शर्म्माजी के यहाँ से लौटकर जब मालती चल खड़ी हुई, तो वह अत्यधिक उत्तेजित थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। एक-आध बार तो वह अपने को धिक्कारने लगी—तूने यह किया क्या ! कलमुँही, तेरा इतना साहस कि तू शर्म्माजी का अपमान करे ! उत्तर में जब वह सोचती—और उन्होंने जो मेरा अपमान किया सा !—तो उसे अपना पहलू बिलकुल लचर मालूम होता। कोई उससे कहने लगता—उन्होंने तुम्हारा कुछ भी अपमान नहीं किया। उन्होंने तो अपनी वास्तविक स्थिति का स्पष्टीकरण मात्र किया था।···अच्छा, उन्होंने तुझे जो एक उड़ती चिड़िया की समता दी, सो उसमें भी गलत क्या है ?

इसी प्रकार के विचार-मंथन के साथ वह घर जा पहुँची।

घर पहुँचने पर सब के पहले उसे बड़ी भाभी तारिणी मिलीं। सामने पड़ते ही बोलीं—आज बड़ी जल्दी छुट्टी मिल गयी! किन्तु इतना कह जाने पर वे आपही संकुचित हो उठीं। कारण, ऐसा उद्विग्न मुख तो उन्होंने इधर बहुत दिनों से उसका देखा न था। चाल में इतनी तीव्रता और उत्तर के प्रति ऐसी उदासीनता भी न देखी थी। उन्होंने तुरन्त माँ से जाकर कहा—बीबी लौट आयी हैं। पर चेहरा इतना उतरा हुआ है कि जान पड़ता है, कहीं-कुछ कोई खास बात हो गयी है!

तारिणी माँ से ये बातें कुछ इस तरह धीरे-धीरे कह रही थी कि पूर्णिमा को भी कुतूहल हुआ। वह झट से पास आ गयी। बोली—तबियत तो ठीक है न?

तारिणी बोली—मैं कह नहीं सकती।

माँ ने कह दिया—ज़रा देखें तो चलके, क्या बात है?

सब की सब उसके कमरे में जा पहुँचीं।

द्वार भीतर से बन्द था। तारिणी ने ज़ोर से धक्का दिया।

मालती तकिये पर सिर रखकर लेटी सिसकियाँ भरती हुई रो रही थी। न वह उठी कि द्वार खोल दे और न उसने कोई उत्तर दिया। तब तक तारिणी ने और भी ज़ोर से धक्का दिया।

अब मालती को दरवाज़ा खोलना पड़ा। किन्तु उसके बाद झट से वह पलँग पर आकर गिर पड़ी और फूट फूटकर रोने लगी। उसी समय तारिणी, पूर्णिमा और माँ ने आकर उसे घेर लिया।

तारिणी ने पूछा—क्या हुआ बीबी?

पूर्णिमा ने देह पर हाथ रखकर देखा तो कहा—हरारत भी तो है।

माँ ने मालती के सिर को गोद में भर लिया। बोली—जान पड़ता है, किसी से कुछ कहा-सुनी हो गयी है। मैंने कितना समझाया कि इन सभा-समाजों में कुछ नहीं रक्खा है। लेकिन मुझे तो तू पागल समझती है। पर मैं तो जानती हूँ न, मान-प्रतिष्ठा अथवा अन्यस्वार्थों को लेकर ये लोग झगड़ते रहते हैं। निःस्वार्थ सेवा का आदर ही कौन करता है। फिर इन

मर्दों के बीच में स्त्रियों की तो और भी आफ़त है। सभी उनकी ओर लपकते हैं, सभी उनसे अपना स्वार्थ-साधन कराना चाहते हैं। स्पर्द्धा और द्वेष उनके—समाज के—अन्दर होता है, पर दुष्परिणाम स्त्रियों के हिस्से आ लगता है। "शर्म्माजी के यहाँ गयी थी न ?" उन्होंने पूछा।

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप रोती रही।

"मैं तो जानती हूँ न" माँ फिर कहने लगीं – बात ही उन्होंने कोई लगती हुई कह दी होगी, जिसको तू सहन न कर सकी। मैं सब जानती हूँ। पूछो, नेता तो तुम हो गये और नाम भी तुमको झौआ भर मिल गया, लेकिन उससे तुम्हारे घर-द्वार को क्या फ़ायदा पहुँचा ! मैं क़सम खाकर कह सकती हूँ कि उसकी जोरू के पास गहने के नाम पर जो दो लर की एक जंजीर भी हो।

इसी क्षण मालती ने आँसू पोंछते हुए कुछ उग्र होकर कह दिया—आप उनका अपमान कर रही हैं माँ !...मैं...मैं। और वह फिर सिसकने लगी।

"और मैं पूछती हूँ" माँ ने तीव्र पड़कर कहा—उन्होंने जो तेरा अपमान किया हो, तो !

मालती ने सिसकना बन्द कर दिया था। उसका मुँह एकदम से लाल पड़ गया था। जैसे अधर, वैसे कपोल ! पर उस समय तो उसके नयन भी अरुणारे हो रहे थे। करुणा के मोती उनसे ढुलक रहे थे।

पर उस समय उसके भीतर ही भीतर कुछ ऐसी लहर आयी कि वह आँसू पोंछ-पाँछकर सावधान हो गयी। माँ के प्रश्न के अनन्तर उसने झट अधिक तीव्र पड़कर कह दिया—वे मेरा क्या, किसी का भी अपमान कर नहीं सकते।...फिर जब तुम उन्हें जानती नहीं हो—जान सकती भी नहीं हो—तब उनकी बात उठाती ही क्यों हो !

"जो चाहो करो, मुझको क्या है !"...कहती हुई माँ तिनगकर उठ खड़ी हुईं। बोलीं—भोगना जीवन-भर तुम्हें पड़ेगा।—रोना तुमको है। मुझे क्या है ? और दो-चार वर्ष इसी तरह काट दूँगी। वे बने होते, तो मैं कुछ न कहती। जब तक जिये, तेरी पढ़ाई-लिखाई की ही रट लगाये रहे।

अब जब तू पढ़-लिखकर सयानी हुई, तो तेरा यह हाल है ! खुद तो चलते बने; मुझे इस जंजाल में छोड़ गये !

माँ इसी तरह बड़बड़ाती हुई चली गयीं !

तारिणी बोली—अब तुम मुँह धो डालो बीबी। तबियत साफ़ हो जायगी। और उसने पूर्णिमा की ओर देखकर संकेत किया—गिलास-भर पानी तो मँगा लो।

पूर्णिमा द्वार पर जाकर पुकारने लगी—अरी अमिया री।...चल तो झट से। एक गिलास पानी ले आ।

क्षणभर बाद पानी से मुँह धोकर मालती पलँग पर बैठी ही थी कि अमिया ने पुनः लौटकर कहा—एक बाबू मिलने आये हैं। यह चिट दी है।

पाँच

दो साथियों के युद्ध में विजेता का जीवन भी सर्वथा सुखमय नहीं होता। उसका एक पक्ष दुःखमय भी होता है। यह ठीक है कि वह स्वनिश्चित आघातों और आक्रमणों के प्रयोग, उसकी तीव्रता, कठोरता और अचूक सफलता को प्रत्यक्ष अनुभव करने का अवसर पाता है। किन्तु इसके बिलकुल विपरीत उसकी एक दूसरी स्थिति भी है। उसमें विजित ही आहत नहीं होता, विजेता भी होता है। क्योंकि जो आघात वह अपने विपक्षी पर करता है, वह जितना तीखा और मर्मभेदी होता है, उतना ही अपने आपको भी आहत कर डालता है। उसमें क्षुब्ध स्थितियों की प्रतिज्ञाएँ स्थिर नहीं रह पातीं और स्वाभिमान तो अन्तरिक्ष का वासी हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह अपने प्रतिपक्षी की न स्तुति सहन कर पाता है, न निन्दा। क्योंकि उसकी स्तुति अपना अपमान हो उठती है और निन्दा उसका अपमान, जो उसके अन्तःकरण का देवता, उसके अतल लोक का साथी होता है। मनुष्य के सरल, पावन और सहृदय रूप की यह कैसी विचित्र स्थिति है !

तीसरे दिन की बात है, प्रातःकाल गिरधारी जरा देर से उठा था। आज भी रात में सोते समय कई बार उसे मालती का ध्यान आया। इधर रात को रज्जन को ज्वर भी १०४ प्वाइंट ८ तक रहा। अचेत अवस्था में वह कभी-कभी कुछ बातें अस्पष्ट रूप से बक रहा था। बीच में वह प्रायः पानी माँगता, रेणु कटोरी में उसे पानी पिलाती। रज्जन पूछता—बाबू नहीं आये अम्मा? रेणु उत्तर देती—आये तो हैं रज्जन। उस कमरे में लेटे हुए हैं। तब वह गिरधारी के पास आकर उसे साथ ले आती।

एक बार वह रज्जन के सामने जा खड़ा हुआ और बोला—

"कहो बेटा रज्जन, कैसी तबियत है?"

उसने कहा—बुखाल आ गया है बाबू।

गिरधारी ने देखा, उसकी वाणी में व्यथा स्पष्ट झलकती है। वह चुपचाप खड़ा रहा। तब उसी क्षण रज्जन पिता की बात न सुनकर अपनी बात कहने लगा—

"अभी ले आओ मोतल बाबू, हम अभी उस पर चढ़कर घूमेंगे और लेचर देंगे। तुम भी लेचर देना बाबू। लोग ताली पीतेंगे। हम भी ताली पीतेंगे।"

फिर बोला—तुमने तो कहा था, हम तुम्हें मोतल ले आयेंगे। लाये नहीं बाबू।

गिरधारी ने जवाब दिया—तुम्हारी तबियत तो अच्छी हो जाय; तब तुमको साथ लेकर मोटर खरीदेंगे। खूब अच्छी सी मोटर लेंगे अपने रज्जन को।...उसमें कौन-कौन बैठेगा रज्जन?

"अभी नहीं रज्जन। अभी तो तुमको बुखार है। मोटर पर घूमोगे, तो हवा न लग जायगी। तबियत और ज्यादा खराब हो जायगी। चढ़े बुखार में कोई लेक्चर देने जाता है।

"हूँ। और तुम क्यों जाते हो?"

"हम जाते हैं तो हमको मामूली बुखार रहता है। पर तुमको बहुत ज्यादा है। देखो न, तुम्हारा मत्था कैसा तप रहा है।"

"अच्छा, कल चलेंगे। अच्छा बाबू! हमको जलूल ले चलना। हम मोतल लेंगे। हम ''।"

"अब तुम सो जाओ। तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं है।"

और वह फिर आँखें मूँदकर सोने को चेष्टा करने लगा।

इसी प्रकार दुबारा जब वह रञ्जन को देखने गया, तो वह अस्पष्ट रूप से कभी-कभी पड़ोस की समवयस्क लड़की सुधा का नाम ले रहा था। वह अक्सर उसके साथ खेलता है। दोनों अजीब तरह के तमाशे करते हैं। वह जज बनता है। रञ्जन अपना जजमेंट पढ़ता हुआ कहता है—तुम पर चौबिस दफ़ा लगाई गयी। तीन साल की क़ैद और पाँच-सौ रुपये ज़ुर्माना। और तुरन्त जज अपने आसन से उतरकर अपराधी से आकर लिपट जाता है। वह तब अपराधी न रह कर कुछ और हो जाता है। उसके शब्द होते हैं—"तुम जेल जा रही हो! जाओ" और तब दोनों गले मिलते हैं! जान पड़ता है, इसी तमाशे का उसे स्मरण आ गया। वह कह रहा था—तुम जा रही हो छुधा? जाओ। और रञ्जन के आँसू बह रहे थे!

इस दृश्य की कल्पना करते और रञ्जन के बहते आँसू देखते हुए गिरधारी को अपने आप पर सन्देह होने लगा! उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह स्वयं भी रो पड़ेगा। वह उसके आँसू पोछने लगा।

रेणु को आश्चर्य हुआ। वह बोली—अधीर होने की आवश्यकता नहीं है।

गिरधारी कुछ बोला नहीं। वह चुपचाप उठकर अपने कमरे को लौट गया। उस समय उसे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उसके भीतर एक महा समुद्र गर्जन कर रहा था। उसकी लहरें उसके ऊपर छींटे डालती हुई लौट जाती हैं। उसे ऐसा कुछ बोध हुआ, जैसे वे बार-बार उससे कहने आती हों—

"अच्छे हो जाने पर भी रञ्जन को मोटर तो क्या—एक ताँगा भी नसीब न होगा!"

इस तरह गिरधारी रात को कई वार उठा और सोया। सोया क्या, सोने का प्रयत्न वह करता रहा। नींद उसे हलकी-सी ही आयी। एक तरह से अर्धनिद्रित अवस्था में ही उसकी यह रात कटी।

पलँग पर वह अभी उठकर बैठा ही था कि उसके नौकर लोचन ने आकर कहा—कोई एक स्त्री मोटर पर आयी है। खद्दर पहने हुए है। आपसे मिलना चाहती है।

गिरधारी को ध्यान आ गया—प्रभाजी होंगी। उस दिन कांग्रेस-आफ़िस में मिली थीं। आने के लिए कहा भी था; लेकिन इतने सवेरे··· !

वह बोला—अच्छा, यह कुरसी साफ़ कर दो और उनको भेजकर चाय बनाओ। और देखो, चाय के साथ खाने को भी हो सके तो कुछ बना लेना।

लोचन चला गया। गिरधारी ने भी उठकर एक गंजी डाल ली। रात को वह केवल अण्डर-वियर पहने सो गया था। इतने में उसकी दृष्टि जिस व्यक्ति पर जा पड़ी, वह मालती थी। देखते ही वह जैसे चौंक पड़ा। बोला—अच्छा, तुम हो! और यह खद्दर की साड़ी भी खूब रही। लेकिन सबसे पहले रेणु के पास चलो। हालांकि रात उसे जगते बीती है। शायद सो भी रही हो।

आगे-आगे गिरधारी, पीछे-पीछे मालती।

चलते समय मालती बोली—आपने मुझे माफ़ कर दिया न?

गिरधारी ने बिना किसी हिचकिचाहट के, उसकी ओर देखे बिना, कह दिया—मैं अपने को कभी क्षमा नहीं कर सकता।

उत्तर सुनकर मालती उनकी ओर देखती रह गयी। लेकिन गौरव और उल्लास के साथ।

अन्दर जाने पर पता चला, वह वास्तव में सो रही है। बालों की एक लट मस्तक पर होती हुई कपोल पर आ गई है। नाक में सोने की कील और कानों में आर्टिफ़िशियल मोतियों के झूमर। साड़ी एकदम उजली न होकर दो दिन पहनी हुई है। गला खुला हुआ है और पैरों में

अँगूठे के पासवाली अँगुली में केवल एक-एक मछली पड़ी है। लम्बा छरहरा बदन है। फ़र्श पर दरी मात्र बिछी है। चद्दर सिरहाने तहाया पड़ा है। दायाँ पैर पाटी के ऊपर है और बायाँ हाथ मुँह और सिर को अर्धवृत्त से घेरता हुआ मिचवे के निकट आ गया है। मुँह पर कुछ स्वेद-बूँद झलक रहे हैं। खिड़की खुली है, जिसमें चिक पड़ी हुई है। बत्ती बुझाई नहीं गयी है और क्षीण प्रकाश भीतर फैला हुआ है। गिरधारी ने सबसे पहले बत्ती बुझाई, फिर रेणु के पास से चुपचाप लौटते हुए वह मालती को रञ्जन के पास ले गया। बोला—रात भर डिलीरियम से चौंकता और बकता रहा। यद्यपि बातों में आग्रह उसका जैसा उचित है सपने भी उसके वैसे ही सर्वथा स्वाभाविक हैं। इस समय नींद में हैं।

मालती ने निकट आकर सिर पर हाथ फेरा, नब्ज देखी। बोली—ज्वर इस समय भी एक-सौ-एक से कम न होगा।

गिरधारी—सम्भव है, आठ बजे तक सौ रह जाय। फिर दोनों उसी कमरे की ओर जाने लगे। द्वार से पार होते हुए मालती ने पूछा—बस, यही एक बच्चा हुआ क्या मास्टर साहब ?

"यह चौथा है। पहली बार पुत्र फिर दो पुत्रियाँ। तीनों साल-दो-साल के बाद चल बसे। देखा नहीं, रेणु किस दशा को प्राप्त हो गयी है! विवाह का अभिशाप भोगते-भोगते स्वस्थ-से-स्वस्थ और सुन्दर-से-सुन्दर स्त्री दस वर्ष के अन्दर प्रायः सूखकर अमचुर हो जाती है।"

गिरधारी पूर्ववत् पलंग पर आ गया। मालती कुरसी पर बैठ गयी।

अन्तिम वाक्य-कथन के साथ उनकी मुद्रा कुछ अधिक विदग्ध हो उठी। बात रेणु के सम्बन्ध में उठी थी, इसलिए मालती ने कुछ उत्तर देना उचित नहीं समझा। तब गिरधारी कहने लगा—गृहस्थी का भार उसकी समस्त महत्वाकांक्षाओं को धूल में मिला देता है। उसका सारा दिन केवल खाना बनाने, बच्चों की देखभाल करने और दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार घर को पूर्ण और तत्पर रखने में बीत जाता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सौन्दर्य और मानसिक विकास के रक्षण और उन्नयन का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता।

चारों ओर से घिर कर, विवश होकर, वह पति की सहचरी न रहकर सर्वांश में एक अनुचरी हो जाती है।

बात समाप्त होते-होते लोचन ट्रे में चाय और दो तश्तरियों में पकौड़ियाँ ले आया और पलँग के बाईं ओर रक्खी छोटी टेबिल पर लगाकर उसने मालती के आगे रख दिया।

मालती इसी क्षण बोल उठी—आप तो हमारी बात कह रहे हैं।

मतलब यह कि इस बात में आपकी कोई मौलिकता नहीं है। इसके सिवा यह भी कि अपनी बात कहिये; हमारी बात क्या कहते हैं! और तभी इस बात के साथ उसके होठों पर एक मन्द मुसकान भी आ गयी!

लोचन ट्रे रखकर चला गया था। अब फिर लौट आया। इस बार उसके हाथ में 'टुडे' एक अँग्रेजी दैनिक-पत्र था। पत्र लेकर गिरधारी उसे देखने लगा। मालती चाय बनाने लगी। गिरधारी बोला—मैं सिर्फ़ दो मिनट लूँगा, तब तक तुम···। और उसने देखा, उसके कहने से पहले ही मालती ने चाय ढालना प्रारम्भ कर दिया है!

गिरधारी ने इसी क्षण सूचित किया—विश्वनाथ गिरफ़्तार हो गया।

मालती ने पूछा—यह विश्वनाथ कौन है?

"मजदूर-सभा का हमारा एक वीर कार्यकर्ता।" गिरधारी ने कहा—"एक ही जिन्दादिल आदमी है। सन् ३५ में जेल गया था। इनक़लाब के नारे लगाने के उपलक्ष्य में जब उसे पच्चीस बेंत की सजा मिली, तो उसने उफ़ तक नहीं किया। २७ दिन की भूख-हड़ताल में यही सब से अन्तिम व्यक्ति था, जो अन्त तक दृढ़ रहा।"

इसी क्षण मालती ने पूछा—शुगर आप कितनी लेते हैं?

"बस, उतनी ही, जितनी तुम्हारे यहाँ उस दिन डाली गयी थी।" कहते हुए गिरधारी ने पत्र को एक ओर रख दिया।

मालती सोचने लगी—तो मेरे यहाँ जाने और उस सम्बन्ध से चाय पीने की बात भी ये अब तक मन में डाले हुए हैं। सम्बन्ध के सम्पर्क को,

जान पड़ता है, ये अपने से अलग नहीं कर पाते। उसने चाय का कप गिरधारी के आगे बढ़ा दिया।

कप लेते हुए गिरधारी बोला—जेल में बेंत लगने पर, जानती हो, आदमी की दशा कैसी हो जाती है!

मालती ध्यान से शर्म्माजी की ओर देखती हुई बोली—बतलाइये।

शर्म्माजी बोले—जो आदमी जितना अधिक साहसी, सच्चा, निरपराध, कायर और दोषी होता है, बेंत लगने पर उसकी दशा भी तदनुसार उत्तम और शोचनीय हो जाती है। निर्दोष, वीर और एक उद्देश्य के लिए यातना भोगने वाले प्रायः आह तक नहीं करते और विशेष अवस्थाओं में तो उनका वजन तक बढ़ जाता है। किन्तु दोषी, भीरु और दुर्बल आत्मा के व्यक्तियों को पेशाब और पाखाना तक हो जाता है। बेहोश हो जाना तो एक साधारण बात है। शारीरिक यन्त्रणा के सिवा आत्मग्लानि की पीड़ा शत-शत बिच्छुओं के दंश से भी अधिक दाहक होती है।

आश्चर्य्य और सन्ताप से मालती ने पूछा—आपने स्वयं देखा है?

शर्म्माजी बोले—देखा ही नहीं, उन्हें समझाया और धैर्य्य बँधाया है। ऐसे-ऐसे भावुक लोगों को, जो सम्भव था कि देर हो जाने पर अपनी जान तक दे देते!

विचार-मग्न मालती स्तब्ध रह गयी! तदनन्तर गिरधारी ने पहला घूंट अभी सिप किया ही था कि सामने से रेणु आती देख पड़ी। तब वे बोले—देखो रेणु, मालती तुमसे मिलने आयी है।

रेणु ने एक बार मालती को देखा, मालती ने रेणु को; हाथ जोड़ती रेणु बोली—नमस्ते। और उल्लास की एक क्षीण रेखा उसके मुख पर खेल गयी।

'नमस्ते' के साथ मालती बोली—मैं अभी आपके कमरे से होकर लौट रही हूं। आप सो रही थीं।

"हां, आजकल रञ्जन के बीमार हो जाने के कारण" रेणु बोली—"अक्सर सबेरे और झपक जाती है। फिर आज तो मैं सो ही नहीं सकी! अभी चार बजे ज़रा-सी झपकी लग गयी थी।

गिरधारी ने कहा--खड़ी क्यों हो, यहाँ बैठ जाओ न। और उसने अपने को जरा एक किनारे कर लिया। फिर पूछा – चाय पियोगी ?

रेणु मुसकराती हुई बोली—'जिसमें मालती की छाया पड़ती हो ऐसी चाय पीने को मिलती कहाँ है!' और चुप रह गयी। फिर उठकर यह कहती हुई अन्दर जाने लगी कि अभी आती हूँ।

मालती गौरव के भाव से सिहर उठी। बोली—इस सम्मान के लिए धन्यवाद।

रेणु के चले जाने पर गिरधारी ने पूछा—कहो, क्या राय है? पूछने के क्षण उसकी दृष्टि मालती के मुख पर थी।

मालती बोली—जैसे मेरे निकट आप हैं, भाभी उससे किसी प्रकार, किसी दिशा में कम नहीं हैं! आप तो जब-जब उग्र भी हो उठते हैं; पर भाभी तो, जान पड़ता है, जैसे कभी किसी से नाराज़ होती ही न होंगी। अच्छा, आप ही बतलाइये, क्या कभी वे आपसे किसी विषय पर झगड़ी हैं?

इसी क्षण रेणु अपने लिए प्याला लेकर आ गयी। अभी वह स्वामी के पलँग पर बैठी ही थी कि गिरधारी ने कहा—अच्छा हो, इन्हीं से पूछ लो मालती।

रेणु बोली—क्या बात चल रही है?

मालती ने रेणु के लिए चाय ढालते हुए कहा—बात बड़ी मीठी है भाभी। मैं कह रही थी कि भाभी तो मुझे इतनी मृदुल जान पड़ीं, जैसे नाराज़ होना वे जानती ही न हों। फिर इसी सिलसिले में मैंने इनसे यह भी पूछा—अच्छा, आप ही बतलाइये, क्या कभी किसी विषय पर आपसे उनका झगड़ा हुआ है?

रेणु सोचने लगी—कण्ठ में मार्दव है, कथन में चुहल। वह बोली—झगड़ूँगी क्यों नहीं। अभी उसी दिन की बात है, मालूम नहीं कहाँ से खाना खा-आये। मैंने कितनी हौंस के साथ गुझियाँ बना रक्खी थीं। मेरा सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। इसके सिवा परसों रात को कितनी देर से लौटे। रञ्जन बार-बार कहता रहा, बाबू नहीं आये। इन्होंने मेरी परवा

कव की, जो मैं चुप रहती। मालूम नहीं, किस-किस के साथ घूमते रहते हैं। ऐसे लोगों का विश्वास क्या!

रेणु सारी बातें कहती गयी, लेकिन उसकी मुद्रा पर ऐसा कोई भाव झलकने नहीं पाया, जिससे उसके अन्दर कहीं कोई कसक लक्षित होती। गिरधारी हँसने लगा। बोला—लो, और सुनोगी?

मालती लजा गयी। एक-आध वार तो उसके मन में यह भी आया कि जानबूझ कर ये मुझे वना रही हैं! ऐसा तो नहीं है कि मास्टर साहव ने सारी बातें पहले ही कह रक्खी हों। किन्तु किसी बात को वह भ्रम और सन्देह से ढककर रखना नहीं चाहती। अतएव वह बोली—परसों तो भाभी, इनके साथ मैं ही थी। जहाँ कहीं भी ये गये, मैं साथ रही। वल्कि दरवाज़े तक मैं इन्हें छोड़ गयी थी। अधिक देर हो जाने के भय से मैं आपसे मिलने नहीं आयी। लेकिन मैंने इनसे यह वादा कर दिया था कि किसी दिन मैं भाभी से मिलने आऊँगी जरूर। फिर आज सवेरे उठते ही मैंने सोचा, आज ही क्यों न मिल आऊ। लेकिन आपने एक वात वड़ी महत्वपूर्ण कही। मैं भी उससे सहमत हूँ। वास्तव में ये लोग विश्वास करने योग्य नहीं होते।

और इस कथन के बाद वह हँसने लगी।

इस वार मालती के हास-दोलन को रेणु ने और भी ध्यान से देखा। देखा, शरीर का अंग-अंग जैसे कुछ कह उठता है।

गिरधारी भी मालती की वात सुनकर हँस पड़ा। बोला—षड्यंत्र तो काफ़ी संगठित जान पड़ता है। मुक्ति पाने की गुंजायश तक नहीं रह गई है।

पर गिरधारी की ओर एक भी दृष्टि डाले बिना मालती कहती गई—एक दिन की बात है, मैंने जो कहा—चलिये शाम हो गयी; ज़रा घूम आयें; तो इस पर ये इतने बिगड़े कि मुझे लज्जित किये बिना इनकी तबियत नहीं भरी।

आशंकाएँ उथल-पुथल मचाने में आगे-आगे चलती हैं; चाहे प्यार की हो, चाहे ईर्ष्या-द्वेष की। किन्तु एक आशंका ऐसी भी होती है, जो आगे

चलकर भी पीछे देखती चलती है। रेणु को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसने अब तक आगे ही आगे देखा है, पीछे कभी ध्यान ही नहीं दिया।

वह बोली—एक बात आप भूल जो रही हैं। घर के अन्दर बैठकर चाहे जैसी बातें की जा सकती हैं—गम्भीर से गम्भीर और गोपनीय। पर पार्क में साथ लेकर घूमने में वह आजादी भला कहाँ रह जाती है! कोई देखे तो क्या कहे, इसका एक भय भी तो नेता के लिए कम आतंक और आदर्श-स्थापन के लिए कम भयावह नहीं है। तभी तो मोटर में बैठकर सैर करने में इन्हें कोई आपत्ति नहीं हुई। आजकल ब्लैकआउट के दिन ठहरे। सड़कों पर यों भी अन्धकार छाया रहता है। अतएव आत्म-चेतन के राजपथ पर चलने में इससे बड़ी सुविधा भला कहाँ मिलेगी! एक मैं हूँ कि कभी सिनेमा देखने की भी इच्छा हुई, तो बीस काम लगातार गिना जायँगे। और फिर इस सिलसिले में बात करने में भी कहीं देर न हो जाय, इसलिए कुरता पहनते हुए तुरन्त सड़क पर ही देख पड़ेंगे!

"वाह भाभी, सचमुच तुमको पाकर आज मैं धन्य हो गयी।" मालती बोली—इनके आगे तो मैं बात तक नहीं कहने पाती, झट से ये मेरा मुँह बन्द कर देते हैं। किन्तु तुम्हारे समक्ष अपनी बात कहने में जैसे एक खोया हुआ साहस आप-ही-आप आ जाता है!

इस वार्तालाप के समय पहले तो गिरधारी मुसकराता हुआ कमरे में टहलता रहा, किन्तु रेणु का कथन समाप्त होते-होते वह फिर झट रञ्जन के पास जा पहुँचा। मालती ने ज्यों ही लक्ष्य किया, शर्म्मा जी अन्दर चले गये, त्यों ही वह चुप रह गयी। रेणु ने कहा—अब मैं जरा रञ्जन को देखती हूँ। आप तब तक उनसे बातचीत कीजिये। मैं अभी हाल भेजती हूँ।

और इसके बाद वह अन्दर जाने लगी।

मालती बोली—अब मैं भी चलूँगी।

"अच्छा, जाओगी?" कहती हास बिखेरती रेणु बोली—मुझे आज कितनी प्रसन्नता हुई, मैं ही जानती हूँ।

वह क्षण भर चुप रही, नमित दृष्टि और आकुल मन से। फिर सिर उठाकर उसका हाथ अपने हाथों में भरकर कहने लगी—क्या मैं आशा करूँ कि आप मुझे भूलेंगी नहीं!

शान्त, स्निग्ध और मृदुल कण्ठ से मालती ने उत्तर दिया—भूलूँगी कैसे, बल्कि तंग करने के लिए नित्य ही आ पहुँचूँगी।

'"मेरा सौभाग्य" कहकर रेणु क्षणभर रुकी और बोली—अच्छा।

दोनों ने हाथ जोड़कर नमस्ते की।

रेणु के अन्दर पहुँचते ही गिरधारी आ पहुँचा। बोला—मैंने कहा न था, ज्वर अभी कम होगा। वही बात हुई। डॉक्टर के आने का समय भी हो रहा है। तुमको और तो कहीं जाना है नहीं?

मालती ने तुरन्त कह दिया—नहीं तो। किन्तु अन्यत्र जाने का सन्देह आरोपित होते ही वह एक आशंका से आतंकित होकर कुछ गम्भीर हो गयी। परन्तु फिर क्षणभर में आप-ही-आप कुछ सोचकर प्रकृत हो उठी और सहज स्वाभाविक कण्ठ से पूछने लगी—किस डाक्टर की दवा चल रही है?

लोचन इसी समय तश्तरी में पान लाकर टी-सेट उठा ले गया।

गिरधारी ने उत्तर दिया—डॉक्टर ललित की।

तब मालती ने अधिक इधर-उधर न करके सीधी बात कह दी—आये देर हुई। मैं अब चलूँगी।

और वह नमस्ते करती हुई चल दी।

गिरधारी ने पूछा—शाम को आफ़िस में आओगी?

अन्यमनस्क भाव से मालती ने ज़रा-सा घूमकर उत्तर दिया—'कह नहीं सकती।' और फिर वह चल दी।

छै

वह नारी जो विवाह नहीं करना चाहती, वह क्यों चाहती है कि लोग उसके आन्तरिक जीवन से अनभिज्ञ रहें? अपने को समाज की दृष्टि से छिपाने; दृष्टि ही से क्यों, उसकी आलोचना से भी अक्षुण्ण रखने का मन्तव्य क्या है? समाज की अवमानना अगर वह सहन नहीं कर सकती, तो उसके द्वारा होने वाली सामाजिक नीति और आदर्श की उपेक्षा समाज ही क्यों सहन करे? उसे पति की आवश्यकता नहीं है, इसका यह अभिप्राय तो है नहीं कि उसे किसी पुरुष की आवश्यकता नहीं है। उसे पति नहीं मिला है, इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि पति से उसे जो कुछ मिलना सम्भव था, उसे किसी से भी मिलना या पाना उसने अपने लिए असम्भव कर डाला है।

चिट देखते ही मालती की मुद्रा एकाएक परिवर्तित हो गयी। वह सम्हलकर बैठ गयी और बोली—उन्हें हमारी बैठक में ले जा री अभिया! और कह देना उनसे, मैं अभी आयी।

तारिणी ने पूछा—है कौन?

"जानकर करोगी क्या?" विहँसती हुई मालती कहने लगी—"बहुत दिनों के बाद तो बेचारे को आने का साहस हुआ!"

उत्सुकता से पूर्णिमा बोली—अच्छा! तो यह कहो कि युवक के वेश में कोई लाजवंती युवती हैं।

मालती उठी और ड्रेसिंग टेबिल के सामने जा पहुँची। केशों की कुछ लटें इधर-उधर बिखर रही थीं। उन्हें ठीक करती हुई कहने लगी—तमाशा देखना हो, तो चिकों की ओट से देखो जाकर! कमरे के अन्दर जाते हुए बिलकुल सीधी दृष्टि पाओगी। क्या मजाल कि आँखें दायें-बायें ओर कहीं ज़रा-सी भी मुड़ पायें।

पूर्णिमा झट से उठ खड़ी हुई और आश्चर्य से बोली—सच.. बताओ, बीबी, तुम्हें मेरे सिर की क़सम?

"मैं झूठ थोड़े ही तुमसे कहूँगी भाभी" मालती बोली। वह उस समय पोमेड लगा रही थी।

"मैं भी देखूँगी" कहती हुई तारिणी भी पूर्णिमा के साथ चल दी।

विनायक अभी तक बरामदे में खड़ा था। अमिया उससे कह रही थी—इधर चले आइए।

इसी क्षण पूर्व और पश्चिम के दोनों कमरों की चिकें एकाएक हिलीं, खुलीं और उनसे बाहर निकलकर पूर्णिमा और तारिणी देखती क्या हैं कि एक दुबला युवक खादी की पोशाक में कैनवेस के जूते पहने हुए, इस ढंग से चल रहा है कि चलने का शब्द तक बचाना चाहता है। दृष्टि इतनी सीधी है कि जान पड़ता है, गर्दन घूम ही नहीं सकती। आँखों पर पुराने फ़ैशन का गोल्डेन फ्रेम का चश्मा है और सिर के बाल बिना कटे हुए काफ़ी बड़े हैं। यह हाल देखकर दोनों ओर से दोनों एकाएक खिलखिल करती हँस पड़ीं। यहाँ तक कि अमिया भी मुसकराने लगी। बोली—चले आइये। आप तो...(उसका अभिप्राय है कि अन्दर आते हुए डरते से हैं!)

चिकों से निकलकर पूर्णिमा और तारिणी फिर भीतर नहीं गयीं। बल्कि उसी युवक के साथ हो लीं।

बैठक के अन्दर जाते ही पूर्णिमा ने देखा, वे महाशय अभी तक खड़े हैं। कहाँ बैठें, जान पड़ता है पहले यह तै कर लेना चाहते हैं।

एक कोच की ओर संकेत करती हुई तारिणी बोली—ऐसे बैठिये इतमीनान से।... बीबी अभी आयी जाती हैं।

उसकी बगलवाली कुरसी पर पूर्णिमा जा बैठी। वह बोली—जान पड़ता है, आप यहाँ पहली बार आये हैं।

"जी"

"लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता है, मैंने कहीं आपको देखा है।" कहकर तारिणी कुछ सोचने का अभिनय करने लगी।

"जी, हो सकता है कि——"

इसी समय मालती कानों के कुण्डल हिलाती आ पहुँची और मुसकराती हुई बोली—कहिये विनायक बाबू, आप अच्छे तो हैं ?

"जी, अच्छा क्या...यही बिलकुल खामोश-सा, अपने आप में ही—"

पूर्णिमा ने व्यंग्य के प्रकार में वाक्य पूरा करते हुए कह दिया—गायब हो गया-सा !

"जी, आपने बिलकुल ठीक समझा।"

और विनायक बाबू हैं कि उत्तर जरूर देते हैं, पर दृष्टि क्या मजाल कि प्रश्नकर्ता से कभी जा मिले ! मालूम होता है, सदा यही सोचते हैं कि कहीं कोई यह चार्ज न लगादे कि घूरकर मुझे देख रहे थे।

तारिणी कृत्रिम गम्भीरता-पूर्वक कहने लगी—आपको मालूम नहीं महाशयजी, इन्होंने ज्योतिष-विद्या की बहुत ही उच्च-शिक्षा पायी है। और भविष्य की बात बतलाने में तो इन्हें कई बार मेडिल मिल चुके हैं !

"भाभी, तुम चलो तो यहाँ से।...विनायक बाबू, आप इनकी बातों का कुछ खयाल न कीजियेगा।" मालती बोली—"लेकिन मैंने अभी तक आपका परिचय तो कराया नहीं।...ये हमारी बड़ी भाभी तारिणी हैं, फ़र्स्ट-इयर से इन्होंने कालेज छोड़ा था। और ये, जिनकी बाबत आपने अभी सुना कि ज्योतिष-विद्या बहुत अच्छी जानती हैं, पूर्णिमा जी हैं, हमारी छोटी भाभी। ये संस्कृत भाषा और साहित्य में विदुषी हैं। मैट्रिक इन्होंने भी किया था। और आप—उसने विनायक की ओर देखकर कहा—हमारे पूर्व परिचित कालेज-मैगजीन के सम्पादक मिस्टर विनायक हैं, संस्कृत, दर्शन और इतिहास, तीन विषयों में आपने एम्० ए० किया है।...पर आजकल तो आप शायद बेकार हैं ?

विनायक ने धीरे से कह दिया—"जी"।

प्रशंसा सुनकर तारिणी और पूर्णिमा स्तब्ध हो उठीं। हाथ जोड़कर तारिणी बोली—अशिष्टता के लिए क्षमा कीजियेगा।

"जी, अशिष्टता क्या"—भावुकता में डूबकर विनायक बोला—मैं तो—

इसी योग्य हूँ कि आप मुझे कुछ भी कहलें;...बल्कि अच्छा हो, कुछ न कहकर भी—

"कुछ-न-कुछ कह ही दें" पूर्णिमा ने पुनः वाक्य पूरा कर दिया। तारिणी हँस पड़ी और कृत्रिम आश्चर्य से मालती बोली—तुम लोगों को आज हो क्या गया है!

"ऐसी बात कहती हैं आप कि मैं तो कुछ कह ही नहीं पाता हूं।" अन्य बातों पर कुछ भी ध्यान न देकर विनायक विमुग्ध होकर कहने लगा—मैंने आज तक किसी स्त्री में इतनी इंटलिजेंस (समझदारी) नहीं पायी।

प्रशंसा सुनकर तरंगित तारिणी बोली—अच्छा, एक बात बतला दीजिये विनायक बाबू, मैं आपका बड़ा एहसान मानूँगी। आपने स्त्री-जाति में अभी तक क्या पाया है?

"स्त्री में? स्त्री में?" विनायक अत्यन्त गम्भीर होकर कहने लगा—मैंने पाया वह हृदय...जो, जो सब कुछ खोकर भी कभी रिक्त नहीं होता, जो अजेय होकर भी सदा पराजित, असमर्थ होकर भी सदा आत्मदान में तत्पर रहता है। त्याग जिसकी प्रकृति है और तपस्या जिसकी एकान्त निष्ठा।

प्रभावित तारिणी अवसन्न हो उठीं। मालती बोली—लेकिन यहीं आप भूलते हैं विनायक बाबू। स्त्री सदा रिक्त रहती है। सब कुछ पाकर भी वह कुछ अपने पास रख नहीं पाती। शून्य है वह।

"भूल किसकी है, यही ठीक ढंग से समझ पाना जरा कठिन है।" विनायक ने इस बार साहस करके पूर्णिमा की ओर देखते हुए कहा—शिकायत है कि स्त्री रिक्त है। किन्तु यह रिक्तता स्त्री की स्वाभाविक नहीं है। इसको तो उसने समाज से खरीदा है; और पाया है बहुत मँहगे दामों में। प्रकृत सत्य पर धूल डालकर उसने अपने आपको अभावों से मुक्त करना चाहा है, सीमाओं की सृष्टि करके उसने असीम को अपनाने की चेष्टा की है। यहाँ तक कि विकृतियों को उसने प्रकृति का रूप दे डाला है!

मालती उग्र होकर कुछ कहने ही जा रही थी कि—"किन्तु अभी आपने कहा कि स्त्री की प्रकृति त्याग में है" तारिणी बोल उठी।

"हाँ" विनायक कहने लगा—मैंने मूल प्रकृति की बात कही थी। किन्तु जहाँ स्त्री प्रतिहिंसक का रूप धारण करती है, वहाँ वह सारी विकृतियों को अपनाकर स्वतः भी अपरूप हो उठती है। उस विकृति का यह कुफल केवल स्त्री ही भोगती हो, यह बात भी नहीं है। आजीवन अविवाहित रहने के प्रयोग जिन पुरुषों ने किये; उन्होंने पतन की चरम सीमाओं का आलिंगन करके क्या पाया ?

मालती उत्तेजित हो उठी। तीव्र स्वर में वह बोली—उन्होंने मनुष्य के विकास का पथ-निर्देश किया है। समाज की जड़ वृत्तियों का विध्वंस करके कठोर, कटु और निर्मम सत्य का अन्वेषण उन्होंने तो किया है।

संकोच त्यागकर विनायक कहने लगा—आप भूल रही हैं मिस मालती। सच पूछिये तो उन्होंने समाज में अनीति का विष फैलाकर उज्ज्वल मानवता पर कालिमा पोती है. उन्होंने समाज के मांगलिक रूप की खिल्ली उड़ाउड़ाकर उसमें भेद, हिंसा और अशान्ति का बीज वपन किया है।

"उन्होंने समाज के घातक और पतनशील अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और परम्पराओं का मूलोच्छेदन किया है। उन्होंने मनुष्य के मिथ्या दम्भों, अव्यावहारिक आदर्शों और उनकी ह्रासोन्मुख सीमाओं और मर्यादाओं का परदा फ़ाश किया है। ढोंगी, धूर्त, कायर और अस्वस्थ महन्तों, पुजारियों और नैतिक व्यवस्थापकों की काली करतूतों का रहस्योद्घाटन उन्होंने किया है।"

तारिणी बोली—एक पूर्व है, तो दूसरा पश्चिम।

और पूर्णिमा कहने लगी—लेकिन पूर्व आज पश्चिम को निमंत्रण अच्छा दे रहा है।

"निमंत्रण ?" विनायक कहने लगा—निमंत्रण तो सच पूछो, पूर्व ने ही सदा पश्चिम को दिया है।

मालती बोली—भ्रम है यह। निमंत्रण पश्चिम ने ही दिया है, पश्चिम ही देता आया है। आज यहाँ भी पूर्व पश्चिम से मिलने जो आया है, उसका निमंत्रण पाकर ही। पूर्व प्रारम्भ है, पश्चिम विकास। पूर्व अपूर्ण है, पश्चिम सम्पूर्ण।

विनायक हँसने लगा। बोला—पूर्व यदि प्रारम्भ भी है, तो पूर्णता का, प्रकाश का और ज्ञान का। और पश्चिम तो अन्धकार है, अन्त है—मृत्यु !

मालती बोली—इसे बहस न कहकर कठहुज्जती कहना अधिक उपयुक्त होगा !

तारिणी पूर्णिमा की ओर देखती हुई धीरे से बोली—पान नहीं मँगवाये। पूर्णिमा उठकर बाहर जो गयी, तो देखती क्या है कि आगे-आगे माँ जी आ रही हैं, पीछे-पीछे अमिया। पान की तश्तरी माँ जी के हाथ में है !

अन्दर आकर माँ ने देखा तो बोलीं—ओ हो, तुम तो विनायक हो। कहो बेटा, अच्छी तरह से रहे ?

विनायक ने प्रणाम करते हुए कहा—आपके आशीर्वाद से।

"लेकिन माँ, तुमने मुझे पहचाना ख़ूब !"

"क्यों, क्या मैं कभी भूल सकती हूँ कि बड़े बेटा के विवाह के अवसर पर तुम्हारे ही व्याख्यान ने दोनों पक्षों को शान्त किया था। इसके सिवा गृह-प्रवेश के अवसर पर एक बार तुम यहाँ आये भी थे।" फिर थोड़ी देर रुककर माँ बोलीं – अमिया, बाबू को चाय बना ला।

"लेकिन मां" विनायक ने कह दिया—चाय तो मैं पीता नहीं।

मालती हँसती हुई कहने लगी—चाय ही नहीं माँ, ये पूरी-मिठाई—यहाँ तक कि रोटी तक नहीं खाते। भीगे हुए कच्चे चने, फल और कभी-कभी खिचड़ी मात्र खाते हैं।

आश्चर्य्य से चकित होकर माँ बोली—बापरेबाप ! कहती क्या है मालती ! सचमुच विनायक क्या तू अब साधू हो गया है रे ?

"नहीं तो माँ, साधू मैं क्यों बनूंगा। हाँ, खान-पान में अलबत्ता कुछ प्रतिबन्ध मैंने लगा रक्खे हैं।"

"तो, दूध पी ही सकते हो" माँ ने आकुल अनुरोध से पूछा।

"हाँ, दूध तो···" कहते हुए कुछ विनायक रुका ही था कि पूर्णिमा बोली—लेकिन अकेले दूध से भी क्या होगा ! नौ बज ही गये हैं, खाने का

समय हो गया है। नये मेहमान को विना खाना खिलाये भेजना भी ठीक न होगा। अधिक अच्छा हो, खिचड़ी ही बनवा दो। क्यों भाईजी?

विनायक पूर्णिमा की ओर देखता रह गया।

तारिणी खिल-खिलकर हँसने लगी और मुसकराती हुई पूर्णिमा बोली—हाँ माँ, यही ठीक रहेगा। नये मेहमान को खिचड़ी खिलाकर भेजने में बड़ा पुण्य होता है।

इस पर सब लोग एक साथ हँस पड़े।

माँ ने अन्दर जाकर छीले और कटे हुए कुछ आम भेजे और गिलास-भर गरम दूध। तब तक तारिणी और पूर्णिमा विनायक से उसकी दिन-चर्य्या का हाल-चाल पूछती रहीं।

इसी क्षण अमिया ने आकर सूचित किया—दोनों सरकार-आ गये हैं। सुनकर तारिणी और पूर्णिमा दोनों कुछ अस्त-व्यस्त हुई ही थीं कि माँ ने आकर कहा—तुम दोनों चाहो तो जाओ। मैं तो यहाँ हूँ ही।

तारिणी और पूर्णिमा दोनों नमस्कार करती हुई चलने लगीं।

तारिणी बोली—मुझसे धृष्टता तो बहुत हुई; पर आशा है, आप खयाल न करेंगे।

पूर्णिमा कहने लगी—और मुझसे तो आपको शिकायत हो ही नहीं सकती; क्योंकि मैंने ही आपको ठीक ढंग से समझ पाया है।

मुसकराते हुए विनायक बोला—बड़े घरों में सभी जगह मेरा स्वागत-सत्कार प्रायः इसी प्रकार होता है।

दोनों चली गयीं।

मालती अँगड़ाई लेती हुई उठी और बोली—आज मैंने आपको बहुत कष्ट दिया।

"कष्ट?" आश्चर्य्य और आह्लाद के भाव से विनायक ने कहा—लेकिन इस प्रकार का कष्ट मुझे रोज तो मिलने से रहा!

एक साथ मालती और माँ उसकी इस बात पर उसे ध्यान से देखती रह गयीं।

देर से कौंधा लपक रहा था, लेकिन हवा बन्द थी। आकाश में बादल घिरे हुए थे। अमिया ने कहा—जान पड़ता है, पानी बरसेगा माँ।

माँ ने पूछा—तुम तो साइकिल पर आये होगे विनायक?

विनायक बोला—हाँ माँ, साइकिल छोड़ हम लोगों के पास दूसरी और सवारी हो ही क्या सकती है!

"न हो, रात यहीं रह जाओ।" मा ने कहा—शहर यहाँ से काफी दूर भी तो पड़ता है। हाँ, घर पर कोई विशेष चिन्ता तो न करेगा?

एकाएक मालती का ध्यान मा की ओर आकृष्ट हो गया।

"नहीं माँ" विनायक ने उत्तर दिया—चिन्ता करने वाला और तो कोई है नहीं; केवल एक माँ है! सो, जब तक मैं पहुँचूँगा नहीं, तब तक वह प्रतीक्षा में दरवाजे पर ही किवाड़ों से लगी बैठी रहेगी।

माँ बोली—तब मैं तुमको नहीं रोकूँगी।

सात

मन को समझाने से ही क्या होता है। क्या मन ऐसी चीज है कि एक बार समझा देने से ही उसकी भूख शान्त हो जा सकती है! फिर उसको समझाने वाली कोई दृढ़ सत्ता हो, तो भी एक बात है। विवेक मनुष्य की गति पर शासन तो कर नहीं सकता। यह शक्ति तो भावना में ही रहती है। शरीर की जो आवश्यकताएँ जागरूक है, विवेक उनके पलकों पर आसीन होकर उन्हें सुलाएगा कैसे? भविष्य की सीमा-रेखाओं का संकेत मात्र करते जाना उसका गुण ठहरा। वर्तमान की गति उकसाने का भार वह कैसे वहन करेगा! जीवन के निदारुण भोगाभोग का लेखा उसके पास भले ही बना रहे; किन्तु अकल्पित अभावराशि के दर्प को व्यर्थ कर डालने की सामर्थ्य उसमें नहीं है।

सायंकाल तो मालती 'संजीवन' कार्यालय में शर्म्माजी से मिलने न जा सकी, किन्तु दूसरे दिन सवेरे अवश्य उनके घर गयी। आज भी शर्म्माजी बैठे 'टुडे' पढ़ रहे थे। मालती को आया देखकर सहज शान्त भाव से बोले—आओ, बैठो।

मालती ने पूछा—रञ्जन की तबियत तो अच्छी है न?

"वैसी ही है" शर्म्मा जी ने उत्तर दिया और फिर वे चुप रहे। किन्तु जान पड़ता है, इस उत्तर से मालती को संतोष नहीं मिला! इसलिए चुप न रह कर फिर मालती बोली—मैं सिर्फ़ चन्द मिनटों के लिए आई हूँ।

गिरधारी ने समाचार-पत्र एक ओर रख दिया। फिर कुछ विनोद के भाव से बोले—ख़्याल तो बुरा नहीं जान पड़ता। मालती ने लक्ष्य किया, इस उत्तर में व्यंग्य-विनोद का भाव ऊपर से जड़ा गया है, वास्तव में एक तटस्थता ही उसमें अधिष्ठित है। और तब उसने कहा—ख़ैर, यह आप जानें। मुझे इस वक्त सिर्फ़ यह जानने की ज़रूरत है कि श्रद्धानन्द-पार्क में जो सभा होगी, उसका कार्य-क्रम क्या है?

"कार्य-क्रम विशेष तो कुछ है नहीं।" गिरधारी ने उत्तर दिया—एक प्रस्ताव रहेगा, उसी पर कुछ व्याख्यान हो जायँगे। क्यों, तुमको कोई नवीन प्रस्ताव उपस्थित करना है क्या?

मालती ने लक्ष्य किया, यह व्यंग्य उस दिन के मेरे कथन को लेकर उठा है। मैंने कहा था कि…"ऐसा पुरुष नेता नहीं हो सकता। ऐसे पुरुष को सेवा के किसी भी ज़िम्मेदार पद पर रहने का अधिकार नहीं है।" और तब कृत्रिम आवेश और तरंगित विनोद से उत्साहित होकर वह बोली—भीतर कहीं कोई उछल-कूद मचा रहा है क्या?

बिना छींटा डाले गिरधारी भी अपने को रोक न सका। बोला—उछल-कूद के दिन तुम्हारे हैं और तुम बेडमिंटन खेलती भी ख़ूब हो। दिल-चस्पी देखकर मैं तो यों ही एक बात पूछ रहा था।

इसी समय रेणु आ गयी और स्वाभाविक हास के साथ बोली—नमस्ते।

प्रत्युत्तर में 'नमस्ते' करती हुई मालती बोली—"मैं अभी आ ही रही थी भाभी।" यद्यपि उसके दबे और कृतिम स्वर से यह छिपा न रह सका कि केवल एक शिष्टाचार-वश वह ऐसा कह रही है।

उधर रेणु ने भी इस पर अन्यथा सोचकर हँसते हुए कहा—

"किन्तु तुम तो आती ही रहीं और मैं आ भी पहुँची। अब तुम कभी यह न सोच सकोगी कि मैं तुम्हारा ध्यान नहीं रखती।"

रेणु की बात सुनकर मालती अवसन्न होकर उसे देखती रह गयी। क्षणभर पूर्वस्थिति में रहकर वह फिर बोली—सोचूँगी कैसे? बहुत दिनों के बाद तुमको पाकर इन्हीं दो दिनों के अन्दर, पहली बार मैंने यह सोचने का अवसर पाया है कि मेरा भी कोई आत्मीय है, जिसे मैं अपना अन्तर खोलकर दिखा सकती हूँ, जो मेरे सुखदुख, इष्टानिष्ट, वर्तमान और भविष्य का विचारक और निर्देशक हो सकता है।

बात कितनी बढ़ाकर कही गयी है और उसमें सत्य का अंश कितना अल्प है, यह जानते हुए भी गिरधारी ने कुछ कहना उचित नहीं समझा। उसने केवल एक बार मालती की ओर देखा—और देखा निस्सन्देह एक सन्देहयुक्त कुण्ठा के साथ—और एक बार रेणु को। क्योंकि वह सोच रहा था कि शीघ्रता में स्निग्ध पड़ती हुई मित्रता प्रायः किसी-न-किसी स्वार्थ को लेकर आती है।

रेणु मालती का यह आकस्मिक आत्म-समर्पण पाकर एकाएक सोच-विचार और संकोच में पड़ गयी। बोली—ऐसा मत कहो मालती। मैं इस गुरुभार को सम्हाल सकने योग्य नहीं हूँ। उमर में तुम मुझसे दो वर्ष छोटी ज़रूर हो; लेकिन योग्यता और मर्यादा में तो मुझसे कहीं आगे हो। फिर भाभी होने का सौभाग्य ही मेरे लिए कौन कम है जो···।

गिरधारी उठकर खड़ा हो गया। रेणु खड़ी थी ही; मालती भी कुरसी से उठकर खड़ी हो गयी। वह भावावेश में रेणु की ओर अत्यधिक आकृष्ट होती जा रही थी। अन्त में जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि वह अपने को रोक न सकी, तो रेणु की बात पूरी सुने बिना ही बोल उठी—तुम नहीं

जानतीं भाभी कि मैं तुम्हारा कितना आदर करती हूँ। तुम यह भी नहीं जानतीं कि जब से मैंने तुमको पाया है, तब से मैं बराबर क्या-क्या सोचती रहती हूँ।

गिरधारी मालती के कण्ठ-स्वर और उसके भाव-परिवर्तन को बराबर ध्यान से देख रहा था। वह यह अनुभव कर रहा था कि बात कितनी भी साधारण क्यों न हो, मालती अपने हृदय का रस देकर उसे सर्वथा असाधारण बना देती है। अतएव उसके मन में आया कि यदि ऐसी स्त्री सार्वजनिक क्षेत्र में आ सके, तो कितना अच्छा हो!

तब उसने कहा—मेरी बात अधूरी पड़ी हुई है। मैं चाहता हूँ, इसी क्षण में उसे पूरा करलूँ।

मालती रेणु की ओर से ध्यान हटाकर बोली—कहिये।

गिरधारी ने कहा—आज की सभा में अगर तुम बोलना स्वीकार करो, तो बड़ा अच्छा हो। मेरी बड़ी अभिलाषा है कि तुम व्याख्याता के रूप में भी अतुल कीर्ति प्राप्त करो। मेरा विश्वास भी है कि तुम्हें इसमें पूर्ण सफलता मिलेगी।

वृक्षों के तनों, उनकी शाखाओं, टहनियों और पत्तियों पर धूल के कण प्रायः पड़ते ही रहते हैं! ओस के बूँद उस धूल को स्थानान्तरित तो कर देते हैं, पर सम्पूर्ण रूप से धोकर उन्हें स्वच्छ नहीं कर पाते। यह कार्य प्रकृति वर्षा के पहले ही दिन सहज स्नेह से द्रवित होकर अनायास कर डालती है। आज इस समय मालती की भी यही स्थिति थी। अपनी इच्छा के रूप में गिरधारी ने जो मन्तव्य उसके सामने रक्खा, उससे वह मन-ही-मन कृतार्थ हो उठी। यहाँ तक कि वह तुरन्त हाँ-या-ना स्पष्ट रूप से कह तक न सकी।

तब गिरधारी आप ही कहने लगा—नगर-भर में एक लहर-सी आ जायगी। कितने ही युवकों का ध्यान आज की गम्भीर समस्याओं की ओर सहज ही आकृष्ट हो जायगा।

गम्भीर समस्याओं के प्रसङ्ग से युवकों का ध्यान आकृष्ट करने वाली यह

रोमैंटिक बात इस समय मालती को अच्छी नहीं लगी। सड़क पर सहज भाव मे घूमते, लॉन पर टहलते और नदी किनारे अथवा पहाड़ की चोटी की प्राकृतिक छवि निरखते हुए; दुर्निवार आनन्द-लाभ की एक साधारण चेष्टा में हम जैसे आत्मग्रस्त हो जाते हैं, मालती कुछ उसी प्रकार अपने आप में खो-सी रही थी। इसी समय गिरधारी ने यह एक ऐसी बात कह दी कि उसे प्रतीत हुआ, मानों उसे बिच्छू ने काट खाया हो। अभी क्षणभर पहले उसके मुख पर आनन्द की जो एक दीप्ति-सी आ गयी थी, अब वह बात-की-बात में तिरोहित हो गयी। गम्भीर होकर वह बोल उठी—क्यों, मुझमें ऐसी क्या ख़ास बात है?

रेणु कार्य्य-वश अन्दर चली गयी थी। गिरधारी ने अनुभव किया, प्रश्न-कथन में—कण्ठस्वर में—वह स्वाभाविक मार्दव नहीं है। तब उसने उत्तर का प्रकार ही बदल दिया। वह बोला—क्यों, ख़ास बातों की तुममें ऐसी कोई कमी तो है नहीं, जो चिन्ता करने की आवश्यकता हो। सभा-मंच पर जब तुम सिंहिनी की भाँति गर्जन करोगी, तो कितने ही वन्य जन्तुओं का कलेजा दहल जायगा। श्वानों और शृगालों को तो रास्ता खोजे न मिलेगा। फिर मृदुल कण्ठ से जब तुम किसी प्रश्न अथवा समस्या की व्याख्या करती हुई आगे बढ़ोगी, तो कितने ही श्रोताओं को तो केकी का भ्रम होगा।

आनन्द और उल्लास की लहरें उठाती मालती हँसती हुई बोली—लेकिन घनश्याम जब तक कृपालु न होंगे, तब तक वर्षा भी कैसे होगी! कभी-कभी भागते हुए से दीखते हैं। कौन,जाने कब बरसेंगे। ऐसी दशा में एक नया रिस्क कौन मोल ले!

"लेकिन घनश्याम कभी किसी को आश्वासन देकर तो आते नहीं। यहाँ तक कि किसी का निमंत्रण भी नहीं ग्रहण करते। बरसते क्षण यह भी नहीं विचार करते कि कहाँ इस वर्षा की अधिक उपयोगिता है, कहाँ कम।"

"तब तो वे सचमुच बड़े अन्यायी हैं।"

"न्याय और अन्याय तो हमारे सोचने और निश्चित करने का विषय है।"—गिरधारी बोला—सो भी अपने-अपने स्वार्थों के अनुसार। प्रकृति की जो एक अबाध और दुर्निवार कर्मधारा है, उसके आगे न्याय-अन्याय का कोई प्रश्न नहीं रहता।

"तब मुझे केकी बनने का कोई मोह भी नहीं है" कहती हुई मालती ने कृत्रिम गम्भीरता धारण कर ली और गिरधारी पूछ बैठा—कब से?

"जब से प्रकृति की अबाध और दुर्निवार कर्मधारा का ज्ञान हुआ!"

उत्फुल्ल गिरधारी कुछ कहने ही जा रहा था कि उसी क्षण डाक्टर ललित आते देख पड़े। आते ही मालती की ओर देखते हुए बोले—हल्लो मिस मालती, तुम यहाँ कहाँ!

एकाएक मालती ललित को सामने देखकर अप्रकृत होती-होती बची। बोली—अच्छा ललित बाबू, मुझे यहाँ देखकर आपको आश्चर्य क्यों हुआ?

अब ललित ने एक बार सरसरी दृष्टि से उसे ऊपर से नीचे तक देखा। देखा, साड़ी के रूप में रेशमी और जार्जेट का स्थान खद्दर ने ले लिया है। तब एक कुटिल हास के साथ वे बोले—मुझे अब तक मालूम नहीं था कि अब आप एक देशभक्त राष्ट्र-कर्मिणी के रूप में पब्लिक-फ़ील्ड में आ रही हैं। इस उज्ज्वल भविष्य के चुनाव के लिए मेरी बधाई और शुभ कामनाएँ स्वीकार कीजिये।

मालती परस्पर विरोधी विचारों में पड़ गयी। भीतर और बाहर का क्षण-क्षण का द्वन्द्व उसकी मुद्रा पर आये बिना न रह सका। फलतः ललित की ओर देखे बिना साधारण रूप में उसने कह दिया—बहुत-बहुत धन्यवाद।

इसी समय रेणु मुसकराती हुई आ पहुँची। बोली आज तो तबियत कल की अपेक्षा अच्छी रही डाक्टर साहब!

ललित ने एक बार फिर मालती को दृष्टि में भरकर आगे बढ़ते हुए कहा—चलिये, जरा-सा देख ही लें। गिरधारी भी उनके साथ हो लिया।

किन्तु मालती वहीं कुरसी पर जड़वत् बैठी हुई निःश्वास लेती रही!

आठ

कभी कभी साधारण परिहास भी बड़ा काम कर जाते हैं। एक व्यक्ति के अन्तर से फूटी हुई विनोद-वाणी, जो दूसरे को अयोग्य समझकर उसकी हीनता को कुरेदने में आनन्दित होती है, एक ऐसा अहङ्कार है, जो साधारण रूप से मनुष्य-मात्र में होता है। किसी में कम, किसी में अधिक। महा-पुरुषों में इसकी मात्रा कुछ विशेष होती है। रूप-सौन्दर्य्य और धन का अहं-कार प्रायः निम्न कोटि का समझा जाता है, क्योंकि वह विद्या-बुद्धि की अपेक्षा नश्वर होता है। त्याग, उदारता, विनयशीलता, सत्य और प्रेम का भी अहङ्कार होता है। सुन्दर, शोभन और कीर्तिदायक। जो परिहास प्रेमी की सोती हुई योग्यता को जगाने अथवा उस पर अयोग्यता का आरोप करने के लिए होते हैं, वे प्रारम्भ में मूलतः परिहासकार की अहङ्कार भावना ही को लेकर उठते हैं; किन्तु उनमें प्रेमी के विकास का एक मार्दव संकेत भी रहता हैं। इस प्रकार के परिहास एक प्रकार के प्रेम-चिह्न हैं, आकर्षण के आदान—प्रतिदान का आह्वान ही उनका मूल उद्देश्य होता है।

व्याख्यान की बात सुनकर मालती बड़े फेर में पड़ गयी थी। विद्यार्थी जीवन में कालेज के डिबेट में वह सम्मिलित होती थी। उसकी वक्तृत्व-शक्ति भी आकर्षक और प्रभाव-शालिनी थी। किन्तु सब से बड़ा दोष उसमें यह था कि व्याख्यान देते क्षण वह प्रायः अपने सोचे हुए विचार भूल जाती थी। इसका परिणाम यह होता था कि वह जितनी देर बोलना चाहती, उतनी देर बोल नहीं पाती थी।—'ऐसी दशा में क्या वह सफल हो सकती है ?' वह बार-बार अपने आपसे पूछने लगती।

आज मालती को अपने वे दिन भी बार-बार याद आ रहे थे। वह सोचती थी, उन दिनों मन में उल्लास कितना रहता था! कालेज के सिवा घर पर भी पढ़ना, सखियों से मिलना-जुलना, सिनेमा-थियेटर, पार्टी—दिन-रात कितनी जल्दी और कितना व्यस्त व्यतीत होता था!...'परन्तु आज तो

उसे एक सार्वजनिक सभा में भाषण देना है।'—बार-बार घूम-फिरकर यही प्रश्न उसके सामने आ जाता।

घर पहुँचना मालती के लिये दुष्कर हो गया। पेट्रोल-राशनिंग के कारण आज उसे घोड़ा-गाड़ी पर आना पड़ा था। आज समय का मूल्य भी वह अधिक अनुभव कर रही थी। बार-बार वह कोचवान से कहने लगती—जल्दी ले चलो जी मत्तू, बहुत जरूरी काम है। और फिर वह विचारों में लीन हो जाती। उल्लास की लहरें उसके शरीर-भर में दौड़ रही थीं। वह सोचती—व्याख्यान के बीच में अगर चार-छै बार तालियाँ न पिटीं, तो ऐसा व्याख्यान दो कौड़ी का! लोग चर्चा तक नहीं करते। मैं ख़ुद भी तो कितने ही लोगों का मजाक बनाया करती हूँ!...धीरे-धीरे, रुक-रुककर बोलना भी, एक मुर्दापन की निशानी है! भाषण में प्रवाह...उसे याद आ गयी, उसने कहीं पढ़ा था कि त्रात्स्की बारह-बारह घंटे धाराप्रवाह बोल सकता था।...लेकिन यह सब कुछ नहीं, वक्ता के पास कुछ गम्भीर विचार और नया सुझाव होना चाहिये, श्रोताओं को जिससे कुछ सोचने का अवसर मिले।—शैली में एक ऐसा ओज, जो उनको हहराती यमुना में बहा ले जाय।

गाड़ी से उतरकर मालती जब बरामदे में आयी, तो बड़ा भतीजा सुशील अमिया को डाँट रहा था—गाड़ी आने में अगर देर हो गयी, तो मैं स्कूल कैसे जाऊँगा?—मुझसे बिना कहे तू ने मत्तू को जाने ही क्यों दिया?

मालती क्षण-भर को उस कमरे के द्वार पर खड़ी हो गयी और बोल उठी—क्या है सुशील?

सिर हिलाते हुए, सूट से लक़-लक़, एक हाथ में पुस्तकें लिये सुशील बोला—तुमने तो बस, मुझे हैरान कर डाला बुआजी। मैं सोच रहा था, कहीं तुम जल्दी न आयीं तो? ख़ैर शुक्रिया, माफ़ करना बुआजी!—(घड़ी देखकर) ले चलो जी मत्तू।

किन्तु मत्तू बोला—बाबू भैया, अभी तो जानवर ज़रा थका हुआ है। थोड़ा ठहर जाओ तो मैं उसे दाना खिला लूँ। आज दस मिनट लेट ही सही।

"क्या कहते हो ? ऐसा भी कहीं हो सकता है !"

"बाबू भैया, तुम तो...।"

अब फ़र्श पर पैर पटकते हुए सुशील ने कहा—कहता हूँ, ऐसा नहीं हो सकता—नहीं हो सकता।

स्थिति का अनुभव करती हुई मालती बोली—जिद्द मत करो सुशील। ज़रा घोड़े को दाना खा लेने दो। अभी सवा नौ बजा है।

"बात यह है बुआजी"—सुशील बोला कि आज मुझे जल्दी पहुँचना है।

और मालती तब सोचने लगी—आज इस घोड़े की जो स्थिति है, वही पूँजीजीवी समाज में प्रत्येक श्रमजीवी की।

वह बोली—देखो सुशील, जिद्द मत करो; थोड़ी देर ठहर जाओ। जानवर बे-ज़बान होते हैं। वे अपनी तकलीफ़, अपना दुःख सुख, कह नहीं पाते। तब हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम सहानुभूति रखकर उनसे व्यवहार करें। है न ?

मालती की बात सुनकर इस बार सुशील को थोड़ा आश्चर्य हुआ। किन्तु बात कुछ-कुछ उसकी समझ में आ गयी थी। अतएव उसने कहा—अच्छी बात है। मैं दस मिनट की जगह पंद्रह मिनट देता हूँ।

इतना कहकर वह भीतर अपने कमरे की ओर बढ़ गया।

मालती के अन्दर जाने पर पूर्णिमा सामने पड़ गयी। उसको आती देखकर मुसकराती हुई वह बोली—आज बहुत प्रसन्न देख पड़ती हो ! ऐसी क्या बात है ?

विहँसती मालती ने कहा—श्रद्धानन्द-पार्क में आज शाम को सभा होगी। चलोगी ?

आश्चर्य के साथ पूर्णिमा बोली—मैं ! कौन मुझे साथ ले जायगा ! फिर तुम तो नेताओं के बग़ल में विराजोगी; मेरा कौन ख़याल करेगा !

गम्भीरता-पूर्वक मालती ने उत्तर दिया—क्यों ? क्या वहाँ स्त्रियों के लिए खास इन्तजाम न होगा ?

"लेकिन उन स्त्रियों के बीच में अपने-आप रहूँगी तो अकेली ही। जीजी चलेंगी नहीं, संग-साथ की जब तक दो-चार स्त्रियां न हों, तब तक सभा-समाजों में जाना ठीक नहीं।"

"क्यों ? वहां किसी तरह का डर तो रहता नहीं।"

"तुमको क्या पता कि जहां दस स्त्रियाँ इकट्ठी हुईं, वहां किसी-न-किसी विषय पर मतभेद अथवा कहा-सुनी हो जाना अवश्यम्भावी हो जाता है। अलीगढ़ में एक बार एक सभा में भाभी के साथ गयी हुई थी। व्याख्यान उस समय प्रारम्भ ही हुआ था कि देखती क्या हूँ, एक बुढ़िया बिगड़ रही है।

"दोनों हाथ फटकार-फटकारकर वह सभी उपस्थित महिलाओं को खरी-खोटी सुनाने में बिलकुल चंडी का रूप धारण कर रही थी। सिंगर मशीन की तरह तो उसकी जबान चलती थी। कारण पूछने पर बड़ी मुश्किल से मालूम हुआ कि वह उस दिन एकादशी व्रत में थी और उसका कहना था कि उसके पास बैठी हुई स्त्री बात करती हुई थूक उटकाती है; इसलिए उसे घर जाकर नहाना और सारे कपड़ों को धोना पड़ेगा। उसकी इस बात पर बहुतेरी स्त्रियाँ उसी को दोष देने लगीं। हल्ला देखकर स्वयं-सेविकाएँ आ पहुँचीं। तब बड़ी मुश्किल से वह शान्त हुई।"

विनोद के भाव से मालती ने पूछा—इसके बाद फिर क्या हुआ ?

पूर्णिमा बोली—थोड़ी देर बाद भजन शुरू हुआ, तो एक स्त्री एकाएक चीख उठी। पीछे बैठी हुई स्त्रियों की ओर संकेत करती हुई वह बोली—मालूम नहीं किसने पीछे से मुझे पिन चुभा दिया। एक स्त्री बोली—जान पड़ता है, इसी बुढ़िया की करतूत है। इसके बाद एक साथ कई स्त्रियों ने इसी बात का समर्थन किया। अन्त में स्वयं-सेविकाओं ने आकर विवश होकर उसे उठा दिया और वह टर्राती हुई चली गयी।

व्यंग्य-भाव से मालती बोली—पर अन्त में एक बात कहना तो तुम भूल ही गयीं।

आश्चर्य्य के साथ पूर्णिमा ने पूछा—कौन-सी बात ?

मालती ने उत्तर दिया—अन्त में कहानी का यह मॉरल कि जैसा उसने ऊधम मचाया, वैसा ही चटकीला उसका फल पाया। तदनन्तर वह चलने लगी—

किन्तु इस पर पहले पूर्णिमा और फिर मालती दोनों हँस पड़ीं।

पूर्णिमा बोली—ख़ैर, मॉरल की बात तो तुम जानो, लेकिन तुमसे क्यों छिपाऊँ, उस बुढ़िया का नाम पहले-पहल मैंने ही लिया था।

इस बार मालती भाभी की इस बात को सुनकर कुछ तरंगित होकर, किन्तु हँसी रोककर, बोली—लेकिन यह बात तुमने अब तक माँ को तो बतलायी न होगी ?

मुसकराती हुई पूर्णिमा बोली—तुम बड़ी धूर्त हो !

मालती को जल्दी-से जल्दी अपने कमरे में पहुँचना था। पर वह चलने लगी, तो पूर्णिमा ने रोक लिया। उत्सुकता से पूछा—अच्छा, विनायक बाबू का भाषण भी होगा ?

"हो सकता है" कहती हुई मालती बोली—अच्छा, उनका भाषण करा दूँ तब तो चलोगी, बोलो ?

मन-ही-मन कुछ सोचती हुई मन्द स्वर में पूर्णिमा ने कहा—मैं कैसे जा सकती हूँ बीबी ! वे सरकारी नौकर जो हैं।

"तो इससे क्या ?"—मालती ज़ोर देकर कहने लगी—तुम इस विषय में सर्वथा स्वतंत्र हो। भैया कभी इसके लिए तुम्हें मना नहीं करेंगे।

पूर्णिमा चुप थी।

तब दृढ़ता के साथ मालती बोली—"अब तो तुमको चलना पड़ेगा भाभी।" और आगे बढ़ने को हुई कि माँ ने कहा—कब से खाना तैयार है। खा क्यों नहीं लेती ?

किन्तु अन्दर चलते हुए मालती ने उत्तर दिया—तुम खाओ माँ, मुझे अभी भूख नहीं है। इसके सिवा मुझे एक ज़रूरी काम भी है।

"काम तो तुझे इस तरह बना ही रहता है।" माँ ने मीठे प्यार के साथ शिकायत करते हुए कहा—कभी तूने वक्त पर खाना खाया है!

माँ के कथन की ज़रा भी परवा किये बिना मालती अपने कमरे में जाकर व्याख्यान की तैयारी करने लगी।

इस समय उसके मानस-क्षितिज पर कई चित्र तिनके-से उड़ रहे थे। उसके मन में आता था —

जो बातें शर्म्माजी ने व्यंग्य में कहीं हैं, वह उन्हें चरितार्थ करके दिखा देगी। वह भाषण देगी। उसे भाषण देना ही पड़ेगा। अपनी विचार-धारा को व्यक्त करने में वह ज़रा भी हिचकिचायगी नहीं।···भाभी ने स्त्रियों की हीनावस्था का अच्छा मज़ाक बनाया। सचमुच उसे ऐसे हीन नारी-समाज को ऊपर उठाना है। उसे एक आदर्श उपस्थित करना है।

कई दिन से वह अकेली, चुपचाप बराबर, मज़दूरों के मुहल्लों में जाती रही है। उसने उनका यथार्थ जीवन अपनी आँखों से देखा है। उसके मन में बार-बार कुछ विचार टकराते रहे हैं। उसने अनुभव किया है कि जो समाज रात-दिन श्रम करता है, उसकी यह दुर्गति हो कि वह अपने परिवार का भरण-पोषण तक न कर सके और केवल पूँजी की बदौलत, जो वास्तव में राज्य की सम्पत्ति होनी चाहिये, कुछ लोग बिना परिश्रम किये गुलछर्रे उड़ाते रहें, हमारे समाज की यह कैसी जड़ता है!

एक चित्र उसके सामने आ गया :

वह गाड़ी से उतरकर, बटुआ हाथ में लिये हुए, ज्योंही विपिन के घर की ओर जाने को हुई कि बग़ल में नाली की ओर उसकी दृष्टि जा पड़ी। दरवाज़े के नीचे ही एक ओर ज़मीन पर कुछ पका दाल-चावल पड़ा है। एक साँड़ आता है। स्थूलकाय इतना कि मांस थल-थल होता है; मारने पर दौड़ नहीं सकता। अनाज की ढेरी हो कि फलों की झल्ली, एक बार मुँह डालकर फिर उसे उठाना नहीं जानता; चाहे पीठ पर डंडे ही क्यों न पड़ें। एकाएक आकर उस दाल-चावल को सूँघकर थूथुन सिकोड़ता हुआ आगे बढ़ जाता है। यों मालती का ध्यान उसकी ओर चाहे न जाता, किन्तु ढेर-भर

पके दाल-चावल को जब वह त्यागकर चल देता है, तब केवल उस थूथुन को ही न देखकर वह उसके सम्पूर्ण शरीर और उसके मदान्ध कलेवर को भी देख लेती है। इसी क्रम में, मकान—नहीं हवेली—और दाल-चावल की श्रेणी आदि पर भी उसका ध्यान जाता है। सोचती है—ऐसा हो सकता है। यह सर्वथा स्वाभाविक है। दाल-चावल जान पड़ता है, वुस गया है। सड़ांध उसमें आती होगी।

बात आयी गयी हो गयी। मालती भी आगे बढ़ गयी। बिपिन से वार्तालाप करने में आधा घंटा के लगभग लग गया। लौटी, तो गाड़ी तक आने में उसी मकान के पास से फिर गुज़रना पड़ा।—लेकिन ऐं! यह बात क्या है!—सात-आठ वर्ष की एक काली-काली लड़की; शरीर में केवल एक लंगोटी पहने हुए। अंगुलियों से पोंछ-पोंछ कर दाल चाट रही है!

मालती से रहा नहीं गया। उसने पूछा—यह तू ने क्या किया! यह तो बासी अन्न था, सड़ा बदबूदार!

किन्तु उसके इस कथन का उस लड़की पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह सहज शान्तभाव से बोली—दो दिन भूखी रहने पर यह भी नसीब हुआ है सरकार!

मालती कुछ लिखने बैठी है। वह यों ही ऊल-जलूल थोड़े ही बकेगी। एक सम्बद्ध और सुसंगत भाषण उसे देना है। कलम उसकी चल रही है और चल रही है। भाषण लिखकर वह उसे अपनी स्मृति पर उतारेगी। एक बार, दो बार, दस बार। उसे भाषण देना है—भाषण! उसे अपना निर्माण करना है।

घड़ी ने बजाये, बारह। एक साथ पूर्णिमा, तारिणी और मां उसके पास जा पहुँचीं। पीछे पीछे अमिया।

एकाएक दरवाजा खुला; मालती की दृष्टि उधर जा पहुँची।

"क्यों री, क्या आज कुछ भी नहीं खाना है तुझे?" माँ ने आते ही कहा।

मालती क़लम को जरा भी रोके बिना बोली—फ़ुरसत नहीं है माँ।

और माँ खड़ी सामने देख रही हैं कि मालती वास्तव में कुछ लिख रही है। तारिणी और पूर्णिमा भी दोनों ओर खड़ी हो गयीं। वे झुक-कर देखने लगीं कि क्या वास्तव में कोई जरूरी चीज है। तारिणी बोली—यह तो लेख है माँ।

पूर्णिमा ने कहा—लेकिन ऐसी इसमें जल्दी क्या है कि खाना-पीना भी त्याग दिया जाय?

और अमिया धीरे से बोली—मैं अगर चाय बना लाऊँ, तो बीबी रानी इन्कार तो कर न सकेंगी! लेकिन अकेली चाय से भी क्या होगा!

पूर्णिमा बोली—बिस्कुट तो ले आ सकती है।

अमिया झट दौड़ती हुई चल दी।

मालती किसी से बोली नहीं; वह बराबर लिखती रही।

पूर्णिमा कहने लगी-आज सभा भी तो है शहरमें। ले नहीं चलोगी माँ?

विरक्ति के साथ माँ ने कहा—सभाओं में हम लोगों का क्या काम? यह तो उन निकम्मे लोगों का एक पेशा है, जिनके पास खाने तक को नहीं रहता और जो भले आदमियों को नित्य ठगते रहते हैं!

मालती ने लिखना बन्द कर दिया। विष का-सा घूँट निगलते हुए वह बोली—एक बात मैं कह दूँ माँ?

माँ चुप रहीं। उनकी दृष्टि मालती के मुख पर थी।

मालती बोली—हमारे देश में मरने पर दाह-संस्कार के बाद चिताभूमि को साफ़ करके उस पर कुछ लिखने की प्रथा है। मेरे मरने पर यही शब्द वहाँ लिखा देना! भला!

माँ बड़बड़ाती हुई चल दीं—मरें तेरे दुश्मन और उनके बाद में। तेरा क्यों बाल बाँका हो!—मेरा बोलना भी अगर तुझे जहर है, तो मैं चली जाती हूँ।

वे इतना कहकर चल दीं।

मालती फिर लिखने लगी।

× × ×

आठ घंटे बाद :

"आप हैं कामरेड अमृतवर्षणत्रिवेदी, स्थानीय एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर के छोटे भाई; आप दुद्धर्षसिंह, स्थानीय सेवा-दल के आरगनाइज़िंग सेक्रेटरी और आप मौलवी लियाक़त हुसेन मोहानी।"

एक साथ आवाज़—"मैं आपको बहुत-बहुत बधाइयाँ देता हूँ कामरेड मालती। · आपको हार्दिक बधाई है। आपने तो एक ही व्याख्यान से हमारे नगर में जान डाल दी।···मैं आपको तहे दिल से मुबारकबाद देता हूँ। हमारे लेबर-यूनियन में तो आपने एक नयी रूह फूँक दी।"

"मैं तो आपका एक अरसे से एडमायरर (प्रशंसक) हूँ। म्यूज़िक कान्फ़्रेंस में आपने ही तो हमारे शहर की इज्ज़त अफ़ज़ाई की थी। मगर आज तो आपने कमाल ही कर दिया !

"आप तो—मेरा ख़्याल है—अच्छा-सा उनका नाम है—परदयेविमेन कशोर (प्रद्युम्नकिशोर) लेट रायबहादुर साहब की डॉटर हैं न ? जी हाँ, वही तो···वहीं तो···मैं सोच रहा था ; मेरे फ़ादर उनके यहाँ मुहर्रिर दोयम थे।···जी हाँ। एक-आध बार मैं भी आपकी कोठी पर गया था। मगर वाह ! आपकी तक़रीर क्या हुई, गोया सल्तनते-बरतानियाँ के लिए आपने एक नया जहमत बरपा करदी। मेरा अपना खयाल तो यह है कि पिछले दस साल के अन्दर ऐसी पुरजोश तक़रीर हुई ही नहीं। हज़ार-हज़ार मुबारकबाद !"

मालती अपने कमरे में एक पलँग पर लेटी हैं। रात है और एक बज गया है। उड़ते बादलों के बीच से कभी-कभी चन्द्रमा झाँक उठता है। खिड़की खुली है और फर-फर करता शीतल पवन का झकोरा आ जाता है। कल्पना के निर्मल पट पर अनेक प्रकार के चित्र आते और चले जाते हैं। आज श्रद्धानन्द-पार्क में उसका जो व्याख्यान हुआ, उस पर लोगों ने उसे कितनी बधाइयाँ दीं ! जहाँ वह खड़ी हुई, वहीं एक-न-एक दल ने उसे घेर लिया। लोग अपनी-अपनी शैली में अपने उद्गार प्रकट करने लगे।··· यह अमृतवर्षण भी ख़ूब है।·कितना सुन्दर व्यक्तित्व है ! ऐसा जान पड़ता

है, मानों प्रत्येक क्षण गुंजन करता रहता हो। किन्तु व्याख्यान उसका अत्यन्त साधारण रहा। यह आदमी जहाँ आज है, वहीं सदा रहेगा। और सरदार दुर्द्धर्षसिंह की दाढ़ी क्या .खुशनुमा बनी है! हरवाल जैसे छल्ले बना रहा हो! मगर दहाड़ते .खूब हैं। लेकिन कहने के लिए उनके पास क्या है? एकदम से मत्था पकड़ लेते हैं!···और मौलाना लियाक़तहुसेन भी .खूब रहे। पैजामा आपका यह बतलाता है कि आप अपनी बीबी को कितना खुश रखते होंगे! लेकिन पिताजी के मुहर्रिर दोयम के वह बर-.खुरदार .खूब हैं। 'जी हाँ, वही तो—वही तो - मैं सोच रहा था' (और अपनी झब्बेदार टर्किश कैप उतारकर आप वाक़ायदे सिर भी खुजलाने लगे)। फिर नाम को याद रखने का तरीक़ा—'परदये विमेन कशोर!' अजीब खोपड़ियाँ हैं इन लोगों की!

लेकिन शर्म्माजी का चित्र सामने आते ही करवट बदलती है।—अब तक मैं इनको क्यों भूली रही? कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचती! इन चार दिनों में ही मैं क्या हो गयी हूँ! देखूँ, कल के पत्रों में क्या निकलता है। आज तो शर्म्माजी .खुद मुझे यहाँ तक भेजने आये। माताजी भी कितनी प्रसन्न हुईं।. आज अगर पिताजी जीवित होते, तो मेरा यह जीवन देखकर उन्हें कितनी .खुशी होती! हाँ बड़े भैया का रुख मेरी ओर से अच्छा नहीं रहता। किन्तु आज उन्होंने भी कहा—"मुझसे कई मित्रों ने तुम्हारे व्याख्यान की प्रशंसा की"। फिर बड़े प्यार से कहने लगे—कहीं जेल की हवा न खानी पड़े। लेकिन तू भी कम चालाक नहीं है। जेल हो आने पर फिर कौंसिल में आते क्या देर लगेगी तुझे!" आज कहने का अवसर नहीं था। दो-चार दिन बाद रुपये के लिए फिर कहूँगी। शर्म्माजी मेरे लिए, क्या नहीं कर रहे हैं? जिस आदमी का सारा जीवन सार्व-जनिक सेवाओं के लिए निरन्तर इतना तत्पर, इतना समर्पित रहता हो, उसकी यह स्थिति कि वह कार या गाड़ी के बजाय इक्के में जाता हो!—जिसके घर पर बिजली का पंखा न हो! खादी के कुरते को जो दो दो तीन-तीन दिनों बाद बदल पाता हो! और विद्या-बुद्धि, विवेक और प्रतिभा में जो

अद्वितीय हो। साधु, तपस्वी और निर्मल। एक धुन उन्हें सवार रहती है, एक व्यापक और विस्तृत कार्यक्षेत्र उनके समक्ष है और जीवन की आहुति जारी है। फिर यह व्यक्ति कर्मठ कितना है! कितना बड़ा नगर और उसका कार्य-क्षेत्र कितना विस्तृत! और आज सर्वत्र उसके नाम की तूती बोलती है।

फिर सोचती है—पर मैं अब तक इनसे मिली क्यों नहीं?...इस आदमी में सेक्स की अर्ज (तकाजा) जैसे मर गयी हो! महात्माजी का यह कथन कि पुरुष और स्त्री का कामजन्य आकर्षण स्वाभाविक नहीं, इसी श्रेणी के व्यक्तियों में पूर्ण चरितार्थ होता है। मैंने भी सोच लिया है कि मैं – अब तक जो कुछ हुआ सो हुआ—अपना भावी जीवन देश के काम में खपा दूँगी। मैं जल रही हूँ और जलती रहूँगी। मैं अपनी भोग-सम्बन्धी आवश्यकताओं को मिटा दूँगी—राख कर डालूँगी उनको। मेरा जीवन एक महान उद्देश्य रखता है और मैं महान होकर रहूँगी।

अब सब कुछ शून्य में समा गया है। मालती की आँख झपक गयी है। एक मधुर स्वप्न लेकर वह सो गयी है। चन्द्रमा अस्त हो गया है और चतुर्दिक अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ है। झींगुरों का स्वर गुँजन कर रहा है। कभी-कभी पहरुवा चिल्ला उठता है। कोठी के पीछे की ओर जामुन का पेड़ है। उसकी चिकनी पत्तियाँ आपस में मिलकर बोल उठती हैं। पवन के झकोरे के साथ जैसे सब का स्वर मिश्रित होकर दूर-व्यापी नाद बन जाता हो।...इस समय मालती की याद किसको आ सकती है? और किसी को आ सकती है कि नहीं, नहीं कहा जा सकना। किन्तु एक व्यक्ति को अवश्य आ रही है। वह है विक्टर। आज चार दिन से मालती का प्यार उसे नहीं मिला। अवकाश ही नहीं मिला कि वह उसकी ओर देखती भी। उसे कभी ध्यान ही नहीं आया कि उसके इस व्यवहार से विक्टर को कितना कष्ट हो सकता है! छूट है कि विक्टर उसके कमरे में जहाँ चाहे, वहीं सोये। यद्यपि वह अभ्यस्त है कि उसके कमरे के ऐन द्वार पर ही सो रहे। कई दिन से न मालती ने सामने बैठकर उसे दूध पिलाया,

न खाना खिलाया। यहाँ तक कि थपथपाया भी नहीं। किन्तु विक्टर को इनमें से किसी बात की शिकायत नहीं। है, तो केवल यह कि उसने गोद में लेकर उसके कान में कुछ कहा क्यों नहीं, उसके ऊपर पैर रखकर उसे आगे ठेला क्यों नहीं!

जब मालती पलंग पर सोने लगी, तो विक्टर नीचे आकर चक्कर काटने लगा। वह बराबर चक्कर काट रहा है, अब तक!

नौ

संघर्ष व्यक्तियों में नहीं, वास्तव में आदर्शों और सिद्धान्तों में होता है। जहाँ व्यक्ति परस्पर विरोधी सिद्धांन्तों को रखते हुए भी मिलते और मित्रता अनुराग रखते हैं, वहाँ उनकी मानवता उनके सिद्धान्तों को अपने में सन्निहित, समाहित और प्रच्छन्न रखती है। ऐसे व्यक्ति जीवन को एक समझौता मानते हैं। किन्तु व्यक्तित्व के अबाध विकास-क्रम में समझौता एक पराजय है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या मानवता आदर्शों और सिद्धान्तों की विरोधिनी है? अन्ततोगत्वा संस्कृति और सभ्यता के समस्त आदर्श और सिद्धान्त हैं तो मानवता के ही विकास के लिए।

उत्तर स्पष्ट है। संस्कृति और सभ्यता के सार्वभौमिक आदर्शों की आधार-भूत मान्यताओं में आज एक गहरी खाई उपस्थित हो गयी है। बीच-बीच में गर्त और अन्धकूप हैं। और उन्हें बनाया है पूँजीवादी साम्राज्यवाद ने। जब तक वह नष्ट नहीं होता, तब तक समाज में वर्ग रहेंगे और उनकी सीमाएँ आपस में टकरायेंगी। मानवता के शाश्वत विधान ही उनमें अस्थायी समन्वय और सामञ्जस्य स्थापित रख सकेंगे। किन्तु व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा तो ऐसी दशा में असम्भव हो रहेगी।

आज पाँच बजे सवेरे ही उठकर गिरधारी फूलबाग की ओर घूमने चला गया था। कार्यभार में अधिक लीन रहने के कारण जब कभी उसका शरीर और मस्तिष्क क्लान्त हो जाता है तो वह साधारण रूप से नित्य की

भाँति देर से न सोकर कुछ जल्दी सो जाया करता है। कल भी कुछ ऐसा ही हो गया था। इसीलिए आज अन्य दिनों की अपेक्षा उसकी नींद भी जल्दी उचट गयी थी।

घूमते हुए अकस्मात् मिल गया विपिन। तब उसके साथ वह एक पेड़ के नीचे घास पर बैठा देर तक बातें करता रहा। अकस्मात् उसके मुँह से निकल गया—तुम शादी कब करोगे विपिन?

प्रश्न सुनकर विपिन सकुचा गया। उत्तर न देकर एक फीका हास मुख पर झलकाकर वह गम्भीर हो गया।

शर्म्माजी ने पूछा—चुप क्यों हो रहे?

विपिन ने अब संकोच त्यागकर उत्तर दिया—अच्छा होता, आपने मुझसे ऐसा प्रश्न न किया होता!

उत्तर के साथ ही शर्म्माजी ने लक्ष किया, विपिन को वास्तव में मर्म-स्पर्शी चोट पहुँची है। किन्तु जब बात उसने छेड़ ही दी है, तो उसकी उपेक्षा करना भी उचित नहीं है। यही सोचकर वे बोले—क्यों, ऐसी क्या बात है?

"ऐसी ही बात है शर्म्माजी" विपिन ने कहा और उसने चाहा कि वह इस बात को अब भी गुप्त ही रहने दे।

किन्तु शर्म्माजी बोले—बतलाओ न, ऐसी क्या बात है? आखिर मैं भी तो जानूँ। क्या तुम सोचते हो कि सुनकर मैं उसका अवाँछनीय ढंग से प्रचार करने का साहस करूँगा?

"नहीं-नहीं, यह बात नहीं है शर्म्माजी" विपिन ने अस्थिर होकर कहा—बात यह है कि सुनकर आपको कष्ट ही होगा।

"किन्तु अब, इतनी दूर आकर वापस जाने में तो वह कष्ट और भी बढ़ जायगा।"

"तो फिर सुनिये" कहते हुए विपिन ने जेब से बीड़ी-बंडल निकालकर सामने रख लिया। दियासलाई से एक बीड़ी जलाने और उससे एक-दो कश लेने के बाद वह कहने लगा—"वास्तव में मेरी शादी बचपन में ही हो

चुकी है। उस समय मेरी अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष की थी। मामा ने विवाह किया था। पिता थे नहीं। लड़की छोटी होने के कारण ससुराल-वालों ने विवाह के अवसर पर भेजी नहीं। बाद में पाँच वर्ष के बाद गौने में भेजा था। परन्तु बीच ही में चेचक से उसका रूप नष्ट हो चुका था। मुँह पर बड़े-बड़े दाग़ों के सिवा एक आँख भी जाती रही थी। उस अवसर पर मैंने केवल एक बार उसे देख पाया था। दुबारा देखने का साहस नहीं हुआ! रूप इतना अस्थिर है, इतना क्षणिक, उसी दिन जान सका। और तब से उसके प्रति मुझमें कोई मोह नहीं रह गया।···बहुत बुलाने पर एक बार साहस करके उसे ले आने जो गया भी, तो ससुर महोदय ने यह कहकर टाल दिया कि जिसे अपने खाने का सुभीता नहीं, वह स्त्री को क्या खिलायेगा!

विपन फिर कहने लगा—आप कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि कुछ हो, उस लड़की का क्या दोष है?—उसकी हत्या क्यों हो? किन्तु तब मैं पूछूँगा, मेरा दोष क्या है? पंद्रह वर्षों का उसका इधर का जीवन मैं नहीं जानता, कैसा है। जीवन की प्रत्यक्ष भूख पर विश्वास रखनेवाला मैं यह नहीं स्वीकार कर सकता कि मेरी जरूरत उसे नहीं है। और रूप की अस्थिरता को बहुत पहले जान लेनेवाला मैं, आज रूप का लोभी रह भी नहीं गया। किन्तु आप जानते हैं, क्या मेरी इतनी सामर्थ्य है कि मैं उसको लाने के लिए फौजदारी करूँ, या अभियोग चलाऊँ? जैसा है, चल रहा है। जो कुछ होता है, होता रहेगा। मैं क्या कर सकता हूँ! मैं नहीं जानता कि मुझे कुछ करना है। मैं उत्तरदायी नहीं हूँ।"

सुनकर शर्म्माजी स्तब्ध हो उठे।

अन्त में बोले—सचमुच सुनकर मुझे दुःख हुआ। फिर भी मैं सोचूँगा।

धूप ज़्यादा चढ़ आने पर दोनों अपने-अपने घर चल दिये।

घर की ओर चलते हुए गिरधारी विपिन की इसी समस्या को सोच रहा था! वह अभी अपने मकान पर पहुँचा ही था कि उसे ख़याल हो आया,

सकती थी ? कहानी-लेखिका होना मेरे लिए कौन मुश्किल था ? आज जो यश मालती पा रही है, क्या मैं उसकी अधिकारिणी नहीं हो सकती थी ! वय में वह मुझ से सिर्फ़ दो वर्ष छोटी है। किन्तु मेरे और उसके बीच कितनी गहरी खाई है ! वह पास आ जाती है, तो उसे छाती से लगा लेने को जी आतुर हो उठता है। अपनी एक-एक भाव-भंगिमा से वह कितना आकृष्ट करती है ! क्या ये मेरा निर्माण ऐसे उत्तम ढंग से नहीं कर सकते थे कि घर की इस चहारदीवारी के बाहर भी मैं आ-जा सकती ? इन्हीं दीवालों के भीतर निरन्तर बन्द रखकर इन्होंने मुझे क्या दिया ? और तब, जब मैं उत्तरोत्तर मरण की ओर जा रही हूँ, ये पूछते हैं—मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ?

गिरधारी देर तक रञ्जन के पास बैठा रहा। उसने उसे थोड़-सा दूध भी पिलाया, उसके सिर पर हाथ फेरा। उसे ख़ुश करने के लिए चिबिल्ले-पन से भरी बातें भी कीं। किन्तु आज इन सब बातों में उसका जी लग नहीं रहा था। वह बार-बार सोचता रहा, आज रेणु उदास है। उसने उससे पूछा भी कि वह उसके लिए क्या करे; किन्तु वह बोली नहीं।

इसी समय आ गया लोचन, तो गिरधारी ने कहा—"अब तुम यहाँ बैठो लोचन, तो मैं अपना काम देखूँ।" और वहाँ से उठकर वह पहले अपनी बैठक में गया; फिर रसोईखाने में। रेणु बैठी वहाँ शाक छौंक रही थी। गिर-धारी वहीं द्वार पर खड़ा हो गया। रेणु ने एक बार उसकी ओर देखा भी, किन्तु वह बोली नहीं। पसीने की बूँदें उसके मुख पर जमी हुई थीं। चूल्हा फूँकते हुए उसकी आँखें भी लाल हो आयी थीं। रेणु को इस दशा में देखकर गिरधारी सोचने लगा—अगर वह एक रसोइया रख सकता, तो रेणु को थोड़ा आराम मिल सकता था। लोचन अटके पर जलपान-भर के लिए एक-आध चीज़ बना लेता है। लेकिन खाना तो वह बना नहीं सकता।

तब और कुछ न कहकर उसने कह दिया—कितनी बार कह चुका हूँ, लोचन से खाना बनवा लिया करो। शुरू में कुछ दिनों तक उसको बताना पड़ेगा। उसके बाद वह काम लायक़ बनाने लगेगा। इस तरह की तकलीफ़ तो न होगी।

म्लानमुख रेणु बोली—अपना काम क्यों नहीं देखते जाकर ! मेरी तकलीफ़ की ऐसी बहुत परवा न है तुमको !

इस कथन में एक तीखापन है, एक चोट, गिरधारी ने अनुभव किया; तो भी पहले वह चुप बना रहा। लेकिन उसका जी न माना। वह बदन पर कमीज़ डाले हुए था। उन्हीं पैरों चौके के भीतर चला गया। रेणु के पास जाकर उसने लोटे में भरा पानी उठाया और जलते चूल्हे में उँडेल दिया। उसने कह दिया—ऐसे खाने की मैं परवा नहीं करता रेणु। समझती हो न ? मैं भूखा रह सकता हूँ। मैं मर भी सकता हूँ। जीवन से मुझे इतना अधिक मोह नहीं है। तुमने समझ क्या रक्खा है !

रेणु ने कातर दृष्टि से गिरधारी की ओर देखा, तो वह सहम गयी। वह उठ खड़ी हुई। उसके पैर काँप उठे। वह कुछ कहना चाहती थी; तो भी उसने कुछ नहीं कहा।

गिरधारी यथास्थान खड़ा रहा। किन्तु तब रेणु रसोई के बाहर जाती हुई कहने लगी—तुम क्यों मरोगे ? मैं जो मरने को तैयार हूँ !

बात पूरी करती और आँसू पोंछती हुई रेणु रञ्जन की ओर चल दी।

अब गिरधारी की बारी थी। वह सोचने लगा—क्या सचमुच दोष मेरा है ? उसका हृदय धक्‌धक् कर रहा था। भृकुटियाँ और होंठ फड़क उठते थे। किन्तु वहाँ कितनी देर तक वह खड़ा रहता ? फिर वह ऐसा स्थान भी न था। अतएव चप्पल पहनकर वह वहाँ से चल दिया। लेकिन अन्दर अपने कमरे की ओर नहीं, बाहर। इस बार उसके पैर भी उस समय काँप रहे थे, जब वह घर के बाहर निकल रहा था।

दस

मनुष्य को जीवन में शान्ति नहीं है। उसके चारों ओर दुर्निवार दुस्संयोगों, दुर्वृत्तियों और दुर्घटनाओं का जाल बिछा हुआ है। आगे पैर रखने के लिए जगह नहीं है। अगर वह उनका रोना रोने बैठे, तो चाहे उसका जीवन ही

क्यों न समाप्त हो जाय, किन्तु उलहनों, शिकायतों और अभावों का अन्त होना असम्भव है।

लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य के जीवन में शान्ति और सुख नाम की चीज़ है ही नहीं। है अवश्य, किन्तु वह हमारे समक्ष उसी रूप में आती है, जैसे जुगनू पेड़-पौधों और झाड़ियों में छिपी रहती है और कभी-कभी चमक उठती है। अचेतन भाव-प्रवण भ्रान्त मनुष्य प्रायः उनके भुलावे में आकर कर्तव्य-कर्म से च्युत हो-होकर अपनी गति खो बैठता है। वीर वह है जो इन भ्रान्तियों और विकृतियों से अपने को ऊपर रखकर चले और आगे बढ़ता चला जाय। दुस्संयोगों और दुर्घटनाओं के जाल में पड़कर जो अपना व्यक्तित्व खो न दे, विवेक के कठोर अवलम्ब से जो अपने को इतना दृढ़ और कर्तव्य-रत रक्खे कि जीवन की मोहाच्छन्न विवशताएँ उसके पास फटकने तक न पायें।

किन्तु इसके लिए उसमें होना चाहिये सन्तुलन।

शर्म्माजी ने कार्यालय में पैर रक्खा ही था कि देखते क्या हैं विज्ञापन-विभाग के क्लर्क महाशय टेबिल पर पैर फैलाये कुरसी की पीठ के सहारे क़रीब-क़रीब लेटे हुए हैं! आँखें झपक गयी हैं और वे इतमीनान के साथ खर्राटे भर रहे हैं! तो भी चुपचाप शर्म्माजी अपने कमरे में चले गये। टेबिल पर डाक पड़ी हुई थी। एक-एक करके वे सारी चिट्ठियाँ देखने लगे। एक ग्राहक ने लिखा था—

"प्रिय महाशय, मैंने आपको सूचित किया था कि पत्र आप मेरे यहां के पते से न भेजकर मेरे गाँव की लाइब्रेरी में भेजें। वहाँ गाँव के लोग उसे पढ़कर लाभ उठायेंगे। यहाँ मुझे उतनी आवश्यकता नहीं है। लेकिन देखता हूं, आपने मेरे निवेदन पर ध्यान नहीं दिया।"

एक विज्ञापन-दाता लिखते हैं—

"महाशय जी, उस दिन घर पर आपसे जो बातचीत हुई थी, उसके अनुसार आपने बिल नहीं बनवाया। जो कुछ सेवा मैं आपकी कर सकता था, सो मैंने कर ही दी थी। आप जानते हैं, आजकल हमारी आमदनी घट

गयी है। अन्यथा जैसा आप चाहते थे, वैसा भी हो जाता। लेकिन आप रियायत करवा दीजिये, तो बाद में हम आपकी कुछ सेवा और कर देंगे।

"माफ़ कीजियेगा; घर का पता मैं भूल गया। इसलिये विवश होकर आपको आफ़िस के पते से पत्र लिखना पड़ा।"

और शर्म्माजी ने जो लिफ़ाफ़े पर लिखा पता देखा, तो वह व्यक्तिगत नाम से मिला। इसके सिवा कार्यालय का C/o भी उसमें स्पष्ट रूप से लिखा था। तब उन्हें मालूम हुआ कि भूल से ही उन्होंने उसे खोल डाला है। वास्तव में वह व्यक्तिगत पत्र है; यद्यपि उसका विषय कार्यालय के प्रबन्ध से विशेष सम्बन्ध रखता है।

एक देवीजी लिखे थीं—

"श्री सम्पादक जी,

आप तो अपने पत्र में राजनीति विषय के ही लेख देते हैं कुछ हम लोगों के बारे में भी लिखा कीजिये। आजकल लल्ला के बाबूजी घर पर सिर्फ़ खाना खाने आते हैं। रात को गोदाम में ही सो रहते हैं। मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिससे उनको नाराज होने का अवसर मिलता। पंडितजी—मैं आपको क्या लिखूँ—बतलाइये, मेरा क्या दोष है? मैंने महात्मा गांधी को भी पत्र भेजा है। मैं आपसे पूछती हूँ, मेरा दोष हो तो आप मुझे समझाइये। मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। अगर उन्होंने मेरी ओर ध्यान न दिया, तो मैं प्राण त्याग दूँगी। पर मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा में रहूँगी···"

अन्त में चिट्ठियाँ छाँटने लगे। किस-किस को पढ़ा जाय? फिर भी एक पत्र उनके हाथ में ऐसा पड़ ही गया कि वे उसे बिना पढ़े रह न सके। वह पत्र एक माँ का था। उसके शब्द इस प्रकार थे—

"श्रीमान् पंडितजी,

मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अब आप अपना पत्र मेरे यहाँ भेजना बन्द कर दीजिये। उसे मेरा पुत्र निरञ्जन पढ़ा करता था।

उसकी कथा मैं आपको क्या बताऊँ! जब वह तीन वर्ष का था, तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। घर पर सिलाई का काम करके मैंने

उसका पालन-पोषण किया और बड़ी कठिनाइयों से उसे पढ़ाया। यहाँ तक कि मैंने अपने बदन पर आभूषण के नाम पर एक छल्ला तक नहीं रक्खा। जब वह इस योग्य हुआ कि कुछ पैदा करे, कहीं किसी शहर में जाकर नौकरी करे या किसी धन्धे में लगे, तो नातेदारों ने घेर-घारकर उसका ब्याह करवा दिया। बहू घर में आ गयी। सुन्दर और सुशील। मैंने सोचा था, नयी उम्र है, अभी समझ कम है। गृहस्थी का बोझ सर पर आते ही, अपने आप, कुछ-न-कुछ करेगा ही। पर मेरा यह सोचना व्यर्थ गया। दिनभर वह पड़ा-पड़ा सोया करता। हर समय आलस्य उसे घेरे रहता। पंडित जी, आप जानते हैं माँ का हृदय कैसा ममतामय होता है। फिर उन दिनों बहू नयी-नयी आयी ही हुई थी, मैं कुछ बोली नहीं। मैंने सोचा, जब घर में खाने को न रहेगा, तब तो उसकी आँखें खुलेंगी। अन्त में वह दिन भी आ गया। तब मैंने खुलकर कह डाला, जो कुछ भी मैं कह सकती थी। मैंने कहा—अगर मैं ऐसा जानती कि तू इतना निकम्मा, विषयी और बेशर्म निकलेगा कि मेरी इस अवस्था में भी—जब मुझे आराम से भगवत्-भजन करना चाहिये—मेरी मेहनत-मजदूरी का भरोसा करेगा, उसी पर आश्रित रहकर दिन काटेगा, तो जन्म लेते ही मैंने तेरा गला घोंट दिया होता। ऐसी पुत्रवती से तो मैं वन्ध्या भली थी। अब अपना मुँहकाला करके जहाँ चाहे वहाँ चला जा। इतना ही बाक़ी रह गया है।

"पंडित जी, मेरा यह क्रोध बेकार नहीं गया। वह रोया, मेरे पैरों गिरा, मुझ से माफ़ी माँगी और उसी दिन शहर चला गया। नौकरी तो उसे नहीं मिली; पर मजदूरी कभी-कभी मिल जाती थी। किसी तरह पेट पाल रहा था। हर हफ़्ते उसकी चिट्ठी आती थी कि अब नौकरी कहीं-न-कहीं मिलने ही वाली है।

"इसी तरह कई महीने बीत गये। मुझे वह कुछ भी भेज नहीं सका। अन्त में एक ऐसी चिट्ठी आयी, जिसमें पता चला कि नौकरी तो उसको लग गयी है, लेकिन वह कुसंगति में पड़कर शराब पीने लगा है। मैंने सोचा, दोस्त-दुश्मन हर आदमी के होते हैं। किसी ने यों ही लिख मारा है। मेरा

निरञ्जन ऐसा हो नहीं सकता। वह ऐसी भूल कर नहीं सकता। उसे मेरी याद भूलेगी नहीं। फिर मुझे वह चाहे भूल भी जाय, अपनी नवपत्नी को कैसे भूलेगा ?

"इसी के बाद उसका पत्र आया कि अबकी बार हफ़्ते भर का हिसाब जिस दिन उसे मिलेगा, उसी दिन वह घर आयेगा। पर वह हफ़्ता भी समाप्त न होने पाया था कि मिल में हड़ताल हो गयी। उसका पत्र आया कि उसको कष्ट चाहे जितना मिले, पर हड़ताल होने के अवसर पर वह साथ देगा अपने मजदूर भाइयों का ही। अन्याय का विरोध तो उसे करना ही पड़ेगा। शहर की खबरें बराबर मिलती थीं। चिट्ठी अब नहीं आती थी, लेकिन इतना तो मालूम ही होता रहता था कि मजदूरों के जलसा-जलूसों और प्रदर्शनों में वह शामिल है और अक्सर उनमें देख पड़ता है। नारा लगाने वालों में उसकी आवाज सबसे अधिक बलन्द रहती। उत्साह की उसमें कमी न थी। एक वक्त खाना पाने पर भी वह किसी के आगे अपना दुखड़ा नहीं रोता।...फिर यह भी सुना कि हड़ताल ने जोर पकड़ा है और परिणाम-स्वरूप कई मिल बन्द हो रहे हैं। एक-आध जगह गोली भी चली है।

"यह समाचार जब मैंने सुना, मेरा कलेजा काँप गया। और आज सुनती हूँ पंडितजी, मेरा निरञ्जन...! मेरा निरञ्जन अब इस संसार में नहीं है। आपका पत्र आता है, तो हृदय में एक हूक उठती है कि इसे पढ़कर गाँव-भर में राजनीतिक आन्दोलन की बातों को लेकर बहसें करनेवाला तो अब है नहीं।

"बहुत छोटी बात है पंडितजी, लेकिन लिखनी पड़ती है। आपके पत्र को वह इतनी श्रद्धा के साथ पढ़ता था कि पिछली बार उसका वार्षिक चन्दा पूरा करने के लिए उसने बहू के पैर का एक छोटा आभूषण चुराकर बेच डाला था। पंडितजी, ज्ञान की प्राप्ति उसके संस्कारों की मान्यताओं से बड़ी चीज थी। अब यह विधवा बहू घर में पड़ी-पड़ी रोया करती है। कैसे इसका जीवन कटेगा ? कुछ समझाइये मुझको।

"पंडितजी, यों जवान मैं भी थी, जब मेरे स्वामी का स्वर्गवास हुआ था। किन्तु मैंने फिर भी कुछ तो संसार का सुख पाया ही था।...यद्यपि मेरा सारा जीवन एक दहकते अंगारे की भाँति कटा। मैं राख तो हो गयी, पर ठंढी नहीं पड़ सकी। मेरे साथ की स्त्रियाँ हैं और अब तक उनकी संतति चल रही है! बतलाइये, इस नव विधवा को मैं क्या समझाऊँ! इसको जहर दे दूँ पंडित जी? आप तो मानते होंगे कि विधवाओं को चर्खा कातकर, ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालन करके, आदर्श जीवन लाभ करना चाहिये। किन्तु मैंने जीवन भर जल-जलकर उस पवित्रता के भीतरी और बाहरी रूप और उसके भेदों को जिन आँखों से देखा है, (मैं अपने अनुभव से कह सकती हूँ) वे यदि फूट जातीं, तो अधिक अच्छा होता! आप कहेंगे कि नगरों में तो विधवा-विवाह प्रचलित है। मैं पूछती हूँ, औसत क्या है? दूसरी बात यह है कि जिस संस्कृति की रक्षा के आप लोग निरन्तर गीत गाते हैं और जिस ग्राम्य-जीवन की सादगी और सच्चाई के आप हिमायती हैं, वहाँ विधवाओं की क्या अवस्था है, कभी आपने सोचा है? पंडितजी, आप लोग गाँव में रहकर क्यों नहीं देखते कि वास्तव में हमारा समाज है कहाँ!...निरंजन जब कभी इस तरह की बातें किया करता था, तो मैं उससे बिगड़ उठती थी। किन्तु मैं मानती हूँ कि निरंजन को ऐसा बनाया था, आपके पत्र ही ने। वही पत्र जब मैं पढ़ने को कहती हूँ, तो वह रो देती है। प्रश्न है कि कोरे उपदेशों के द्वारा क्या मैं उसको संतोष दे सकती हूँ? पंडितजी, नग्न यथार्थताओं के सम्मुख कोरी बातें कैसे टिकेंगी? कितने दिन टिक सकती हैं? फिर देहात में!

"क्या आपको पता है कि देहात में तथाकथित नीति, धर्म और संस्कृति का विरोध लेकर नवयुग का हिमायती व्यक्ति न तो सुख-संतोष की नींद सो सकता है न मानवोचित सम्मान का अधिकारी ही हो सकता है। तब पंडितजी, इस देहात में भी एक घोर क्रान्ति की आग लगवा दीजिये। यहाँ की सारी सत्ता—चाहे वह नैतिक हो अथवा आर्थिक—उन्हीं लोगों के हाथों में है, जो पैसेवाले हैं, महाजन अथवा जमींदार हैं।—नित्य जन-साधारण

का शोषण करना जिनका पेशा है। मनुष्यता की रक्षा कीजिये पंडितजी ! अरे जीवन के सत्य और मांगलिक स्वरूप को तो न भूलिये !

"और मैं आपको क्या लिखूँ ? मेरा निरंजन कहाँ है, मुझे बतलाइये। मैं आपका अख़बार अब सीधे उसी के पास भेजना चाहती हूँ। यहाँ कौन उसे पढ़ेगा ?"

यह पत्र अधूरा है। इसके नीचे हस्ताक्षर उस माँ के नहीं हैं। हैं उस गाँव की पाठशाला के एक शिक्षक के, जिसने मक्खियाँ भिनकती हुई उस माँ की लाश को देखा है ; जिसने अफ़ीम खाकर इसलिए आत्मघात कर लिया कि उसकी वह नववधू एक दिन रात को सोते समय चारपायी-सहित उठवाकर ग़ायब कर दी गयी ! शान्ति और व्यवस्था के इस महाराज्य में।

शिक्षक ने ही अन्त में इतना संवाद उसमें और जोड़ दिया है !

ग्यारह

विवेकशील, चिन्तक, विचारक और जीवन-संघर्ष से घिरे हुए व्यक्ति अपने साधारण जीवन-क्रम में नहीं, कार्यक्षेत्र में भी प्रायः असफल रहते हैं। इसलिए नहीं कि वे कार्य की व्यवस्था करना जानते नहीं। इसलिए भी नहीं कि वे सब के सब कायर और कभी-कभी महाक्रोधी होते हैं। वरन् इसलिए कि विचारों के मन्थन और निष्कर्ष-चिन्तन को वे वास्तविक कार्य की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं। वे व्यावहारिक नहीं होते और दूसरों से प्रायः अधिक आशा कर लेते हैं। विश्वास के क्षेत्र में वे बच्चे, आशा की दृष्टि से नारी और भविष्य-निर्माण की दृष्टि से वृद्धवणिक होते हैं।

'संजीवन' कार्यालय के और तो सब कर्मचारी चले गये हैं, केवल एक बुड्ढा चपरासी रामदीन हॉल में दीवाल से पीठ सटाये उस कमरे के प्रवेश-द्वार पर बैठा ऊँघ रहा है, जिसके अन्दर गिरधारी विराजमान है। हॉल में बिजली की एक बत्ती जल रही है। बाहर से आने के लिए जो द्वार पड़ता है,

उसके किवाड़ लगे हुए हैं, केवल खिड़की उसकी भीतर की ओरवाली खुली हुई है। एक चूहा कभी-कभी अपने बिल से निकलकर पहले इधर-उधर कुछ देखता और फिर चट एक ओर भागता हुआ देख पड़ता है।

शर्म्माजी सम्पादकीय विभाग में अकेले चुपचाप एक आराम-कुरसी पर लेटे हुए हैं। उनके हाथ में एक पुस्तक है और वे उसे पढ़ने की व्यर्थ चेष्टा कर रहे हैं। कुछ आंधियाँ उनके भीतर आ जा रही हैं। अतः वे पढ़ते हुए भी वास्तव में कुछ पढ़ नहीं पाते। कभी पुस्तक आराम-कुरसी की पटिया पर रखकर उठने और कमरे में टहलने लगते हैं, कभी खुली खिड़की से आकाश की ओर देखते हैं और फिर पुस्तक पढ़ने में लग जाते हैं।

इसी समय विनायक के साथ आ गयी मालती। अभिवादन के पश्चात् दोनों कुरसियों पर बैठ गये। विनायक ने देखा, शर्म्माजी की मुद्रा अत्यधिक गम्भीर है। उधर मालती ने लक्ष किया, आज शर्म्माजी ने उत्साह के साथ यह नहीं कहा कि आओ, बैठो। वह रेणु से मिलकर आयी थी। उसे पता था कि आज ये महाशय उससे लड़कर आये हैं। तब उसी ने मौन भंग करते हुए कहा—क्या हाल-चाल है?

विनायक की दृष्टि इस समय मालती पर थी। उसके मस्तक, होठों और कपोलों पर छाये-छितराये पसीने के बूँदों को, जो पंखे की हवा पाकर सूखते जा रहे थे, वह मनोयोग से देख रहा था।

शर्म्माजी जैसे खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे। चश्मे के लेंसों को रूमाल से साफ़ करके उसे कानों पर चढ़ाते हुए वे बोले—हाल-चाल यह है कि पूँजी के अभाव में कार्यालय की व्यवस्था इतनी अधिक बिगड़ गयी है कि निकट भविष्य में किसी भी दिन 'संजीवन' का निकलना असम्भव हो जायगा।

"माफ़ कीजियेगा, जो लोग व्यवस्था नहीं कर सकते, वे अपने जीवन में" गम्भीरतापूर्वक विनायक बोला—कभी सफल हो नहीं सकते। उनकी आशाएँ कभी पूरी नहीं होतीं; संसार के लिए वे एक उलहना मात्र छोड़ जाते हैं। उस मरीज़ का-सा, जिसका बदन सड़ गया होता है, किन्तु जो अन्तिम साँस तक यही चिल्लाता रहता है कि इन मक्खियों ने तो मुझको खा डाला।

सुनकर शर्म्माजी पुनः आरामकुरसी पर पूर्ववत् बैठ गये। कुछ बोले नहीं।

विनायक के इस कथन को सुनकर मालती कुछ अस्तव्यस्त हुई। वह जानती थी कि विनायक आजकल बेकार है। वह यह भी जानती थी कि अपने स्वभाव की उग्रता और स्पष्टवादिता के कारण कहीं उसका टिकना भी दुष्कर ही है। अतएव वह बोल उठी—यह तो उसी तरह की बात हुई, जैसे कोई तन्दुरुस्त भिखारी यह कहे कि जो लोग चन्दा मांगते हैं, वे उन अपाहिजों के समान हैं, जो अपने पुराने पापों के कारण कोढ़ी, लूले और लँगड़े हो गये हैं और जिन्हें संसार में रहने का कोई अधिकार नहीं है।

विनायक के होठों पर थोड़ी हलचल हुई। उसने एक बार मौन शर्म्माजी की ओर देखा। फिर मालती की ओर देखता हुआ इतमीनान के साथ वह बोला – एक अविवाहित युवती और शाखामृग को मैं एक ही संज्ञा देता हूँ।

"आप मेरा अपमान कर रहे हैं मिस्टर विनायक! मैं इसे सहन नहीं कर सकती"—मालती के कथन में स्पष्ट उत्तेजना थी।

"अपने कठोर किन्तु सत्य कथन के लिए पछताने का मुझे कभी अवसर नहीं मिला"—विनायक के वाणी में न उत्तेजना थी, न अस्थिरता।

इसी समय गिरधारी बोल उठा।—उसकी मुद्रा पर अब हलचल के स्थान पर एक निर्विकार शान्ति थी, उसकी वाणी में चेतना का सौष्ठव।—"अपनी गम्भीर आलोचनाओं को सुनकर शान्त रहना ही श्रेयस्कर है मालती। मुझे विनायक के कथन के प्रकार से अप्रीति हो सकती है, किन्तु उनके आधारभूत विचारों का मैं आदर करता हूँ।"

शर्म्माजी की बात सुनकर विनायक फिर मालती की ओर देखने लगा। मालती बोली—

"किन्तु सिद्धान्तों के प्रतिपादन में व्यक्तिगत आक्षेप तो सदा असंगति और तर्क-हीनता ही प्रकट करते हैं।"

'किन्तु उत्तरों के आधार प्रकट रूप में व्यक्ति को समेटते हुए भी मूलतः उन प्रवृत्तियों का ही स्पष्टीकरण करते हैं, जिन्हें अपरिपक्व मस्तिष्कों की विकृतियाँ उसमें जन्म देती हैं।"

"आप तो सदा किताबी भाषा में उत्तर देते हैं।"

"क्योंकि आप उन्हें साधारण रूप से समझ पाने में अटकती हैं।"

वार्तालाप के स्तर को इस तल पर आया जान मन्द और शान्त मुसकराहट के साथ शर्म्माजी इसी क्षण बोल उठे—अच्छा हो आप लोग मूल विषय पर आ जायँ।

"लेकिन उससे भी पूर्व मेरी प्रार्थना है कि आप घर चलें। भाभी ने अभी तक खाना नहीं खाया।" मालती बोली।

आश्चर्य्य के साथ विनायक ने पूछा—क्यों ? ऐसी क्या बात है ?

मालती मुसकराने लगी। शर्म्माजी भी थोड़े अस्त-व्यस्त हुए। बोले—कोई ऐसी विशेष बात नहीं है, जिस पर यहाँ बहस करने की आवश्यकता हो।

मालती यों चाहे कुछ कहती भी, पर अब उसने इस विषय में चुप रहना ही उचित समझा।

इसी समय शर्म्माजी बोले—आज मुझे दो कर्मचारियों को निकाल देना पड़ा।

"क्यों ?" विनायक ने पूछा।

शर्म्माजी ने कहा—

एक का अपराध यह था कि वह आये हुए अनेक पत्रों में से छाँटकर दो-चार रख लेता और शेष पत्रों को, बिना उन पर किसी तरह की कार्रवाई किये चुपचाप फाड़कर फेंक देता। पहले तो उसने अपना अपराध स्वीकार ही नहीं किया। बाद में जाँच करने पर जब उस पर अपराध साबित हो गया, तो जानते हैं, उसने क्या उत्तर दिया ?

मालती और विनायक उत्सुकता से गिरधारी की ओर देखते रहे। तब शर्म्माजी बोले—उसने कहा, ये लोग यों ही शिकायत किया करते हैं। ऐसे

साधारण पत्रों पर ध्यान देना व्यर्थ है। फिर जब काम अधिक बढ़ गया और मैंने देखा कि किसी तरह मैं इसे निपटा न पाऊँगा, तो इन पत्रों को फाड़ डालने के सिवा और मैं करता भी क्या!

जब मैनेजर ने पूछा—तो आपने इसकी रिपोर्ट क्यों नहीं की? तो उसने उत्तर दिया—रिपोर्ट करने पर आप मुझे कोई नया सहायक तो दे न देते! हम लोगों का वेतन ही प्रायः दस-दस पाँच-पाँच रुपये करके कई वार में मिल पाता है। ऐसी दशा में और एक नया आदमी आप कहाँ से रखते!

विनायक बोल उठा—स्थिति वास्तव में शोचनीय है।

शर्म्माजी उठ खड़े हुए। ऐसा प्रतीत हुआ कि वे कुछ कहेंगे। किन्तु वे खिड़की से आकाश की ओर देखने लगे।

मालती बोली—ऐसे व्यक्ति को निकाल देना ही उचित था।

शर्म्माजी खिड़की से पलटकर बोले—मुख्य प्रश्न पूँजी का है। हमारे पास इतनी भी पूँजी नहीं कि हम अपने कर्मचारियों को समय पर उनका वेतन दे सकें। इसी का यह फल है कि ये लोग कार्य में शिथिलता, असावधानी और स्वेच्छाचारिता दिखलाते हैं। जिन लोगों के पास पूँजी है, वे ऐसे व्यवसायों की ओर ध्यान नहीं देते और जो ध्यान दे सकते हैं, जिनमें देश और समाज के लिए कुछ करने का अनुराग है, वे निर्धन और दरिद्र हैं!

"यही तो हमारी विवशता है।"—विनायक बोल उठा।

शर्म्माजी ने कहा—गुलाम देश। अधिकांश जनता अशिक्षित। शिक्षित जनता बेकार या पथभ्रष्ट। पूँजी उन लोगों के हाथों में जो अधिकतर मूर्ख, लम्पट, स्वार्थी, दुर्व्यसनी, अन्धविश्वासी और जड़ हैं।—किया क्या जाय?

मालती शर्म्माजी के हृदय-मंथन को बराबर देख रही थी। प्रकट में वह यह भी देखती थी कि उनके मस्तक पर बल पड़ते हैं, भृकुटियाँ तनती और फैलती हैं, मुट्ठियाँ बँधती और खुलती हैं।

इसी समय विनायक ने पूछा—अच्छा हाँ, और दूसरा कर्मचारी? उसने क्या किया?

शर्म्माजी बोले—दूसरा कर्मचारी था अवधविहारी, विज्ञापन-क्लर्क। उसने कम रुपये का बिल बनाने का आश्वासन देकर विज्ञापनदाता से घूस ले ली। यों चाहे मामला छिपा भी रहता; पर ग़लती से उसका पत्र बजाय उसके घर के पते से पहुँचने के आ गया हमारे यहाँ और मैंने उसे भूल से खोल भी डाला। ...... मैनेजर ने समझाया—माफ़ी माँग लो, तो मामला आगे नहीं बढ़ाया जायगा। किन्तु न उसने माफ़ी माँगी, न यही स्वीकार किया कि उसने विज्ञापनदाता से कुछ पाया है। उसे इस बात पर विशेष आपत्ति थी कि उसका पत्र खोला ही क्यों गया, जब कि वह प्राइवेट था। मैनेजर की राय थी कि इस केस को पुलिस में दे दिया जाय। किन्तु मैंने यह सोचकर उसे छोड़ देना ही उचित समझा कि नौकरी से अलग कर देना कम कठोर दंड नहीं है।

विनायक बोल उठा—अपराधियों के साथ दया दिखलाना अपराध-वृत्तियों को प्रोत्साहन देना है। जो लोग न्याय की कठोरता का निर्वाह नहीं कर सकते, उनको व्यवस्था के कार्य में अलग रहना चाहिये।

शर्म्माजी को विनायक का यह कथन कुछ अधिक प्रियकर नहीं हुआ। चश्मे को उतारकर वे उसके लेंस साफ़ करने लगे। वे सोच रहे थे—बेचारे को आज ही चिन्ता हो गयी होगी कि कहीं काम तलाश करना है। और आजकल बेकारी इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि एक बार नौकरी छूट जाने पर फिर काम मिलना दुर्लभ हो जाता है। अतएव उन्होंने कहा—मूलतः कोई आदमी दोषी नहीं होता। प्रायः जीवन की मजबूरियाँ और कभी-कभी मानसिक वृत्तियाँ ही उससे अपराध करवाती हैं। अगर उसको यथेष्ट वेतन मिलता होता, तो वह कदाचित् ऐसा अपराध न करता।

"बिलकुल उल्टा सोचते हैं आप" आराम से कुर्सी की पटिया पर से अपनी पीठ हटाकर कुछ तर्क-तत्परता-सी प्रदर्शित करते हुए विनायक ने

कहा—अपराध करने वाले अपने जीवन से सदा असन्तोष रखते हैं। यथेष्टता की वास्तविकता को वे कभी स्वीकार नहीं करते। मजबूरियाँ उन्हें सदा घेरे रहती हैं; क्योंकि साधारण-से-साधारण आवश्यकताएँ भी उनके लिए एक मजबूरी हुआ करती है। घूस लेने वाले रुपये की किसी खास जरूरत से घूस नहीं लिया करते। असल बात यह है कि वे रुपये के लोभ से अपने को बचा नहीं पाते। इष्टानिष्ट और उचितानुचित के बीच में पड़कर वे अपने को अनिष्ट और अनुचित के ही जाल में फँसा लेते हैं। असल में वे न कुछ अनिष्ट मानते हैं, न अनुचित। दुनियाँ की आँखों में धूल झोंककर अपना काम निकालना ही उनका एक मात्र ध्येय होता है! सत्य और न्याय की रक्षा से कोसों दूर रहकर वे एकदम से ओछे, टुच्चे और पतित बन जाते हैं।

तब प्रशान्त कण्ठ और आर्द्र वाणी से शर्म्माजी कहने लगे—जरा अदृष्ट के इस खेल को तो देखिये कि त्याग, सेवा, सत्य और सज्जनता का पुजारी होकर भी मैं इन लोगों के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका! रातदिन आदर्श के पालन में ही पिसते, घिसते और जलते रहने पर भी परिणाम तो यही है न, कि इस तरह के व्यक्ति हमें सहायक मिलते हैं!

विनम्र मुसकान को मानो श्रद्धा से भिगोकर मालती बोली—यह आपका हम लोगों के साथ बहुत बड़ा अन्याय है। जिस क्षण आप अपने साथियों और सहायकों का आह्वान करेंगे, उस क्षण आपको उनसे शिकायत न होगी।

"मैं भी शर्म्माजी अकसर यही सोचा करता हूँ कि" विनायक ने सहज भाव से धीरे-धीरे कहा—आदमी में अपराध करने की वृत्तियाँ क्या इतनी स्वाभाविक हैं कि वे कभी जा नहीं सकतीं? आखिर लोगों में दोष होते ही क्यों हैं? क्या निर्दोष स्थिति मनुष्य के लिए सर्वथा असम्भव है? अच्छा, जाने दीजिये इस दर्द-सिर को। एक बात बतलाइये। कभी आपने अपने कार्यालय के कर्मचारियों का, भाव और वृत्ति की दृष्टि से, वर्गीकरण किया है? मतलब मेरा यह जानने से है कि किस प्रकार के कर्मचारी इस तरह के अपराध किया करते हैं?

"लेकिन आप यह कर क्या रहे हैं"—तुरन्त उठकर हार्दिकता के मृदुल विरोध के स्वर में मालती ने कहा—आपने अभी तक कुछ खाया नहीं, दिन-भर कार्य-ही-कार्य में बिता दिया। इस समय भी विचार-विमर्श और तर्क में लीन हैं। उधर भाभी ने भी कोरा उपवास किया है। आखिर आपकी इच्छा क्या है ?

विनायक भी अब थोड़ा मुसकराने लगा। बोला—मामला संगीन नजर आता है। लेकिन—घर और बाहर—दोनों ओर का संघर्ष आप सहन भी ख़ूब करते हैं। अच्छा चलिए, उठिये। इस विषय को कल के लिए स्थगित किये देता हूँ।

और वह भी उठ खड़ा हुआ।

दूसरे दिन मालती विनायक को साथ लेकर नहीं आयी। उसके व्यंग्यपूर्ण कथनों से वह इतनी घायल हो गयी थी कि फिर उससे मिलने का उसका अनुराग ही शिथिल हो गया था। किन्तु एकान्त में वह सोचती रही उन्हीं आक्षेपों की बात—और उनमें सत्यांश का भी उसने अनुभव किया। किन्तु जब वह शर्म्माजी के यहां पहुँची, तो यह देखकर अवाक् रह गयी कि विनायक वहां पहले से ही उपस्थित है। उसने एक बार उसके मुख की ओर देखा। प्रतीत हुआ कि वह कल की अपेक्षा आज कुछ अधिक प्रसन्न है। आज उसकी दाढ़ी भी बनी हुई है। कपड़े साफ़ जरूर हैं, किन्तु उनकी शिकन साबित करती है कि उन्हें घर में ही साफ़ किया गया है।

उसके पहुँचने पर सदा की भांति शर्म्माजी ने कहा—आओ, बैठो।

मालती सोचने लगी—इसका मतलब यह है कि इनकी मानसिक स्थिति सन्तुलन पर है।

विनायक बोल उठा—मैंने सोचा, आज तो आप मेरे घर आने से रहीं इसलिए… !

"हां", कहकर मालती रुक गयी। वह कहने जा रही थी कि आप कभी-कभी बिल्कुल ठीक सोच लेते हैं !

गिरधारी ने अपने आप ही कल के स्थगित विषय को उपस्थित करते हुए कहा—आज दोनों क्लर्क प्रातःकाल क्रम-क्रम से क्षमा-याचना करने आये थे। मैंने उन्हें—

विनायक ने उनके अधूरे वाक्य को पूरा करते हुए कह दिया—फिर रख लिया है।

गिरधारी चुप ही रहा।

मालती भी मौन रही। किन्तु विनायक पुनः बोला—और यही लोग एक दिन प्रेस को इतनी अधिक हानि पहुँचायेंगे कि आप उसे सहन न करके दीवालों पर अपना सिर पटकेंगे, सिर के बाल नोचेंगे और जो मिलनेवाले आयेंगे उनको काटने दौड़ेंगे!

गिरधारी ने जरा भी अशान्त और अस्थिर न होकर सरल स्वाभाविक स्वर में कहा—किन्तु मैंने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। इतना ही कहा कि मैं विचार करूँगा। इतना बेवक़ूफ़ मैं नहीं हूँ विनायक बाबू, जितना आप मुझे समझ बैठे हैं। इन कर्मचारियों की क्या स्थिति है, आप नहीं जानते। मुझे थोड़ा-सा अनुभव है और उसके आधार पर उनके सम्बन्ध में अपने विचार मैं अभी आपके सामने रखने की चेष्टा करूँगा। कल आपने ऐसी इच्छा भी प्रकट की थी।

होंठ बिचकाकर विनायक मुसकराने लगा। बोला—यह भी खूब रहा कि आप अपने को थोड़ा-बहुत बेवक़ूफ़ समझ लेते हैं!

मालती रूमाल मुँह से लगाती हुई बोली—साथ निभाने के लिए कभी-कभी सबको ऐसा करना पड़ता है। नहीं तो कुछ लोग तो वास्तव में न केवल बकरी का दूध पीना शुरू कर दें, वरन् आशंका तो पूरी इस बात की भी है कि आगे के दाँत तक निकलवा डालें!

विनायक बोल उठा—और जार्जेट का स्थान खादी ग्रहण कर ले।

"मेरी प्रार्थना है कि आप लोग" शर्म्माजी कुछ अटकते हुए से बोले—अब...।

विनायक ने कह दिया—उठकर खड़े हो जायँ। कुश्ती हो चुकी!

क्षण भर रुककर गम्भीर होती हुई मालती बोली—कहिये न आप। मैं सुन रही हूँ। विनायक बाबू कृपा करके आप भी चुपचाप सुनें।

शर्म्माजी बोले— प्रेस में अनेक प्रकार के कर्मचारी हैं। एक तो वे, जो यहाँ इस भाव से काम करते हैं कि वे राष्ट्र के सेवक हैं और उदर-पोषण के लिए उन्हें मिलता रहे, इतना ही वे चाहते हैं।

"पर ऐसे लोग मिलते कहाँ हैं!" मालती बोली—यदि आपके यहाँ हैं, तो यह आपका बहुत बड़ा सौभाग्य है।

शर्म्माजी बोले—हमारे यहाँ भी ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं है। और जहाँ तक कारखाने का सम्बन्ध है, हम कर्मचारियों से निस्स्वार्थ सेवा की आशा भी नहीं करते। दूसरी श्रेणी उन लोगों की है, जो सेवा-भाव पर विश्वास नहीं करते। वे यह मानते हैं कि हम मेहनत करते हैं और मेहनत की उजरत हमें मिलनी चाहिये। हमें इस बात से कोई बहस नहीं कि पत्र की स्थिति कैसी है।

विनायक ने कदाचित् अपने आप को तौलते हुए कहा—आजकल प्रत्येक कर्मचारी का यही दृष्टिकोण होता है।

"यहाँ तक कि अगर मैं आपके यहाँ नौकरी करूँ, तो मैं भी यही सोचने के लिए मजबूर होऊँगी"—मालती मुसकराती हुई बोली।

[illegible] बीच में गिरधारी कहने लगा—यह अपनी नौकरी की बात तुमने ख़ूब कही! जो हो, मुझे भी भौतिक दृष्टिकोण ही देखना है इसीलिये ये लोग प्रतिवर्ष वेतन-वृद्धि कराने की चेष्टा करते हैं। ये बाल-बच्चोंवाले हैं और इनकी आवश्यकताएँ बढ़ती रहती हैं। ये इस बात पर विश्वास नहीं करते कि जब कभी पत्र में लाभ होगा, तब बिना माँगे उनकी वेतन-वृद्धि यथेष्ट मात्रा में हो ही जायगी। ये लोग नगर के कर्मचारी-मंडल के सदस्य भी हैं।

मालती बोली—इस मंडल की चर्चा मैंने भी सुनी है। लेकिन सुनती हूँ, आपस के झगड़ों के कारण यह मंडल ठीक ढंग से काम नहीं कर रहा।

उसी समय विनायक बोल उठा—आपस का झगड़ा और वैमनस्य तो हमारे देश का मज्जागत है।

"लेकिन तुमको यह सुनकर आश्चर्य्य होगा" शर्म्माजी ने जैसे कोई नयी बात सोचते हुऐ कहा—इस तरह के कर्मचारियों के अन्दर एक तीसरी श्रेणी भी है। कार्यशैली, क्षमता और योग्यता की दृष्टि से देखा जाय, तो इस श्रेणी के लोग यथेष्ट परिष्कृत हैं। किन्तु साधारण जनता के आन्दोलनों के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। समय पर वेतन लेना और कार्यालय में इस ढंग से काम करना कि काम की कमी कभी न होने पाये, उनका मुख्य उद्देश्य रहता है। वे केवल घंटे पूरे करने के लिए आते हैं। घर-गृहस्थी के उत्तर-दायित्व का भी वे विशेष खयाल नहीं करते। साधारण व्यवहार में वे बड़े सभ्य और शिष्ट जान पड़ते हैं। पर भीतर से बड़े मक्कार, अवसरवादी और धूर्त होते हैं। वे सदा बचकर खेलते हैं, और सदा इस बात की परवा करते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन निकाल दिये जायें तो कहीं के न रहें।

विनायक कहने लगा—उच्चकोटि की सरकारी नौकरियों को छोड़कर शेष सभी नौकरियों का निर्वाह लोग इसी तरह करते हैं। फैक्टरियों, कारखानो और मिलों की बात दूसरो है, जहाँ आदमी मैशीन के पुर्जे की भाँति जड़ और निष्प्राण रहता है।

गिरधारी ने कहा—किन्तु उच्च श्रेणी की सरकारी नौकरियों में भी कर्तव्य, न्याय और सत्य पर दृष्टि रखनेवाले कुछ इनेगिने व्यक्ति अपवाद रूप में ही मिलेंगे। और निम्नश्रेणी के लोगों में भी अधिकांश न कर्मठ होते हैं, न ईमानदार। रात उनकी होटलों, जलपानगृहों, पिक्चरहाउसों, चकलेखानों तथा प्रेयसियों के यहाँ कटती हैं। नशेबाज़ भी वे कम नहीं होते। सड़क पर चलते हुऐ पास से गुज़रनेवाली स्त्रियों और युवतियो की ओर कुदृष्टि से देखे ✓ बिना उनकी तबियत नहीं मानती। उनमें अधिकांश या तो अविवाहित होते हैं, या नौकरी के स्थान पर अकेले। स्त्रियों को वे लोग मायकों या देहात के घरों में डाल रखते हैं। अधेड़ अथवा कुरूप होने के कारण उनके साथ पत्नी का सम्बन्ध रखना उन्हें स्वीकार नहीं होता। महीने में गिने रुपये उनके पास मनीऑर्डर से आ जाते हैं और उन्हीं के आधार पर वे अत्यन्त हीन और

दयनीय जीवन व्यतीत करती हैं। उनके बच्चे नीरोग नहीं रहते। शिक्षा भी उन्हें ठीक ढंग से नहीं मिल पाती और उनके पिता और संरक्षक—वे बाबू लोग—निश्चिंत रहते हैं और जीवन उनका जैसा चलता है, बराबर चलता रहता है।

मालती बोली—पर यह जड़ता तो समाज में सर्वत्र है।

"सर्वत्र ऐसा नहीं है"—तुरन्त विनायक ने कह दिया।

मालती ने उग्र होकर पूछा—मैं जानना चाहती हूँ कि स्थिति देखकर क्या ऐसा नहीं जान पड़ता कि वे जीवन से हार मान बैठे हैं?

तब विनायक ने प्रश्न की भाँति पूछा—क्या हमारे ही देश में साधारण जनता का मानसिक स्तर इतना हीन है? सदियों की गुलामी में जकड़ी अशिक्षित, असभ्य और रूढ़ियों से घिरी जनता के लिए इतना अनैतिक होना क्या कोई ऐसी अनहोनी बात है...?

शर्म्माजी एकाएक जैसे चौंक पड़े हों। क्षण भर बाद कुछ सोचते हुए वे बोले—महामति गोर्की तो ऐसा ही मानता था। विचारक रोम्यां रोलां को सन् २२ के लिखे एक पत्र में वह लिखता है—रूसी क्रान्ति के आरम्भिक दिनों से ही मैं यह बात बराबर कहता आया हूँ कि हमारी जनता में संघर्ष-काल में नैतिकता की बड़ी आवश्यकता है।

इस पर मालती कुछ क्षणों तक मौन रही। अन्त में बोली—किन्तु चाहे जो हो, हमारे देश की जैसी स्थिति इस समय है, उसको देखते हुए नैतिकता का पालन और प्रतिपादन सम्भव नहीं है।

शर्म्माजी पुनः उत्तप्त हो उठे। बोले—नैतिकता विहीन मनुष्य और हिंसक पशु में मैं कोई अन्तर नहीं मानता।

अस्थिर और क्षुब्ध विनायक बोल उठा—किन्तु हिंसक मनुष्य की अपेक्षा हिंसक पशु फिर भी अच्छा है। नैतिकता की दुहाई देकर जो लोग संसार में नंगों, भूखों और पागलों की संख्या बढ़ा रहे हैं, कौन कह सकता है कि वे हिंसक नहीं हैं?

मालती इस बार आश्चर्य्य से विनायक को देखती रह गयी।

गम्भीरतापूर्वक शर्म्माजी फिर कहने लगे—वह पहलू दूसरा है। इन लोगों की स्थिति तो यह है कि जीवन में सत्य क्या चीज़ है, यह भी वे नहीं जानते।—जानते चाहे हों, पर जीवन में उसको कोई महत्व नहीं देते। दुनिया की आँखों में धूल झोंककर स्वयं मौज उड़ाना ही उनका एक मात्र उद्देश्य रहता है।

"प्रत्येक जड़वादी आज जीवन का निर्माण इसी रूप में करना चाहता है।"—विनायक कहने लगा।

किन्तु शर्म्माजी ज़रा भी रुके बिना बराबर बोलते ही रहे—ये लोग नगर के छटे हुए गुंडों और बदमाशों से मिले रहते हैं। किसी भी भले आदमी को बेइज़्ज़त करा देना इनके लिए बायें हाथ का खेल है। ऊँचे-से-ऊँचे दरजे का आदमी इनके लिए तभी तक सह्य होता है, जब तक उनके निकट स्वार्थों को कोई क्षति नहीं पहुँची। उनके द्वारा एक बार भी अपमानित होना वे कभी सहन नहीं करते, चाहे वह कितना ही न्यायोचित क्यों न हो। और एक बार किसी सम्बन्ध से मतभेद अथवा विरोध हो जाने पर वे उसका बदला अपने जीवन-भर के विरोध और वैमनस्य से चुकाते हैं। उचित-अनुचित का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं होता। विरोधी को अपदस्थ करते रहना उनका एकमात्र लक्ष्य रहता है। ये लोग प्रायः उच्चवर्ग के लोगों तथा राजा-रईसों की ख़ुशामद में रहा करते हैं। राष्ट्र अथवा समाज का हिताहित उनके समक्ष कोई मूल्य नहीं रखता। कौंसिलों और बोर्डों के चुनाव के अवसर पर ऐसे लोग पक्ष उसी व्यक्ति का लेते हैं, जो रुपया अधिक ख़र्च करता है। ऐसे अवसरों पर निजी बैठकों और गोष्ठियों में ही नहीं, सार्वजनिक सभाओं तक में ये लोग राष्ट्र-कर्मियों को खुले तौर पर गाली देते हैं। और मारपीट करने के लिए तो सदा जैसे उधार खाये बैठे रहते हैं।

विनायक बोला—नौकरी पेशा ही लोग क्यों, साधारण जनता भी इन दुर्गुणों की कम शिकार नहीं है?

भाव-तृप्त गिरधारी कहता गया—देखिये न, कितनी दयनीय स्थिति है कि हड़तालें होती हैं, तो ये लोग पक्ष लेते हैं मिल-मालिकों का। मुक़दमे-

बाज़ी होती है, तो अदालतों में झूठी गवाहियाँ देना इनके लिए एक मामूली बात है। अपने सगे सम्बन्धियों और आत्मीय स्वजनों, माताओं और बहनों तक का अपमान करने और सहने में उन्हें कोई असुविधा अथवा आपत्ति नहीं होती। वे मूलतः पूँजीजीवी न होते हुए भी समर्थक उसी वर्ग के होते हैं। जीवन से निरन्तर लड़ते-लड़ते वे अब उससे हार मान बैठे हैं। तभी उन्होंने उस पूँजीजीवी वर्ग की सत्ता, परिपाटी और नीति के आगे घुटने टेक दिये हैं, जो हमारे न केवल सामूहिक वरन् व्यक्तिगत स्वार्थों के भी शत्रु हैं। इतनी विकृतियाँ उनके अन्दर पनप रही हैं कि वे लोग निरन्तर अपने नाश की ओर जा रहे हैं!

इतना कहकर शर्म्माजी चुप हो रहे। पर वे थोड़ी देर ही कुरसी पर बैठे; फिर टहलने लगे। श्रद्धा और भक्ति से ओतप्रोत होकर मालती अनुभव कर रही थी—इस समय इनके हृदय में कितना तूफ़ान उठ रहा है! क्या इस तपस्वी को कभी इस संघर्ष से छुट्टी न मिलेगी? क्या इसका जीवन सदा ऐसा ही अशान्त बीतेगा?

बारह

चरित्र का मूल्यांकन करते समय हम प्रायः शरीर-धर्म की ओर ही अपनी दृष्टि रखते हैं। किन्तु पुरुष और स्त्री के मिलन को, जहाँ तक वह शरीर-धर्म से सम्बद्ध है, चरित्र के मूल्यांकन में अधिक महत्व देने का अर्थ है—छल, कपट, अविश्वास, कृतघ्नता, दम्भ तथा आडम्बर आदि उन वृत्तियों की उपेक्षा करना, जिनका नियंत्रण मानवता के विकास के लिए आवश्यक है।

खाना-पीना, उठना-बैठना और सोना आदि शरीर के धर्म हैं। चरित्र के साथ वे वहीं तक संलग्न है, जहाँ तक वे समाज के मानसिक सदाचार की सीमाओं को भंग नहीं करते। आकर्षण का भी शरीर-धर्म की अपेक्षा मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। उसकी उत्पत्ति का हेतु है सौन्दर्य-

लिप्सा। और समाज की मान्यताएँ मर्यादित चाहे जैसी हों, संस्कृति और धर्म की सीमा-रेखाएँ भी चाहे जैसी स्पष्ट, दृढ़ और चिरस्थिर बनी रहें, मनुष्य की सौन्दर्य्यलिप्सा कभी मिट नहीं सकती; वह चिरन्तन है। चरित्र के मान उसके नाम पर सदा विवश रहेंगे।

रेणु उस दिन कई बार रोयी। वह यह मानती थी कि शुरू में बदला हुआ रुख मेरा ही था। मैंने ही रञ्जन की माता होने से इनकार किया और बात बढ़ायी। और अन्त में मैंने ही उलहना दिया कि 'मेरी तक़लीफ़ की ऐसी बहुत परवा न है तुमको'। किन्तु क्या उनको यही उचित था! इतना क्रोध तो ये पहले कभी मुझ पर करते न थे।...तो असल बात यह है कि अब मैं इन्हें अच्छी नहीं लगती। मेरे प्रति वह प्रेम ही अब इनमें कहाँ रह गया है। बात-बात में झिड़क उठते हैं। मेरी बात सहन नहीं कर पाते। सेर का सवा सेर, बल्कि ढाई सेर जवाब देते हैं। पहले तो ऐसा कभी होता न था। कम-से-कम इतना तो ख़याल करते कि आजकल रञ्जन बीमार है। ऐसे समय इस तरह का उपद्रव रचना परिवार की शान्ति-रक्षा के लिए कितना भयानक हो सकता है!

रेणु को आज मालती की भी कई बार याद आयी। वह सोचती रही कि जब से इनके साथ उसका मिलना-जुलना आरम्भ हुआ, मेरे प्रति इनके भावों में परिवर्तन बस तभी से उत्पन्न हुआ है। मैं उनके चरित्र पर सन्देह नहीं करती। पर आदमी के लिए असम्भव कुछ नहीं है! और न सही, तबियत में एक स्निग्धता तो आ ही जाती है। उसी दिन कैसे हँस-हँसकर बातें कर रहे थे! आपस में घनिष्टता हुए बिना ऐसा कभी सम्भव नहीं है। फिर परिचय भी कुछ नया नहीं है। उस समय छोटी थी। पर अब तो काफ़ी खेलीखायी प्रतीत होती है। उससे बच क्या सकता है!

रञ्जन की तबियत अब अच्छी हो रही है, सन्देह नहीं—वह सोचने लगी—किन्तु इनको इससे क्या! अगर वह...गया होता, तो भी इनको क़तई रंज न होता। ऐसा निर्मम आदमी तो दुनिया में कहीं खोजने पर भी

न मिले। कभी-कभी कैसी माया दिखलाते हैं! ऐसा प्रतीत होता है, मानों सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर हैं। किन्तु इतना भी नहीं होता कि दो-चार घंटे लगकर उसके पास बैठते।

तो सारा दिन, सारी रात जलने-भुनने और मरने-खपने के लिए मैं हूँ, केवल मैं! लेकिन मैं—केवल मैं—इसके लिए नहीं हूँ। मैं अब इस जाल में न रहूँगी। मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं यहाँ से चली जाऊँगी।

लोचन से कोई बात छिपी न थी। जब बारह बज गये, तो उसने निकट आकर कहा—बहूजी, मैं चूल्हा जला आया हूँ। बटलोई में पानी खौल रहा है। चलो दाल छोड़ दो न चल के। बाबू सवेरे के निकले हुए हैं। कौन जाने आते ही हों।

रेणु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

लोचन कब तक उत्तर की प्रतीक्षा करे? बोला—बहू जी, मैं बुड्ढा आदमी हूँ। मैंने दुनियाँ बहुत देखी हैं। पति के आगे स्त्री को ही सदा झुकना पड़ता है। फिर बाबूजी जैसा आदमी इस धरती पर किसको नसीब हो सकता है? बहूजी! आदमी नहीं देवता हैं वे। उठो बहूजी, उनके कहने का बुरा नहीं मानना चाहिये आपको।

रेणु बोली—तुम मेरे 'मुँह मत लगो लोचन। सीधे चुपचाप चले जाओ और अपना काम देखो। मुझे तुम्हारी नसीहत की जरूरत नहीं है। मैं अपना भला-बुरा तुमसे ज्यादा समझती हूँ। समझते हो न?

उदास लोचन के मुँह से निकल गया—जी!

रेणु ने उसी तीव्रता के साथ उत्तर दिया—तो फिर जाओ, अपना काम देखो।

रेणु रञ्जन के पास ज़मीन पर शीतलपाटी बिछाये हुए दिन भर लेटी रही। एक-आध बार लेटे-लेटे नींद का झोंका भी आ गया। एक-आध बार उसने लोचन की बात पर भी ध्यान देने की चेष्टा की। वह उठी और छज्जे पर खड़ी-खड़ी सड़क पर किसी को देखती और उसकी प्रतीक्षा भी

करती रही। उसने दरवाजे की ओर भी कई बार दृष्टि डाली। कई बार उसे यह भी मालूम हुआ कि शर्म्माजी अपने कमरे में आ गये हैं। पर अपनी प्रत्येक कल्पना में ज्यों-ज्यों वह निराश होती गयी, त्यों-त्यों उसका यह निश्चय और भी दृढ़ होता गया कि उसे निराहार रहना है, वह निराहार रहेगी।

ज्यों-त्यों करके पाँच बजे और लेटे-लेटे उसे ऐसा भान हुआ कि कोई आ रहा है। चट्टियों का शब्द हो रहा है। परन्तु फिर उस पगध्वनि से कुछ ऐसा भी प्रतीत हुआ कि वह कुछ अपरिचित है। जो भी हो, कोई-न-कोई तो आ ही रहा है। वह उठ बैठी। रज्जन ने इसी समय पानी माँगा। तब वह खड़ी हो गयी। अब उसको कमजोरी का अनुभव हुआ। कुछ ऐसा भी जान पड़ा, जैसे उसका सिर दर्द कर रहा है। किन्तु रज्जन को पानी पिलाने के बाद जो उसकी आँख एक ओर गयी, तो देखती क्या है—मालती मुसकराती हुई सामने खड़ी है और नमस्ते कर रही है।

रज्जन की चारपायी के पास कुरसी पड़ी थी। रेणु बोली—नमस्ते। आओ, बैठो।

मालती ने पूछा—रज्जन की तबियत कैसी है?

रेणु बोली—अब तो अच्छी है। डाक्टर का कहना है कि एक-आध दिन में पथ्य देंगे।

मालती ने कुरसी रज्जन के पास खसका ली। बोली—कैसा जी है रज्जन?

रज्जन चकित था। उसने कभी मालती को देखा तो था नहीं।

रेणु कहने लगी—ये तुम्हारी बुआ हैं रज्जन।

मालती संकोच में पड़ गयी। एकटक रेणु के मुख की ओर देखती रह गयी।

फिर बोली—बुआ कहलाओगी?

"क्यों?" रेणु ने विस्मय से कहा—मैं तुम्हारी भाभी हूँ न! तब?

मालती हँसने लगी।

रेणु ने फिर पूछा—बुआ कहलाने में तुमको अच्छा नहीं लगता ?

मालती बोली—अच्छा लगने-न-लगने का कोई प्रश्न नहीं है। लेकिन बुआ कहने से क्या मैं बुआ हो जाऊँगी ?

रेणु ने इस बार मालती को ध्यान से देखा, तो उसके मुख पर मुसकराहट के स्थान पर उसने कुछ और अनुभव किया। सोचा, यह और चाहे जो हो, बुआ कहलाने की स्पष्ट स्वीकृति तो है नहीं। किन्तु इस भाव को लेकर वह कुछ उद्विग्न हो गयी। कुछ बोली नहीं।

मालती भी मौन रही।

रञ्जन ने कहा—"अम्मा।" उसकी दृष्टि रेणु पर अटक रही थी।

रेणु उसके निकट आकर धीरे-धीरे पंखा झलने और सिर और मत्थे पर हाथ फेरने लगी। मालती चारपायी के दूसरी ओर बैठी थी।

मालती क्या करे कि बात आगे बढ़े, जैसे इसी टोह में थी। एकाएक उसकी दृष्टि रेणु की उदास मुद्रा की ओर जा पड़ी। वह कहने लगी—आज अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक गम्भीर देख पड़ती हो भाभी। बात क्या है ? भाईजी तो दफ़्तर में होंगे। कई दिनों से भेंट नहीं हुई।

रेणु ने लक्ष किया—यह मालती है। अभी उस दिन से बराबर उन्हें 'शर्म्माजी' कहती थी। जैसे मित्रता उसमें भीगी और बसी हो और सुवास उससे निस्सृत होता हो। किन्तु अभी जब मैंने रञ्जन की बुआ होने का नाता निकाला, तो आपत्ति कर बैठी। उस आपत्ति का अर्थ व्यर्थ जब नहीं गया और प्रश्न उपस्थित हुआ कि फिर तुम हो कौन सकती हो ?—क्या होने की इच्छा है तुम्हारी; तो अभी तत्काल उनके लिए यह 'भाई' शब्द आ रहा है। शब्द बुरा नहीं है, 'शर्म्माजी' की अपेक्षा एक तरह से सुन्दर भी यथेष्ट है, ऊँचा तो है ही। किन्तु प्रश्न है कि उसमें सत्य कितना है ? यह तो सरासर अपने को धोखा देना है, प्रवञ्चना। किन्तु इन तितलियों से और आशा भी क्या की जाय ? दुनिया को ठगने की जितनी भी रीतियाँ हैं, सब-का-सब इनमें ओतप्रोत हो रही हैं प्रकट हास में कितना छल, कितना प्रपञ्च ये प्रच्छन्न रखती हैं ! हृदय का अन्तर्द्वार इन लोगों का सदा अवरुद्ध रहता

है। वार्तालाप में बनावट, वेशभूषा में बनावट, आचार-व्यवहार में बनावट! यही आज की सभ्यता का मुख्य स्वरूप है।

और तब मालती के लिए एक कुत्सा, एक कालिमा और वितृष्णा उसके भीतर फैल गयी। वह कुछ बोला नहीं। मालती ने भी कोई प्रश्न नहीं किया।

रेणु की ओर देखकर रञ्जन ने मालती की ओर देखा। जैसे वह पूछ रहा हो कि, ये कैसी बुआ हैं, जो पूछती हैं कि बुआ कहलाओगी? हफ़्तों के निराहार और भयानक ज्वर के कारण वह अत्यधिक दुर्बल हो गया था। स्वर भी उसका पहले की अपेक्षा कुछ मन्द पड़ गया था।

रेणु बोली—ये कौन हैं रञ्जन?

रञ्जन ने सिर जरासा हिला दिया।

रेणु कहने लगी—ये तुम्हारे बाबू के साथ-साथ जहाँ-तहाँ लेक्चर देती घूमती हैं। नेता बनने जा रही हैं। लेकिन नेत्री कहना ठीक होगा, क्यों? (मालती की ओर देखती हुई थोड़ी मुसकराहट झलकाकर) इनके पास मोटर है। मोटर पर ही ये यहाँ आयी हैं।

उसके कथन में अरुचि स्पष्ट थी।

मालती मौन न रह सकी। बोली—भाभी, तुम यह सब क्या कह रही हो!

रेणु ने कहा—मुझको भाभी ही कहोगी मालती? भाभी कहने की जो एक गुरुता होती है, क्या तुम उसको निभाने को तत्पर हो? अभी तुमने कहा था—रञ्जन से मुझे बुआ कहलाओगी? जानती हो, इस प्रश्न के द्वारा तुमने अपनी भाभी को कहाँ ले जाकर पटक दिया है?

मालती ने देखा, रेणु का वह मुख, जो सदा विकसित रहा करता था, आज कुछ विकृत-सा हो रहा है। जैसे चिनगारियाँ उससे निकल रही हों। कपोल तो एकदम से लाल हो ही गये हैं; पर इस तरह भौंह चढ़ा लेने का अर्थ क्या है! किन्तु उसके मन में आया, उसे इस तरह सोचने और उत्तर देने को विवश तो उसी ने किया है। अपने मन का पाप तो वह स्वयं,

सहज-स्वभाव से, विना कुछ सोचे-समझे, अपनी बातचीत से व्यक्त कर चुकी है। उसके मन में विकार की लहरें—आड़ी और तिरछी—जो फैली हुई हैं, उनको वह मिटा कहाँ सकी है! सारा दोष तो उसी का है।

वह बोली—इस समय तुम कुछ अस्थिर हो भाभी। जान पड़ता है, भाईजी से कुछ कहा-सुनी हो गयी है। खाना तो खाया है न?

किन्तु रेणु उपस्थित विषय से टस-से-मस नहीं हुई। बोली—विषयान्तर मत करो और इस तरह भागो भी मत। पहले यह तै कर लो कि आज से मेरे साथ तुम्हारा क्या नाता चलेगा।

रेणु की वात सुनकर पहले तो मालती कुछ अस्तव्यस्त हो उठी; किन्तु फिर सजग होकर बोली—मैं इन रिश्तों की सीमाओं से परिचित नहीं हूँ भाभी। मेरी इन पर कोई विशेष आस्था भी नहीं है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ, एक साथी का ही सम्वन्ध मेरी समझ में आता है। साथी उमर में छोटा-बड़ा भी हो सकता है और अवस्था को लेकर उसके सम्वन्ध भी उसी के अनुरूप अलग-अलग हो सकते हैं।—अलग होकर भी वे अपने-आप में पूर्ण हो सकते हैं। किन्तु समाज का निर्माण हमारे यहाँ जिस ढंग पर हुआ है, उसमें रिश्ते भी अपनी-अपनी जगह सार्थक हैं। समाज के साथ रहकर उन्हें अस्वीकार कोई कैसे करेगा। रह गया 'बुआ' शब्द पर आपत्ति करने की वात। सो यह मेरी एक सनक ही कह लीजिये कि मुझे ऐसा जान पड़ा कि बुआ तो बुड्ढी होती है। जो बुड्ढी नहीं है वह कैसी बुआ! और जब मेरे भीतर इस शब्द के प्रति ऐसी मान्यता छिपी थी—तव मेरा अनायास उस पर आपत्ति कर बैठना कोई अनुचित तो था नहीं। मैं नहीं जानती कि तुम इसका ऐसा विद्रूप खड़ा करोगी। मुझे यह भी गुमान नहीं था कि निष्कर्ष में तुम मुझे अपने लिए भाभी कहने के अधिकार से भी च्युत कर बैठोगी। लेकिन इस शब्द के प्रति मेरी जो भावना है, वह मेरी अपनी है। जहाँ तक रिश्ते का सम्वन्ध है, मैं उससे कैसे इनकार कर सकती हूँ। भूल मुझसे हुई है और मुझे उसके लिए खेद है।

रेणु का भ्रम दूर हो गया। वह बोली—मैं माफ़ी चाहती हूँ। व्यर्थ

में ही मैंने तुम्हारा जी दुखाया।···किन्तु इस शब्द में वृद्धता का भाव तुम मानती हो, यह भी .खूब है !

अब उसके मुख पर मन्द मुसकराहट आ गयी। वह बोली—रञ्जन, यह तेरी बुढ़िया बुआ है।

रञ्जन ने कहा—हूँ···। और उसने ऐसा मुँह बनाया कि मालती मुग्ध हो उठी। बोली—वाह !

क्षण भर बाद—

"अच्छा, अब बोलो भाभी" उत्सुकता से मालती ने पूछा—आज तुम इतनी गम्भीर क्यों थीं उस समय ? और उस समय ही क्यों, इस समय भी तुम्हारी यह हँसी कृत्रिम-सी ही जान पड़ती है; क्योंकि थोड़ी देर भी मुसकान टिक नहीं पाती। आज मैं यह सब क्यों देख रही हूँ ?

रेणु बोली—मैं क्या बतलाऊँ; अपने भाईजी से ही क्यों नहीं पूछ लिया !

"क्यों, उनसे क्यों पूँछूँ ? उनको तो मैंने इतना उदास कभी पाया नहीं।"

"आफ़िस में होंगे। देख न आओ ? कई दिनों से मिली भी नहीं हो।"

"मुझसे तो नाराज़ नहीं हो न ?"

"नाराज़ मैं किसी से नहीं होती। अपनी बात दूसरी है। अपने से नाराज होने में मुझे अच्छा भी बहुत लगता है।"

"यह अपने से नाराज़ होना भी तुम्हारा .खूब है !···अच्छा, तो यही बतलाओ कि अपने से क्यों नाराज़ हो ?"

"पूछकर क्या करोगी ?

"बतलाने में कोई संकोच है क्या ?"

"पूछने और जान लेने में कोई बड़ी .खुशी होने की सम्भावना है क्या ?

"जाने दो। तुम तो पंजे लड़ा रही हो।"

"और तुम मेरी अँगुलियाँ मरोड़ देना चाहती हो। फिर हाथ धर

लोगो। नरम कलाई मेरी; कहीं टूट जाय तो!"

"बड़ी नटखट हो। मैं तो तुम्हें बहुत भोली समझती थी।"

"अब?"

"अब देखती हूँ, तुम्हारे अन्दर तीव्रता और संघर्ष भी यथेष्ट मात्रा में है।"

"जो भोले होते हैं, क्या वे जीना नहीं जानते? और संघर्ष भी क्या अकारण होते हैं?"

"प्रेम में संघर्ष की जगह नहीं है। प्रेम तो त्याग चाहता है। संघर्ष त्याग के प्रति चैलेंज है।"

"भूलती हो मालती। संघर्ष प्रेम की एक गली है। परन्तु गली न कहकर उसे सड़क कहना ही ठीक होगा। उस रास्ते से गुज़रना अपने आपको कसना है। जो कसा नहीं गया, उसकी कीमत क्या?"

"क़ीमत तो अपने दिल के अन्दर रहती है। वही असली मूल्यांकन है और तृप्ति। संघर्ष उसको छू तो पाता नहीं, कसेगा क्या!"

"तुम्हारे भाईजी आज मुझको अपमानित करके गये हैं? मैं साग छौंक रही थी। चूल्हा जल नहीं रहा था। मुझे तकलीफ़ में देखकर बोले—लोचन को सिखा लो न। इस तरह तकलीफ़ क्यों उठाती हो? वे जानते हैं, मैं लोचन के हाथ का बना खाना नहीं खा सकती। इस विषय में काफ़ी बहस हो चुकी है। मैं कह चुकी हूँ, तुम बाहर चाहे जहाँ जो चाहो करो और खाओ। पर यह अन्तःपुर है। इसकी एक मर्यादा है और उसका पालन यहाँ तुमको भी करना होगा। मैं किसी कहार की बनायी रोटी नहीं खा सकती। भीतर और बाहर के सम्बन्ध में तुम भेद मानते हो, मानकर चलते भी हो। मैं नहीं मानती; मायके जाऊँगी, तो मुझसे झूठ न बोला जायगा। मैं जब कहूँगी कि हम लोग तो कहार की बनायी रोटी खा लेते हैं, तो माँ और भाभियाँ मुझे चौके के अन्दर भी न आने देंगी। बोलो, मैं क्या करूँ? मुझे झुँझलाहट हुई। मैं कह बैठी, 'जाओ, अपना काम देखो। मेरी तकलीफ़ों की ऐसी बहुत चिन्ता न

है तुम्हें, जो इस तरह की बातें करते हो'। इस पर बिगड़ उठे। पानी भरा लोटा चूल्हे में उँडेल दिया और मालूम नहीं क्या-क्या बकते रहे। अपने को कोसी भी। मैं तुमसे पूछती हूँ, मेरे ऊपर जो यह क्रोध दिखा गये हैं, इसे मैं क्या समझूँ? क्या इतने से मान लूँ कि छुट्टी हो गयी? क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि अब तक पान भी उन्होंने न खाया होगा! मैं भी निर्जल बैठी हूँ। इस तनाव में कहीं कोई ढील तुम्हें देख पड़ती है? कहीं इसमें सिकुड़न भी है क्या? तो भी क्या मैं भूल जाऊँ कि यह है सब मेरे प्यार के नाम पर ही। उन्हें गवारा नहीं हुआ, इतना मेरा कहना भी कि मेरी तकलीफ़ों की ऐसी बहुत परवा न है तुम्हें!

मालती ने सब सुना। एक-एक शब्द वह जैसे पीती चली गयी। उसे पता चला कि पहली भेंट में इन लोगों के परस्पर व्यवहारों के सम्बन्ध में उसने जो राय कायम की थी, वह कितनी ग़लत थी। उसे बोध हुआ कि शर्म्माजी भी कभी-कभी कितने क्रुद्ध हो जाते हैं। यहाँ तक कि संतुलन खो बैठते हैं। और उसे यह भी प्रतीत हुआ कि इन लोगों में प्रेम की वह ऊँचाई नहीं है, जहाँ एक सदा दूसरे के आगे समर्पित रहता है। ये आपस में लड़ते हैं, क्योंकि मिल नहीं पाते, गुथ नहीं पाते! और वे फिर जुड़ते भी हैं; क्योंकि चारा नहीं है।—क्योंकि समाज और उसके संगठन को तोड़ नहीं सकते।—क्योंकि विवाहित हैं और विच्छेद में समाज के आगे कटु आलोचना के पात्र बनते हैं। मानों इनके आगे आलोचना के पात्र बनने का जो भय है, जैसे वह जीवन के नवनिर्माण, नवप्रयोग और उसकी नवदृष्टि की अपेक्षा कहीं गुरुतर है। उनके अन्दर एक कायरता भरी हुई है। वे उसी सड़क पर चले जा रहे हैं, जिसमें काँटे बिछ गये हैं, कंकड़-पत्थर और खड्ड जहाँ-तहाँ पड़ गये हैं और जिसके इर्द-गिर्द इतने सघन वन हैं कि हिंसक जन्तुओं का शिकार बन जाना एक साधारण बात है। वे नवपथ न स्वयं खोजने को तैयार हैं, न मालूम हो जाने पर उसे अपनाने को तत्पर। उसके मन में आया कि वह कह दे, यह प्रेम नहीं है। प्रेम में शतरंज की सी चालें नहीं चलनी पड़तीं। उसकी गोटें सभी एक-सी हैं। छोटी गोट भी

वहाँ उससे अलग नहीं है, जो बड़ी है। हार वहाँ जीत की बहन है। दोनों एक साथ बैठकर एक दूसरे को छेड़ती, गुदगुदाती, मुसकाती और झेंप मिटाती हुई खाना खाती हैं। वहाँ ऐसा नहीं होता कि समझौता करने की कहीं गुंजाइश ही नहीं है, तो भी कर रहे हैं। यह तो चलना नहीं है। यह तो घसिटना है। गति नहीं, यह तो स्पष्ट दुर्गति है। किन्तु वह इस विषय में कुछ बोली नहीं। वरन इसके विपरीत जा पड़ी। बोली—मैं खाना बनाऊँ भाभी तुम खाओगी न ?

रेणु स्तम्भित हो उठी। उसे विश्वास नहीं हुआ कि मालती यह प्रस्ताव सच्चे हृदय से कर रही है।

मालती ने फिर पूछा—बोलो भाभी ?

रेणु बोली—मुझे लज्जित मत करो मालती।

और मालती ने देखा, रेणु की आँखों से आँसू ढुलक रहे हैं !

तब मालती रेणु के पास जाकर अपने रूमाल से उसके आँसू पोछने लगी। बोली—रोओ मत भाभी।

रेणु की सिसकियाँ उभरने लगीं।

इसी क्षण मालती को अनुभव हुआ, रेणु का मस्तक उत्तप्त हो रहा है। यकायक वह चौंक पड़ी। बोली—अरे, तुमको तो ज्वर आ गया है।

इसी समय लोचन ने आकर कहा—बाबूजी ने कहा है, इस समय वह आ नहीं सकते। बड़े आवश्यक काम में लगे हैं। और कहा है कि बहूजी से कहना, खाना खा लें। मैं आज ज़रा देर से आऊँगा। मेरे आने तक अगर वह इन्तज़ार करेंगी और खाना नहीं खायेंगी, तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

तेरह

जो लोग विचारों की दृढ़ता और कट्टरता के कारण भिन्न मत के साथी और प्रेमी के समक्ष समझौता करने के लिए कभी झुकते नहीं, वे अपने कार्यक्षेत्र में चाहे जितने सफल हों और यश भी उन्हें चाहे जितना मिल जाय, किन्तु हृदयदान की दृष्टि से वे अत्यन्त कठोर और निर्मम होते हैं। यही कारण है कि आँधियों और संकटों से खेलनेवाले वीर पुरुष सुन्दरियों की श्रद्धा-भक्ति ही प्रेम की अपेक्षा अधिक पाते हैं। प्रेम तो त्याग और बलिदान चाहता है। किन्तु अपने सिद्धान्तों पर अचल और दृढ़ रहने के कारण वे प्रेम न पाकर पाते हैं उनका स्वप्न। इसीलिए बहुधा आदर्श पत्नी प्राप्त करके भी हृदयदान की दिशा से विमुख रहकर लोग अपने गार्हस्थ्य जीवन के स्वर्गीय शान्ति और सुख से वंचित रह जाते हैं।

हमारे देश में स्त्री का संसार प्रायः पुरुष से भिन्न होता है। व्यस्तता और खीझ के कारण प्रायः पुरुष स्त्री को अपनी उलझनों, ग्रंथियों और असुविधाओं का परिचय तक नहीं देते। इसका परिणाम यह होता है कि स्त्री उनसे दूर हो जाती है।

कमरे में बिजली का प्रकाश फैला हुआ था। खिड़की का एक किवाड़ खुला था, दूसरा बन्द। एक काली बिल्ली चारपायी के नीचे दूध की कटोरी में मुँह डाले हुए, उसकी तलछट को बड़े इतमीनान से चाट रही थी। प्रायः उसकी लपकती जीभ होठों और मूँछों पर आ जाती और वह अपनी चमकती आँखों से कभी-कभी इधर-उधर देखने लगती। वहीं पास ही शीतलपाटी बिछाये हुए, रेणु चुपचाप लेटी हुई थी। ऊपर से उसने चद्दर डाल ली थी, तकिये पर हाथ के सहारे उसका सिरमात्र टिका हुआ था। रञ्जन उसी ओर करवट लिये चुपचाप लेटा हुआ था। उसकी दृष्टि माँ की ओर थी।

गिरधारी घर पहुँचते ही धड़धड़ाता हुआ रेणु के पास जा रहा था। अपने कमरे के निकट आते ही उसने कहा—आप लोग यहाँ बैठिये।

मैं अभी आया। और रेणु के पास पहुँचते ही गिरधारी ने उसका हाथ थाम लिया। देखा, वास्तव में उसको ज्वर आ गया है।

स्वामी के कर-स्पर्श के साथ ही रेणु उठ बैठी। गिरधारी बोला—मुझे माफ़ कर दो रेणु। आज यह ज्वर तुमको मेरे ही कारण आया है। तुम्हें पता है, हमारा जीवन आज कितने संघर्षों के बीच से गुज़र रहा है। नगर के सार्वजनिक जीवन को जाग्रत, उन्नत और गतिशील रखने का उत्तर-दायित्व बहुत अंशों में मेरे ऊपर रहता है। हम लोग एक आदर्श को लेकर चल रहे हैं। सच पूछो तो हम व्यक्ति नहीं हैं, समाज हैं; क्योंकि उसका प्रतिनिधित्व वहन करते हैं। हमारा प्रत्येक क्षण उसी उद्देश्य की पूर्ति में व्यतीत होना चाहिये। ऐसी दशा में अगर हमी अपने निजी अभावों का रोना रोयें, तो उन लोगों की क्या अवस्था होगी, जिनके लिए हम आदर्श बने हैं! हमको देखकर वे क्या सीखेंगे? हम अपने जीवन से उन्हें क्या सिखला सकेंगे?—उनके लिए हमारा क्या सन्देश होगा? रञ्जन बीमार था, वह अच्छा हो रहा है। उसे अच्छा होना ही चाहिये। किन्तु क्या तुम सोचती हो कि एक रञ्जन ही तुम्हारा बच्चा है! यह विनायक कौन है? और भी हज़ारों विनायक हैं, हमें उनकी ओर भी देखना पड़ता है। वे सब हमसे आशा रखते हैं। हम उनकी आशा को पूर्ण न करें, तो मुँह दिखलाने को कहीं कोई स्थान हमारे लिए बचेगा?

गिरधारी पास खड़ा था और रेणु की आँखों से आँसुओं का झरना झर रहा था। तब शर्म्माजी ने कहा—'रोओ मत रेणु। इस तरह रोना तुम्हारे लिए शोभन नहीं है। उधर विनायक और मालती आये हुए हैं। दो-तीन दिनों के अन्दर मिलों में हड़ताल होने की सम्भावना है। पता नहीं, क्या हो! पत्र और प्रेस किस तरह चल रहे हैं, तुम्हें मालूम ही है। रञ्जन अच्छा हो नहीं पाया था कि तुम भी बीमार हो बैठी। ऐसे समय हमें सोच-समझकर चलना है। अगर हम घबड़ा गये और कहीं कोई ग़लती कर बैठे, तो हम कहीं के न रहेंगे। दोष न तुम्हारा है, न मेरा। शताब्दियों से इन परम्पराओं, रूढ़ियों और संस्कृति के नाम पर

अनेक प्रकार की अबौद्धिक मान्यताओं के शिकार होते आ रहे हैं। हमारे संस्कारों में इतनी अधिक जड़ता भिद गई है कि जीवन को पूर्ण बनाने के सम्बन्ध से कोई भी नवप्रयोग करते हम झिझकते और डरते हैं। नवजीवन, नवनिर्माण और नवचेतना के जो भी मार्ग हमें देख पड़ते हैं, केवल इस विचार से हम उन्हें नहीं अपनाते कि हमसे सम्बन्ध रखने वाला समाज क्या जाने उन्हें स्वीकार करेगा या नहीं। हममें इतना साहस नहीं कि हम अधिकारपूर्वक इतना भी कह सकें कि हमारे विकास का मार्ग वह नहीं, यह है। फिर मेरे कहने का तुमको बुरा भी नहीं मानना चाहिये। तुम्हें पता है कि भावनाओं, विचारों और कार्यक्षेत्र की व्यावहारिक कठिनाइयों के कितने संघर्षों से हम गुजर रहे हैं। ऐसी दशा में यदि हमें कभी क्रोध आ जाय, अथवा हमारे भावों में तीव्रता हो, तो वह सदा क्षम्य होनी चाहिये।

"मैं यह भी मानता हूँ कि सहन करना, ध्यान न देना और क्षमा कर देना परस्पर समान रूप से चलता है। पुरुष-स्त्री हो, चाहे कोई एक दूसरे का साथी हो, आपस में मैत्री तभी तक चलती है, प्रेम और सद्भाव उनमें तभी तक रहते हैं, जब वे एक दूसरे के लिए—कभी इस ओर से, कभी उस ओर से—कुछ त्याग करते हैं। त्याग भी वह वस्तु है, जो प्रेम को स्थिर, दृढ़ और चिरन्तन बनाती है। प्रेम के मार्ग में परस्पर विरोधी तत्व भी सदा कहीं-न-कहीं मिलकर अपने को मूक; समर्पित और संयुक्त बना लेते हैं। मन और बुद्धि के समस्त मोह और आकर्षण वहाँ अपने को उत्सर्ग करने के लिए सदा तत्पर रखते हैं। काय, वचन और मन वहाँ अलग-अलग नहीं होते। न सिद्धान्तों के लिए किसी को अपनी आहुति देनी पड़ती है, न व्यक्तिगत रुचि को प्रधानता देकर एक दूसरे के मार्ग का कंटक बनता है। मैं नित्य देखता हूँ कि तुम गृहस्थी की सीमाओं में अपनी महत्वाकांक्षाओं का जो निरन्तर खून किया करती हो, वह तुम्हारा अपने प्रति बहुत बड़ा अत्याचार है। मैं चाहता हूँ, तुम इस स्थिति से ऊपर उठो। इस मकान के बाहर सड़कों और पार्कों, जलपान-गृहों, सिनेमा-

हाउसों, नदियों और पर्वतों, संग्रहालयों और सार्वजनिक क्षेत्रों में आज का जीवन जिस प्रकार फैला है, तुम उसे एक खुली आँखों से देखो। तुम देखो—और देखो स्पष्ट रूप से—कि आज मनुष्य के विकास की गति कहाँ रुक गयी है। तुम्हें पता तो चले कि हमारे समाज के शरीर में आज कहाँ Septic हो गया है। आज मनुष्य अपने स्वार्थों की पूर्ति में इतना अन्धा हो गया है कि ज्ञान और विवेक, न्याय और सत्य, सेवा और त्याग, भक्ति और श्रद्धा, कर्तव्य और प्रेम का आलोक उसकी आँखों में किसी तरह की ज्योति ही नहीं उत्पन्न करता। नित्य हम लोग अपनी अनिवार्य्य आवश्यकताओं के लिए सिर धुनते हैं; किन्तु कहाँ हैं ऐसे विकारहीन निर्मल हृदय, जिनको हमारी अवस्था पर जरा भी तरस आता हो? बात यह है कि उत्पादन के जितने भी साधन हैं, उन पर प्रभुत्व यहाँ स्थापित है उस समाज का, जो न श्रम का उचित मूल्यांकन करता है, न बौद्धिक प्रयोगों का। पूँजी पर आज व्यक्ति का अधिकार है। और उसका यह अधिकार वंशानुक्रम के रूप में चल रहा है। चाहे जितनी योग्यता और प्रतिभा हममें हो, किन्तु हम सदा बने रहते हैं मोची के मोची। ये सूदखोर महाजन, लगानखोर ज़मींदार, हरामखोर व्यापारी और उनके दलाल, रिश्वतखोर हाकिम और अहलकार, शाब्दिक विवादों के पेशेवर वकील सब-के-सब संगठित रूप से हमारा जो शोषण करते हैं, उसी का तो कुफल हम आज भोग रहे हैं। हमारे अन्दर का सारा असंतोष आज सच पूछो तो आर्थिक असमानता से उत्पन्न हुआ है। अगर हमारी आर्थिक स्थिति अनुकूल होती, तो मालती और तुम में—अनेक दिशाओं में—कोई अन्तर न होता। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहने के लिए तैयार हूँ कि तुम आज अनेक दृष्टियों से उससे आगे होतीं। हमें इन्हीं बाधाओं को समझना और नष्ट करना है। मैं चाहता हूँ, तुम अपने सहयोग से इस महान उद्देश्य की पूर्ति में सदा हमारी सहायक रहो। यही हमारे प्रेम की कसौटी है, यही हमारे मन और प्राणों के मिलन का मार्ग।"

गिरधारी जानता है कि यह स्थल लेक्चरबाजी का नहीं है। वह

यह भी जानता है कि कोई सुने, तो यही कहे कि शर्म्माजी सनक गये हैं। किन्तु उसे इस बात का भी तो ज्ञान है कि रेणु की यह सारी अस्वस्थता उसकी मानसिक विकृति ने उत्पन्न की है। जब तक उस मूल मर्माघात को स्पर्श नहीं किया जाता, तब तक स्वस्थ हो नहीं सकती। इसीलिए जान-बूझकर उसने अपना सारा मन्तव्य कुछ अधिक गहराई के साथ व्यक्त कर दिया।

प्रारम्भ में गिरधारी धीरे-धीरे बोल रहा था। किन्तु ज्योंही वह अपने पूरे वेग में आया, त्योंही उसका स्वर ओजस्वी हो उठा। इसका फल यह हुआ कि मालती और विनायक दोनों अपने-अपने स्थानों से उठकर चुपचाप उस कमरे के किनारे किवाड़ों की ओट में आकर खड़े हो गये। ज्यों ही गिरधारी ने अपना कथन समाप्त किया, त्यों ही मालती हँसती हुई भीतर आ गयी। बोली—नमस्ते भाभी।

चद्दर लपेटे हुए रेणु खड़ी हुई। बोली—नमस्ते। और फिर शर्म्माजी की ओर देखती हुई कहने लगी—चलो, खाना खा लो। तुम भी चलो मालती।

किन्तु शर्म्माजी ने कहा—लेकिन विनायक से भी पूछ लेना होगा। सम्भव है, वह भी खाय। उस दशा में बाजार से कुछ मँगा लेना होगा।

मालती झट से उछलकर विनायक के पास दौड़ गयी और क्षण भर में लौट आयी। रेणु अभी रसोईघर में पहुँची ही थी। मालती बोली—वे खाना खाकर आये हैं। लेकिन भाभी, तुम्हारी तबियत जब ठीक नहीं, तब तुम आराम क्यों नहीं करती? मैं भाईजी को परोसकर खिला दूँगी। फिर लोचन से बोली—जाओ आसन बिछाओ और पानी रक्खो चलकर।

रेणु ने मालती का प्रस्ताव सुना, तो एकाएक भीतर-ही-भीतर तिलमिला उठी। सोचने लगी—आज ज़रा-सा ज्वर हो आने पर उनको खाना परोसने का अधिकार यह अपने हाथ में ले रही है। कल कौन जाने आगे बढ़-

कर वह मेरे सौभाग्य का सारा गौरव ही हस्तगत कर ले। किन्तु मालती के प्रति उत्पन्न हुई कुत्सा की ज़रा-भी झलक उसने अपनी चेष्टा में नहीं आने दी। क्योंकि साथ-ही-साथ वह सोचने लगी—क्या हुआ, यदि वह अपना उत्साह प्रकट करती है। फिर उसकी हर बात में मेरे सौभाग्य से स्पर्द्धा ही सन्निहित है, यह सोचना भी तो एक बहुत तुच्छ वृत्ति है।

वह बोली—"अच्छा हाँ, ठीक है। आज तुम्हीं खाना परोसकर उन्हें खिला दो। मैं पास बैठी-बैठी देखूँगी। सचमुच, मुझे बड़ा अच्छा लगेगा।" और अपने इस कथन के साथ उसके शुष्क और म्लान अधरों पर मन्द हास झलक आया।

रेणु खड़ी-खड़ी सब बतलाती रही। बोली—तबियत ठीक थी नहीं। इसीलिए मैंने पूरी ही बना ली। जल्दी में बहुत साधारण-सा खाना बना लिया है। तुमको भला काहे को पसन्द आयेगा।

मालती हर एक चीज़ को थालियों में लगाने लगी।

रेणु बोली—अगर मुझे यह मालूम होता कि तुम फिर आओगी तो मैं कुछ और बना लेती।

मालती ने कहा—यों चाहे न आती, पर ऐसी परिस्थिति में आये बिना मेरा जी नहीं माना।

रेणु को मालती की यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कृतज्ञता से वह बोली—मैं इसके लिए तुम्हारी बहुत ऋणी हूँ।

मालती खाना परोस चुकी थी।

रेणु बोली—बस, अब ठीक है। लेकिन तुमने अपने लिए तो कुछ परोसा ही नहीं। नहीं-नहीं, यह ठीक नहीं है। दो पूरी और रक्खो। तुम्हें मेरी कसम। मेरे ऐसे सौभाग्य कहाँ जो तुमको खिलाने का अवसर पाऊँ।

लोचन इसी समय आ गया। रेणु बोली—ले जाओ और देखो, झट से बाज़ार से पावभर मिठाई ले आना। अच्छा! ये पैसे लो। और जाकेट के जेब से पैसे निकालकर उसने दे दिये।

लोचन ने पैसे जेब में डाल लिये। दोनों थालियाँ लेकर आहिस्ता-आहिस्ता वह शर्म्माजी के कमरे में ले गया।

रेणु बोली—अब चलो। मैं भी चलकर वहीं बैठूँगी।

वह अभी दस कदम चली होगी कि बोल उठी—उस समय मैंने अगर तुमसे कोई अशिष्ट या कटु बात कह दी हो, तो मुझे क्षमा करना। कभी-कभी मैं बहुत ऊटपटाँग बोल जाती हूँ।

मालती अनुभव कर रही थी—कैसा निष्कपट स्वभाव है इनका! क्षण में रुष्ट, क्षण में तुष्ट। और इस समय तो इनके व्यवहार की मृदुलता वास्तव में प्रशंसनीय है। बोली—मैं भी तुम्हें प्रायः अकारण तंग किया करती हूँ भाभी। मुझे अपनी छोटी बहिन समझकर क्षमा कर दिया करो।

चौदह

हिंसा एक पशु-वृत्ति है। मनुष्य में हम कभी उसे वांछनीय नहीं मान सकते। स्वाभाविक होकर भी है वह एक प्रमादजन्य वृत्ति ही। किन्तु प्रतिहिंसा उससे भी भयावह वस्तु है। हिंसा क्षणिक विस्फोट है, तो प्रति-हिंसा उसकी अपेक्षा कहीं अधिक स्थायी। हिंसा जल्दी-से-जल्दी उस पार पहुँचा देती है। किन्तु प्रतिहिंसा का ज्वलन बराबर चलता रहता है। वह ऐसा क्रम है, जो कभी भंग ही नहीं होता। भाव प्रवण व्यक्ति इसके शिकार अधिक होते हैं। वे ऐसी प्रतिज्ञाएँ, आश्वासन और संकल्प प्रकट कर देते हैं, जिनका वे जीवन में निर्वाह कर नहीं पाते। और उसका परिणाम यह होता है कि सम्बन्धित लोग छल, प्रवञ्चना और कपट की काल्पनिक विभी-षिकाओं से आक्रान्त हो-होकर क्षोभ, द्वेष और प्रतिहिंसा का अवलम्ब ग्रहण कर लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में दुर्बल, भीरु और कायर व्यक्ति अपने को छिपाने का जितना प्रयत्न करते हैं, उतना ही अधिक वे प्रकट हो-होकर अप-कीर्ति के भागी होते हैं।

इस स्थिति से मुक्ति प्राप्त करने का एक ही मार्ग है। सत्य और साहस का अवलम्ब।

घर में पहुँचते ही डॉ० ललित का ध्यान सबसे पहले मालती की ओर गया। बोले—हल्लो कॉमरेड मालती, हाऊ डू-यू-डू ?

मालती ने तुरन्त साड़ी ठीक करते हुए उत्तर दिया—"हाऊ डू-यू-डू डॉक्टर ललित ?" किन्तु उसके स्वर की अपरूपता में उत्तर देने की अरुचि और विवशता अप्रकट न रह सकी। वह तुरन्त उठकर आचमन करने लगी।

ललित ने आगे बढ़कर रेणु की ओर देखा। बोले—तबियत आखिर आपने भारी कर ही ली ? कई दिन तक आपको बराबर जगना भी तो पड़ा। आज खाया क्या था ?

और इतना कहकर उन्होंने थर्मामीटर (पारा नीचे उतार कर) मुँह में लगाने के लिए रेणु को दे दिया।

मालती चुपचाप सुनती रही।

शर्माजी बोले—आज इसने खाया कुछ नहीं, उपवास किया है। मेरा खयाल है डाक्टर, अब इसकी तबियत उस समय से अच्छी है, जब मुझे सूचना मिली थी। क्यों मालती ?

मालती जैसे चौंक पड़ीं। बोली—ऐं।...क्या पूछा आपने ?...तबियत तो मेरा खयाल है वैसी ही होगी।

ललित ने कहा—जो हो, लेकिन अच्छा होता, ये आराम करतीं।

वह बोला—इस समय तो दवा कहीं मिलेगी नहीं; क्योंकि समय बहुत हो गया। सबेरे मँगा लीजियेगा। नुस्खा मैं अभी दिये देता हूँ।

और कोई होता तो मालती इस समय इतना कहे बिना कदापि न चूकती कि दिन-भर उन्होंने इतना अधिक आराम किया है, इतना अधिक कि...। लेकिन ललित के वार्तालाप में किसी प्रकार का योग देना उस समय उसकी रुचि के प्रतिकूल हो रहा था।

ललित की दृष्टि बराबर घड़ी की ओर लगी थी। उसने पूछा—रञ्जन तो सो रहा है न ?

शर्म्माजी ने आचमन करने के बाद कहा—चलिये उसको भी देख लीजिये।

ललित ने रेणु से थर्मामीटर लेकर देखा और बतलाया—१०१ है शर्म्माजी। चिन्ता की कोई बात नहीं है। फिर भी ज़रा प्रसन्न रखने की चेष्टा कीजिये। अधिक गम्भीरता संकट का कारण हो सकती है।

ललित को लेकर रेणु रञ्जन के पास जा पहुँची। पीछे-पीछे शर्म्माजी और मालती। ललित एक मिनट तक दूर से ही खड़ा देखता रहा। बोला—"बिल्कुल स्वाभाविक नींद है।"

फिर हाथ देखकर उसने कहा—"नो टेम्परेचर ऐटाल।"

इसके बाद ललित जाने लगा। चलते समय बोला—उस दिन की तुम्हारी स्पीच बहुत सुन्दर थी, मिस मालती।

अन्यमनस्क भाव से मालती ने उत्तर दिया—ख़याल है आपका।

ललित बाबू थोड़ा ठिठके और कुण्ठित भाव से कहने लगे—ख़याल तो रहता ही है मिस मालती। ख़याल से आदमी को मुक्ति कहाँ मिलती है।

मालती ने कुटिल हास के साथ उत्तर दिया—अच्छा तो यह मुक्ति के मार्ग की खोज आपका नवीन प्रयोग है। 'आई-सी। दी अटेम्ट इज़ ग्रेट।'

ललित कुछ अप्रतिभ सा हो गया। फिर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। शर्म्माजी द्वार तक भेजने चले गये। ललित जब चलने लगा तो बोला—शर्म्माजी एक बात कहूँ, अगर आप बुरा न मानें।

शर्म्माजी ने आश्चर्य्य के साथ पूछा—कहिये। बुरा मानने की ऐसी क्या बात है?

ललित ने कहा—इधर कुछ दिनों से मिस मालती के साथ आप की जो आत्मीयता स्थापित हो रही है, उस पर शहर में बड़ी चर्चा है। आपकी प्रतिष्ठा को इससे धक्का पहुँच सकता है।

घर के अन्दर मालती के साथ ललित बाबू की जो बातचीत हुई, वही शर्म्माजी के लिए यथेष्ट चिन्त्य हो रही थी। उस पर ललित ने एक तह

ओर जमा दी। अतएव शर्म्माजी को इस समय उनका यह कथन सर्वथा असह्य हो उठा। इसका एक कारण यह भी था कि वे और सब प्रकार की बातें सुनने को तत्पर थे, किन्तु अपने चरित्र के सम्बन्ध में किसी प्रकार का दोषारोप वे कभी सहन नहीं कर सकते थे। अतएव अपने स्वाभाविक क्षोभ को वे दबा नहीं सके। बोले जो लोग मुझसे परिचित हैं ललित बाबू, वे मुझ पर कभो हँस नहीं सकते। इस कारण नहीं कि मैं आदमी नहीं, देवता हूँ। वरन् इस कारण कि उनका मुँह इतना उज्ज्वल नहीं है कि वह मेरे उपहास से खिल उठें। और जो लोग मुझसे अपरिचित हैं, उनकी टीका-टिप्पणी की मुझे रत्ती-भर भी परवा नहीं है। सूखी हड्डी चबाने की वृत्ति कभी श्वान त्याग नहीं सकता। फिर आप को तो इस तरह की बात करना शोभा भी नहीं देता, ललित बाबू। आपने मनोविज्ञान पढ़ा ही होगा। किन्तु, मैं उसे पढ़ाता रहा हूँ। समझ में आया कि नहीं ?

"मैं इस विषय में आपसे फिर कभी बातें करूँगा।"—ललित ने ऐसे भाव से कहा, जैसे उसने शर्म्माजी की बातें सुनी ही न हों। फिर वह बोला—इस समय आपका चित्त ठिकाने नहीं है।

पर शर्म्माजी ने कह दिया—लेकिन क्षमा कीजियेगा, मुझे इस तरह की बातें सुनने का जरा भी अवकाश नहीं है।

ललित बोला—आप बुरा मान गये। आप पर जो श्रद्धा रखता हूँ उसी से प्रेरित होकर मैंने आपको यह सूचना देना उचित समझा। मैं अगर ऐसा जानता कि···।

शर्म्माजी बात काटकर बीच ही में बोल उठे—आपको शायद पता नहीं हैं, मैं उसका शिक्षक रहा हूँ। इसके सिवा वह मुझे भाई जी कहती है।

ललित ने कहा—मैं माफ़ी चाहता हूँ।

इतना कहकर ललित चलने लगा।

शर्म्माजी ने कहा—'जरा ठहरिये। मैं मालती से कहता हूँ, वह आपको घर पहुँचाती हुई चली जायगी।'—और वे मकान के ऊपर आकर बोले—

मालती, अब तो यहाँ तुम्हारा कोई काम है नहीं। न हो ललित बाबू को उनके मकान पर छोड़ती हुई चली जाओ।

मालती असमंजस में पड़ गयी। वह स्पष्ट रूप से यह नहीं कहना चाहती थी कि ललित के साथ उसकी किसी प्रकार की अनबन है। अनबन की बात कह देना यों साधारणतया बड़ा सरल है, किन्तु वे कारण क्या हैं, जिनसे ऐसी अनबन हुई, मालती इस विषय में मौन रहना ही अधिक आवश्यक समझती थी। किन्तु शर्म्माजी का प्रस्ताव सुनकर वह एकाएक जैसे सन्न रह गयी। वह सोचने लगी—आखिर इनको हो क्या गया! ललित को साथ लेकर मैं उसे उनके घर पर छोड़ती जाऊँ, आखिर इसका अभिप्राय क्या है? जब कि अभी इसी समय की बातचीत में उसके मनोभाव मेरे प्रति बहुत अच्छे नहीं प्रकट हुए। बल्कि यही अधिकाधिक स्पष्ट हुआ है कि इन दोनों के बीच कहीं कोई एक बड़ी खाई है, जो पट नहीं सकती, पूरी नहीं की जा सकती।

किन्तु शर्म्माजी का मन्तव्य यह था कि इन दोनों के सम्बन्धों को इतना कटु न होना चाहिये। हार्दिक एकता अगर दोनों न रख सकें, तो प्रत्यक्ष की यह पृथक्ता तो जितनी जल्दी दूर हो जाय, उतना ही अच्छा। पारस्परिक वैमनस्य सार्वजनिक क्षेत्र में जब साकार हो उठते हैं, तब वे उसके वातावरण को शान्त, स्थिर और पूर्ववत् न रखकर उसे अधिकाधिक दूषित और पंकिल बना डालते हैं।

किन्तु इसी क्षण रेणु ने कह दिया—

आज की रात वह यहीं रहेगी। मेरी तबियत ठीक नहीं है। समय भी बहुत हो गया। खन्ना जी के यहाँ जाकर फ़ोन से इनकी कोठी में माँ जी को इसकी सूचना दे दो और मत्तू से कह दो, गाड़ी ले जाय!

रेणु की बात सुनकर शर्म्माजी को विस्मय हुआ, किन्तु उन्होंने फिर इस पर न किसी तरह की टीका-टिप्पणी करना उचित समझा, न किसी प्रकार का असमंजस ही प्रकट किया।

वे विनायक बाबू से कहने लगे—मैंने आपका बहुत समय लिया।

विनायक ने सहास उत्तर दिया—आप ऐसा न कहें।

तब डॉक्टर ने आश्चर्य्य से सिर उठाकर कह दिया—'आई-सी'। उसने धीरे-से एक निःश्वास लिया, फिर कहा—अच्छा, गुड नाइट।

शर्म्माजी ने उत्तर में नमस्कार किया।

उधर मालती लोचन से कह रही थी—देखो लोचन, यहाँ भाभी की चारपायी पड़ेगी और यहाँ मेरी।

जीवन में पहली बार आज उसके शरीर का लोम-लोम जैसे सिहर रहा था। फ़र्श पर उसके पैर रह-रहकर थिरक उठते थे।

रेणु इसी समय रञ्जन की चारपायी पर एक ओर बैठती हुई कहने लगी—तुमको असुविधा तो यहाँ अवश्य होगी। लेकिन जाने क्या बात है, आज तुमको छोड़ने को मेरा जी किसी तरह राज़ी नहीं हुआ। माँ जी को तो कोई आपत्ति नहीं होगी?

मालती ने उत्तर दिया—वे इतने संकुचित विचार नहीं रखतीं भाभी। तुम कभी मिलोगी, तो उनकी सरलता देखकर चकित हो उठोगी। फिर जब से मैं इस क्षेत्र में आयी हूँ, तब से बड़े भैया का भाव मेरे प्रति बहुत उदार हो गया है। वे प्रायः कहा करते हैं—हम लोग तो कीड़े के कीड़े ही रहे। पर मुझे इस बात का अभिमान है कि हम सात भाई-बहनों में मालती इस योग्य तो हुई कि मेरे वंश का गौरव बढ़े।

रेणु ने आश्चर्य्य से कह दिया—अच्छा!

मालती कहने लगी—लेकिन कितना अच्छा होता कि आज मैं तुमको वायोलिन बजाकर सुनाती।...मैं अभी आयी।

फिर वह दौड़ी-दौड़ी शर्म्माजी के पास जा पहुँची? बोली—मत्तू से कह दीजिये, मेरा वायोलिन भी लेता आवे।

शर्म्माजी उठे। बोले—लो, तुमने फिर तंग करना शुरू कर दिया। कुछ ठहरकर बोले—जाओ न, खन्नाजी के यहाँ ख़ुद चली जाओ। माँ जी से दो बातें कर लोगी, तो उन्हें इतमीनान भी हो जायगा। और वायोलिन ही क्यों, घुँघरू भी क्यों न मँगवा लो!

ऊँचे हाथ जोड़ती हुई ज़रा-सी मुसकराहट होठों पर लाकर मालती बोली—'आप भी ख़ूब हैं।' फिर वह गम्भीर हो गयी और क्षणभर रुककर दरवाज़े तक आकर बोली—विनायक बाबू, ज़रा आप मेरे साथ चले चलें। दो मिनट में मैं आपको खाली कर दूँगी। फिर आप गाड़ी पर चले जाइयेगा।

विनायक जैसे नींद से चौंक पड़ा। सम्हलता हुआ वह बोला—अच्छा, चलिये।

विनायक और मालती जब बाहर चल दिये, तो शर्म्माजी कमरे में इधर से उधर टहल रहे थे। एक बार खुली खिड़की से उन्होंने आकाश की ओर देखा, एक बार अपने दस वर्ष के इंलार्जमेंट को और फिर टहलने लगे।

पंद्रह

आनन्द भोग की भावात्मक अनुभूति है। किन्तु भोग इन्द्रिय जन्य है! उसकी भावना, हो सकता है कि इन्द्रियजन्य ही स्थूल अर्थों में सिद्ध हो जाती हो, किन्तु उसका एक पहलू कल्पनात्मक भी है। जब तक कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती, तब तक उसके अभाव में उसकी मोहकता एक विराट आकर्षण ज्योतित रखती है। किन्तु जो प्राप्त तो नहीं हुआ, पर हो सकने के सर्वथा निकट है, उसके त्याग का भी एक आनन्द होता है। अगम और असीम।

मनस्तत्ववेत्ता फ्रॉयड के अनुयायी मानते हैं कि आकर्षण का विस्फोट भी अतृप्ति से ही होता है। किन्तु यह एकांगी दृष्टिकोण है। एक ओर सौन्दर्य्य जब असीम हो जाता है और दूसरी ओर वासना की भूख भी मर नहीं जाती, तब भी मन में एक अहंकार शेष रह ही जाता है। वह है त्याग। उसमें आनन्द की चरम अनुभूति होती है। कविता की भाषा में कहना चाहें तो कह सकते हैं—त्याग भोग की असीम सीमा है।

घोर अँधेरी रात है। पानी बरसना अभी-अभी बन्द हुआ है। सड़क का कोलाहल शान्त है। मनुष्य की सारी व्यस्तता क्षुण्ण हो गयी है। मिलों और फ़ैक्टरियों की क्रियाशीलता विश्राम का अवकाश ग्रहण कर चुकी है। रेल की सीटी का स्वर जब कभी रात्रि की नीरवता भंग कर देता है, तो प्रतीत होता है, मानो और तो सब कुछ सो गया है, केवल मनुष्य का आगे बढ़ते जाने का प्रयत्न जाग्रत है।

विनायक को गये देर हुई। रसोईघर के निकट की दालान में चारपाई डाले लोचन अभी सोया है। शर्म्माजी अभी तक मार्क्स की 'डास कैपिटल' नामक पुस्तक पढ़ रहे थे। अब उसे पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखें कभी-कभी झपक जाती हैं। रेणु को शपथ देकर बड़ी कठिनता से मालती ने गिलास-भर कुनकुना दूध पिलाया है। उसने आज बड़ी हौंस से उसे वायोलिन सुनाया था। रेणु ने उसकी अँगुलियाँ चूम ली थीं। पर वह इस समय रञ्जन के ऊपर पंखा झलती हुई मालती से आन्तरिक जीवन-चर्चा कर रही है।

"क्यों मालती?" उसने सहज भाव से पूछा—जब ये तुमको पढ़ाने आते थे, तब भी तुम इनके साथ कभी-कभी कोठी से बाहर जाती थीं?

"कहाँ!" मालती ने जैसे सारे अतीत को स्मृति-पट पर लाकर उत्तर दिया—एक-आध बार सिनेमा देखने के लिए मैंने जो कभी निमंत्रित भी किया, तो सदा टाल देते रहे। एक ही निश्चित उत्तर रहा करता था—मुझे अवकाश नहीं है।

रेणु को ख़याल आ गया, एक बार उन्होंने बतलाया था—मालती बैडमिंटन के खेल में बहुत दिलचस्पी रखती है। तब एक कल्पना, एक अनुमान, उसके अन्तर को प्रेरित करने लगा। आज उस कल्पना के प्रति उसके मन में किसी प्रकार का अनुताप नहीं, विकार नहीं; यहाँ तक कि दुर्निवार क्षोभ भी नहीं।

धीरे से उसने पूछा—बैडमिंटन तो शायद कभी-कभी साथ खेलते थे।

मालती सुनकर जैसे सन्न रह गयी। एक बार उसके मन में आया—साफ़ इनकार क्यों न कर दे? किन्तु इस क्षण रेणु से कुछ भी छिपाना उसे स्वीकार नहीं हुआ। बोली—हाँ, शायद एक-आध बार मेरे बहुत ज़िद करने पर खेले थे। किन्तु वह स्मृति भी बड़ी अजीब है भाभी। याद आने पर दुःख होता है।

उत्सुकता और आश्चर्य्य के साथ रेणु ने पूछा—दुःख की भला क्या बात हो सकती है इसमें!

"बिल्कुल तुम्हारे ही जैसे मृदुल और निष्कपट स्वभाव की मेरी एक भाभी थीं। बड़ी हँसोड़, बड़ी ज़िन्दादिल। वे अकसर कहा करती थीं—तुम्हारे मास्टर साहब बड़े विचित्र हैं। संकोच त्याग कर बातें करना तो दूर, मेरी बात का उत्तर देने तक में शरमाते हैं। बिल्कुल लड़की हैं वे।

एक दिन उन्होंने कहा—बाबूजी (मेरे पिता) आज घर नहीं हैं। फाटक पर माली बिठा दो, जिसमें कोई बाहरी आदमी अन्दर आ न सके। बहुत दिनों से बैडमिंटन नहीं खेला है। आज मास्टर साहब के साथ खेलना चाहती हूँ। मैंने भाईजी को बहुत समझाया, इसमें आपत्ति होने का पक्ष तो हमारा है। आपको क्यों हो? पर वे बराबर इनकार ही करते रहे। इस पर उन भाभी को ज़िद हो गयी। बोलीं—तब फिर मैं ही जाकर कहती हूँ। देखें, कैसे नहीं मानते हैं। उछलती हुई गयीं, मैं भी खड़ी रही। उन्होंने कहा—मास्टर साहब, बुरा न मानें तो एक बात कहूँ।

भाईजी बोले—कहिये।

उन्होंने कहा—आप तो लड़की होते, तो ज्यादा अच्छा होता।

भाईजी ने उत्तर दिया—तो भी मैं आपकी बड़ी बहिन होना ही स्वीकार करता! आप अगर मेरे सामने ढिठाई से पेश आतीं, तो मैं आपको डाँट देता। तब भी आप दुरुस्त न होतीं, तो फिर कोई और उपाय काम में लाता!

उन्होंने पूछा—कौन-सा उपाय? भला मैं भी सुनूँ।

भाईजी ने उत्तर दिया—भाईजी को एक चिट्ठी लिख देता कि आजकल

तुम्हारी उर्वशी को रात में नींद नहीं आती है। आ न सको, तो कोई दवा ही भेज दो !

भाभी उनकी इस बात पर निरुत्तर हो गयीं। निराश होकर लौट आयीं। बोलीं—मैं उनसे पार नहीं पा सकती।

अन्त में माँ बीच में पड़ीं। बोलीं—अच्छा गिरधारी बेटा, मैं पास बैठी देखूँगी। अब मेरे कहने से बहू की बात रख दो। तब कहीं राजी हुए। हम दोनों ने जीभर प्रयत्न किया; पर वे उत्तरोत्तर हमको स्तब्ध, पराजित और अभिभूत ही करते गये। भाभी इसके बाद केवल तीन वर्ष और जीवित रहीं। प्रायः भाईजी की प्रशंसा करती हुई वे कहा करती थीं—ऐसा चरित्रवान व्यक्ति मैंने कहीं नहीं देखा।"

रात भीग रही है। इसलिये नहीं कि बूँदाबूँदी हो रही है। इसलिए भी नहीं कि भूमि, वायु और आकाश सब कुछ गीला है; वरन् इसलिये कि वह गहरी हो रही है और इसलिए भी कि वह अपने आप में समा नहीं रही है। वह यौवन की धार पर खड़ी-खड़ी वह रही है। सिर भर उसका सतह के ऊपर है। वह मौन है। कौंधा लपक उठता है तो उसकी अलकों से टपकते बूँद चमक उठते हैं।

रेणु देर तक मौन रही। मालती ने पूछा—सो रही हो भाभी ?

रेणु बोली—नहीं तो। नींद आज मुझे आ नहीं रही। लेकिन तुम सो जाओ। कहीं तुम्हारी तबियत न खराब हो जाय।

मालती ने कहा—मेरी तबियत ही ऐसी है कि खराब नहीं होती।

रेणु ने पूछा—अच्छा मालती, मैंने सुना है, तुमने अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है।

मालती जैसे निःश्वास दवा लेना चाहती है। वह अपने आप से पूछती है, क्या यह अन्तिम निश्चय है ? वह जानती है, उसने प्रायः इस बात का प्रचार तक किया है। कामना पर उसने आवरण डाला है, महत्वाकांक्षा के पर उसने रेशम के डोरों से बाँध रक्खे हैं। ग्रन्थियों को वह खोलना नहीं चाहती। उसका जीवन-विहग पंजों के बल चल रहा है।

अपने आपसे वह पूछती है—क्या वह कभी उड़ेगी ? क्या कभी उसके पर निष्कृति पायेंगे ? निरभ्र अम्बर में क्या वह कभी वह सकेगी ? जगत में फैले जीवन को क्या वह कभी देखेगी ? उसकी आँखों पर यह पट्टी कैसी बँधी है ! यह कैसा अँधेरा है कि कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता ! कौन है जो पट्टी खोलकर कहेगा कि देखो, यह जगत है, यह जीवन है ? किसकी अँगुलियाँ ऐसी सदय और अन्तर्यामी हैं !

मालती बोली—हाँ भाभी, विवाह के प्रति मेरी आस्था नहीं है।

"क्यों ?"

"क्योंकि विवाह जीवन के स्वतन्त्र प्रवाह में एक अवरोध है।"

"विराम को तुम गति में कहीं जगह नहीं देना चाहतीं ?"

"नहीं ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि जीवन स्थिर नहीं है। वह वह रहा है। जीवन का नाम है वहना। विवाह उसे एक जगह रोक रखता है। मैं रुकना नहीं चाहती। रोक का अर्थ है मृत्यु।"

"तो इसका मतलब यह है कि" रेणु वितृष्ण होकर पूछ बैठी—जीवन को तुम एक प्रयोगशाला मानती हो। लेकिन तुम्हें पता है कि कितने आविष्कारकों ने आँखें खो दी हैं, जीवन खो दिया है। प्रकृति के आगे बुद्धि और विवेक ने अपने को शून्य—खोखला—पाया है।

"पता है भाभी, सब कुछ पता है।" मालती कहती ही चली गयी—किन्तु शून्य का भी अर्थ है, रिक्तता भी जीवन में सन्निहित एक तत्व है। उसने आगे चलकर अपने को पूर्ण किया है। आविष्कारकों ने अपने दृष्टि को खोकर भी जनता को नवदृष्टि दी है। मृत्यु को आलिंगन करके भी उन्होंने जीवन को अमरता प्राप्त की है। उनकी साधना और संलग्नता व्यर्थ नहीं गयी। संसार और समाज के नीति-विधायकों ने उनके जीवन-काल में भले ही तिरस्कार की निधियाँ लुटायी हों, किन्तु काल के अनन्त पथ में, आगे चलकर, न ज्ञान की सीमाएँ स्थिर रहीं, न मनुष्य के स्वतन्त्र

प्रयोगों ने घुटने टेके। विवाह ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाया है, उसने परिवार की सृष्टि की है। किन्तु फिर कुटुम्ब ने क्या किया है?

मालती रुकी ही थी कि रेणु बोली—रुको नहीं, कहती जाओ। मैं बड़े ध्यान से सुन रही हूँ। मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है।

मालती उत्साहित हो उठी। बोली—कुटुम्ब ने मनुष्य को खरीद लिया। उसने उसे पूँजी का संचय सिखाया। फिर आगे चलकर उसी पूँजी ने आज एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के आगे विवश, पंगु, हीन, दयनीय और पथ का भिक्षुक बनाकर छोड़ दिया है।

रेणु अवसन्न हो उठी। क्षणभर मौन रहकर फिर उसने पूछा तब तो यह एकपत्नीव्रत तथा पातिव्रतधर्म वास्तव में तुमको बिलकुल व्यर्थ जान पड़ता होगा।

"विशेष अवस्था और अपवादों को छोड़कर—" मालती ने पलँग पर लेटे रहने की दशा से उठकर कहा—वास्तव में यह एकपत्नीव्रत और पातिव्रतधर्म भी एक प्रकार की कट्टरता ही है। इसमें जीवन ने अपने को रास्ते में लाकर एक जगह छोड़ दिया है। कल्पना और बुद्धि का स्वतन्त्र चिन्तन और पदक्षेप इसने अवरुद्ध कर रक्खा है। केवल अपनी ही संतान को मनुष्य ने त्याग, प्रेम और समर्पण की केन्द्र-भूमि मान लिया है। मनुष्य के बीच भेदाभेद की बीभत्स क्षुद्रता इसी की देन है।

अब रात बिल्कुल भीग गयी है। केवल झिल्ली का स्वर सुनाई देता है। आकाश मूक है, वायु भी मूक है। चेतना के पलक मूक हैं। मनुष्य का क्लांत मन भी मूक है। लेकिन गति मूक नहीं है। उपचेतना के पंख खुले हैं। मनुष्य का अन्तर्मुख खुला हुआ है। कल्पनाएँ कल्लोल कर रही हैं। मनुष्य की कांक्षा अब वन्दिनी नहीं रह गयी। समाज के बन्धन टूट गये हैं। नीति का आतंक छिन्न-भिन्न हो गया है। मनुष्य ने त्राण पाया है।

रेणु की आँखें झपकी ले रही हैं। मालती अपनी बात कह चुकी, पर किसी ने हाँ-या-ना नहीं की। कोई प्रश्न अब नहीं उठा। जीवन की

स्वच्छन्द गति में मानों, जिज्ञासा, कुतूहल, उत्सुकता और प्रश्न भी समाहित हो गये हैं।

मालती बोली—भाभी ?

लो, उत्तर की सत्ता भी निष्पन्न हो चली है। मालती का मन स्थिर नहीं है। वह उठना चाहती है। उसके भीतर एक कोलाहल उठ रहा है। क्या वह भी अब सो जाय ? आज की यह भीगी रात उसके लिए सोने की है। सोने की होकर भी, है जगने की ही! तो सोना यहाँ जगना है।

मालती धीरे से उठी। चारपायी का शब्द कहीं न कुछ कह उठे। धीरे, और धीरे। चुपचाप। लो, चारपायी भी चुप हो रही। मालती उठी। पैरों में शब्दों के रंग (झंकार) वाली चीज कहाँ से आयी! तलवे हैं कि पल्लव ?—न, एक शब्द तक यहाँ मृत्यु है। चोरी, छल, कपट, प्रवञ्चना ?—न, जहाँ राग है, वहाँ द्वेष कहाँ ?—कैसी प्रवंचना ? यहाँ सब अपना है।

"सपना ?"

"नहीं प्रत्यक्ष।"

"आगे बढ़ना ?"

"प्रमाद है।"

"प्रमाद भी जीवन में एक स्थान पर गति है।"

"ह्रासमूलक।"

"कौन कह सकता है ? भ्रमित, विह्वल और पराभूत ह्रास भी विकास का पूर्वाभास होता है।"

"और भाभी ?"

"भाभी सोती हैं, भाभी को सोना है। वे मालती तो नहीं हैं। भाभी माँ हैं, मालती तो लता है। भाभी सफल है।—और मालती ?"

मालती आगे बढ़ रही है।

भड़-भड़-भड़ !!!

अरे, यह क्या ?

यह बिल्ली है। मालती दो पग पीछे हट आयी। उसने भाभी की ओर भी देखा।

इतना भय! इतना!! छिः!!!

मालती बढ़ी, फिर बढ़ी और बढ़ती चली गयी!

× × ×

यह छाया कैसी देख पड़ रही है? कोई खड़ा है क्या?

हाँ, खड़ा है।

लेकिन यह है कौन?

कैसे जान पड़े कौन है!

छाया ग़ायब हो गयी। या हो सकता है कि पीछे हट गयी हो।

इसी समय कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई साँस ले रहा हो। स्वर की निकटता और छाया का गताभास। विचित्र बात है। छाया का अभी तक आकर ही देखा था। आज उसमें शब्द भी फूटने लगा। और लो, उसमें हलचल भी हो रही है। सीना उभर रहा है और सिमट रहा है। यह आया, फिर उसी साँस का स्वर। आखिर कितनी देर तक चुप रहा जाय और क्यों? तब वे बोल उठे—कौन?

छाया झट से निकट आकर बहुत धीरे से बोली—मैं हूँ।

"कौन? मालती?"

"हाँ, मैं···।"

"मुझे विश्वास नहीं होता।"

"न हो। लेकिन मैं ही हूँ।"

"क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ।"

"नहीं, मैं प्रत्यक्ष हूँ।"

वे उठ बैठे और कुछ टटोलने लगे।

मालती ज़रा भी अस्त-व्यस्त नहीं हुई। बोली—'आप सोये नहीं!'

और उसे जान पड़ा कि उसके हाथ को कोई खींच रहा है। वह पलँग पर आ गयी। हाथ छूट गये।

शर्म्माजी ने उत्तर दिया—हाँ, नहीं सोया। नींद नहीं आयी।

मालती ने पूछा—क्यों?

स्पर्श मात्र से गिरधारी कुछ विकंपित-सा हो उठा। वह सोचने लगा, अपने जीवन-लक्ष्य की विडम्बना ही क्या उसे देखनी होगी? जिस उद्देश्य के लिए उसका जीवन बना है, क्या यह नारी अपनी एक ही चिनगारी से उसे भस्म कर डालेगी?

वह बोला—कह नहीं सकता, क्यों नहीं आयी।

तब मालती कुछ अस्त-व्यस्त हुई। सोचने लगी—ये इतना भी स्वीकार नहीं करना चाहते कि···। उसके भीतर एक आग्नेय अहंकार सुलग उठा।

फिर बोली—मैं बस यही देखने आयी थी। अब जाती हूँ।

वह उठने लगी।

गिरधारी बोला—जाओगी?

मालती ने उत्तर दिया—हाँ, चली जाऊँगी। बिना आये रह नहीं सकी। अब गये बिना भी रह न सकूँगी।

गि०—क्यों?

मालती अब ठहरना नहीं चाहती। बस चलता तो वह भाग खड़ी होती। तब वह अपने विरक्तिभाव को दबाती हुई बोली—मैंने ही आपको सोने नहीं दिया। कितनी देर मैं वायोलिन बजाती रही।

गि०—मैंने सुना था।

मा०—अच्छा नहीं लगा?

गि०—कैसे कहूँ।

दोनों चुप हो रहे। मालती ने इसी क्षण एक निःश्वास लिया। वह उठी और बोली—मेरा इस समय यहाँ आना शायद आप कलुषित समझते हैं।

गिरधारी ने उत्तर दिया—समझती तो तुम भी हो थोड़ा बहुत।

मालती बोली—मेरी बात जाने दीजिये। मैं पाप-पुण्य पर विश्वास नहीं करती।

"तो इस समय इस तरह छिपकर आना क्या है?" गिरधारी पूछ बैठा।

"क्योंकि मेरे इस क्षण की यह एक सुविधा है।" मालती ने उत्तर दिया।—"समाज के प्रतिबन्ध जहाँ मनुष्य को सीमित कर देते हैं, वहाँ उसे उन सीमाओं का उल्लंघन कर देना पड़ता है। और उल्लंघन के लिए सुविधा उसका सबसे पहला पद है।"

"मानता हूँ"—गिरधारी ने उत्तर दिया—लेकिन जहाँ सीमाओं का प्रश्न ही नहीं उठता, वहाँ उसके उल्लंघन की बात सोचना मन की अस्वस्थता का ही द्योतक है।

मालती विस्मयाकुल हो उठी। बोली—आप कहते क्या हैं! मुझे विश्वास नहीं होता कि आपके आगे सीमाओं का कोई प्रश्न नहीं है।

गिरधारी गम्भीर हो गया। बोला—विश्वास दिलाने का रिस्क मैं उठा नहीं सकता। मुझे भय है कि उस दशा में मेरे निकट आने की अपेक्षा तुम और दूर हो जाओगी। विश्वास दिलाने की वस्तु है, मैं मानता भी नहीं। अपने आप वह मिलता है, अपने आप ही वह खो जाता है। अपने भीतर से ही वह उमड़ता है और वहीं विलुप्त भी हो जाता है।

"आप कह क्या रहे हैं, मैं समझ नहीं पा रही।"

"मैं अधिक न कहकर इतना ही कह देना चाहता हूँ कि अगर मैं सीमाओं में घिरा होता, तो आज तुम मुझे यहाँ न देख पड़ती! याद है, पहली बार जब तुम मुझे यहाँ छोड़ने आयी थीं, तब मैंने तुमसे क्या कहा था?

-"याद नहीं आता, क्या कहा था? शायद याद रखने योग्य तो कुछ कहा नहीं था?"

"मैंने कहा था कि तुम्हें चाहता हूँ मालती, बहुत अधिक चाहता हूँ। लेकिन मेरी चाह जरा मँहगी ठहरती है। रोम्यां रोलां ने कहा है—"लव इज ए परपीचुअल ऐक्ट आव् फ़ेथ; ह्वैदर गॉड एग्जिस्ट आर नॉट, इज ए स्माल मैटर। वी बिलीव, बिकाज़ वी बिलीव। वी लव, बिकाज़ वी लव। देअर इज़ नो नीड आव् रीज़न्स!"

अब तक कमरे में प्रकाश नहीं था। अँधेरे में ही बातचीत हो रही थी। अतएव गिरधारी उठा और उसने लाइट का स्विच दबा दिया। प्रकाश कमरे भर में फैल गया। वह फैल गया मालती के वेश-विन्यास पर भी। गिरधारी ने लक्ष किया, उस शरीर पर केवल एक रेशमी साड़ी है। ब्लाउज़ और बॉडिस, यहाँ तक कि पेटीकोट तक नहीं है। उसने यह भी लक्ष किया कि वह चुप ज़रूर है; किन्तु उसकी नोकीली आँखें मौन नहीं, लहरें बनाती उसकी कुंचित कुन्तल राशि स्वतः एक अंधकार है। एक तो स्किन-कलर की लहरिया साडी, फिर देह यष्ठि के यौवन सम्भार का विलोल संलाप और श्वास-प्रश्वास का प्रकृत कर्षण और निस्सरण।

लैम्प के पास खड़ा हुआ गिरधारी बोला—जाओ मालती। अब तुम चुपचाप जाकर सो जाओ। मैंने तुमको सार्वजनिक सेवा की ओर उन्मुख करके गलती की है। लेकिन अब उसमें तुम्हें सम्मिलित रखने की गलती न करूँगा। कॉटों का यह पथ तुमसे चला न जायगा। पहले मैं ललित की बातों पर विश्वास न करता था। किन्तु अब मुझे उसकी बताई सारी बातें सर्वथा सत्य जान पड़ती हैं।

मालती दारुण आघात के कारण हतप्रभ हो उठी। थोड़ी देर स्थिर रही, लेकिन जैसे भीतर छटपटा रही हो। फिर एकाएक भ्रूचाप और अधर अस्थिर हो उठे। बोली—क्या कहा था उन्होंने, सच-सच बतलाइये।

गिरधारी कमरे में टहलने लगा। वह सोच रहा था—क्या इसी समय यह प्रसङ्ग छेड़ना ठीक नहीं हुआ!

"बतलाइये न? चुप क्यों हो रहे?" मालती ने इसी समय किंचित उग्र होकर कहा।

गिरधारी को इतना ही ज्ञान है कि ललित के साथ कभी इसकी अत्यन्त घनिष्टता थी। इसके सिवा वह यह सोचता है कि हो-न-हो अन्य लोगों के साथ भी इसका कुछ सम्बन्ध रहा हो। किन्तु कोई निश्चित बात न वह जानता था, न उसकी कोई कल्पना उसके लिए सम्भव थी। तब वह बोला—उसने कहा था—मालती एक ज्वालामुखी है, लावा गन्धक और अग्नि का विस्फोट उसके लिए साँस की एक हलचल मात्र है।

"और वह कह रहा था" कहते-कहते गिरधारी कुछ शिथिल गम्भीर हो रहा था—मालती हहराती यमुना है। तट पर पैर थहाते-थहाते प्रवाह के क्रोड़ में बहा ले जाना उसके लिए पलकों का उन्मीलन मात्र है।

अस्फुट अरुणारे अधरों से कुटिल तथा विकृत हास की रेखायें फूटने लगीं। शब्द तक विस्तृत होने में उसका कण्ठ असहयोग कर रहा था। तब बहुत अधिक जोर लगाने पर वह बोल सकी—और?

"और अन्त में उसने यह भी कहा था।" गिरधारी अविराम बोल उठा—मालती वारुणी है। जैसी कटु, वैसी ही मादक। तरंगों के उद्वेलन मात्र से जीवन के सारे मोहों और आकर्षणों से एक बार जैसे निष्कृति ही मिल जाती है।

इसी समय सहसा रेणु की आँख खुल गयी। दूर से शर्म्माजी की आवाज़ आती जान पड़ी। आशंकाओं और सन्देहों से वह ओत-प्रोत हो उठी। वह उठी और उसने लाइट का स्विच जो दबाया, तो सहसा उसे अपनी दृष्टि पर विश्वास नहीं हुआ। मालती जिस पलँग पर लेटी हुई थी, उस पर उसका ब्लाउज और बॉडिस मात्र पड़ा हुआ था।

एकाएक रेणु अप्रत्याशित सम्भावनाओं से आप्लुत हो उठी। तुरन्त वह स्वामी के कमरे की ओर बढ़ गयी और जब वहाँ पहुँची, तो देखती क्या है, मालती फ़र्श पर अस्त-व्यस्त अचेत पड़ी हुई। उसके सिर के नीचे एक तकिया रक्खी हुई। है शर्म्मा जी उस पर पंखा झल रहे हैं।

सोलह

क्या यथार्थ है क्या मिथ्या, इसकी व्याख्या होती आयी है और सदा होती रहेगी। मनुष्य अपने को पूर्ण बनाने में यत्न शील है और बना रहेगा। समाज में जो सुलभ है उसके लिए आज और कल की अवधि लगाना व्यर्थ है। मनुष्य की वह अपनी सीमा है। किन्तु दुर्लभ है, असीम और असम्भव; न केवल समाज की सामर्थ्य और परिधि की दृष्टि से, वरन् स्वतः अपनी वैयक्तिक मान्यताओं की दृष्टि मे भी, उनकी ओर लपकने, बढ़ने और उन्हें उपचेतना में भी अपने भीत स्थान देने का अर्थ अगर प्रमाद है, अस्वस्थ मन की एक भ्रान्त सृष्टि, तो प्रश्न उठता है कि क्या यह मनुष्य ही एक अस्वस्थ प्राणी है ?

"आज बड़ी देर कर दी बेटा।"

किवाड़ खोलते हुए विनयक ने ज्योंही मकान के अन्दर पैर रक्खा, त्यों ही माँ ने बरामदे में बिछी चारपाई पर लेटे-लेटे कहा।

पानी तो बन्द हो गया था, पर थोड़ी बूँदा-बूँदी अब भी चल रही थी। मकान का आँगन पार करते ही विनायक ने जमीन पर पैर पटक दिये। लालटेन सामने कमरे की देहली के ऊपर रक्खी थी, किन्तु उसकी ज्योति मन्द थी। माँ अब तक उठ चुकी थीं। उन्होंने लालटेन की ज्योति बढ़ा दी। विनायक ने चुपचाप कपड़े उतारे और पैर धोये। तब उसने कहा—हाँ, आज एक जगह अटक ही जाना पड़ा। पहले ही से जाना तै था। सवेरे चलते समय मैं कहते-कहते रह गया। कोई आया तो नहीं था ?

माँ बोलीं—मकान मालिक का आदमी आया था। कहता था—सेठ जी ने कहा है, अगर पहली तारीख को सब रुपया बेबाक न कर दिया, तो चार आदमी भेजकर, सरा सामान सड़क पर फिकवा कर गरदनियाँ देकर तुम लोगों को मकान से निकाल बाहर करूँगा।

भौंहें चढ़ाते हुए पहले विनायक ने कहा—अच्छा, इतनी हिम्मत ! फिर उसकी अदूरदर्शिता प्रकट करते हुए ज़रा से होंठ फैलाकर कहने लगा—हँ-हँ ! लालाजी को अभी पता नहीं है कि कैसा समय आ लगा है। होश ठिकाने आ जायेंगे। अभी से कहना बेकार है।

माँ बोली—पड़ोस में दीनू की माँ कहती थी कि गेहूँ का भाव और चढ़ गया। वह कल लेने गयी थी, सवा सात सेर के भाव से मिला है। एक बात उसने और कही। वह बड़ी बातूनिन है, इसीसे मुझे विश्वास कम होता है। पर सुनकर अचरज मुझे ज़रूर हुआ। शायद तुमने भी सुना हो। वह कहती थी—अँगरेज़ सरकार से जापान देश ने लड़ाई ठान ली है। लोग डर रहे हैं कि कहीं हमारे देश पर भी वह हमला न करे। वे लोग जहाज़ से बम बरसाते हैं, जिससे मकान गिरते, आग लगती और आदमी की जान तक खतरे में पड़ जाती है।

"वह ठीक कहती थी, अम्मा" विनायक ने उत्तर दिया—लेकिन रक्षा का प्रबन्ध अपनी सरकार भी करेगी। चिन्ता करने की ऐसी कोई बात नहीं है। जान पड़ता है, आज भी ग्वाला दूध दे नहीं गया।

माँ ने भीगे हुए कुछ चने विनयक के आगे कटोरी में रख दिये। फिर वह बोली—खली लेता हुआ इधर ही से जा रहा था। मैं दरवाज़े पर बैठी थी। कहता था, आज दूध ज़्यादा उतरा नहीं। शाम को भी जान पड़ता है नहीं उतरा। उसकी गैया का बच्चा बहुत बीमार है।...हाँ, एक चिट्ठी भी आई है। मुझे ख़याल ही भूल रहा था। कमरे में...ताखे पर (खोजती हुई)...वह मिली।

चिट्ठी उसने विनायक के आगे रख दी।

विनायक ने पत्र पढ़ा तो मालूम हुआ, तारिणी ने भेजा है। लिखा है, एक आवश्यकतावश आपको याद कर रही हूँ। किसी दिन आने की कृपा कीजिये।

पत्र पढ़कर उसने एक ओर रख दिया। चने चबाकर जब वह चारपाई पर सोने गया, उसी समय बारह का गज्जर बजा। माँ तब तक सोने लगी

थीं। लालटेन सिर की ओर रखकर उसने एक बार तारिणी का पत्र फिर उठाया। शब्द वही थे, किन्तु उनके अक्षरों के अन्दर वह बार-बार कुछ खोज रहा था। उसके समक्ष पूर्णिमा के रूप में एक स्वस्थ मांसल नारी खड़ी हो जाती थी। नाक की कील में हीरे का नग और मस्तक पर दमकती हुई लाल रोरी का बूँद। बॉटल कलर की साड़ी इतनी खुशनुमा कि एक बार देखकर देह-दृष्टि की छवि आँखों में बस जाय। बॉडिस से कसा हुआ वक्ष प्रथम दर्शन में ही अपना उन्नत रूप बतला उठता है। बात कम करना, करना भी तो बहुत सोच-समझकर। हास्य की मन्द मधुर बुँदियाँ छोड़ती हुई।...लेकिन यह कितनी गलत बात है कि बेकार, भूखा और नंगा आदमी मन में ऐसी बातें लाता है।

पत्र एक ओर रख देता है। जी में आता है, उसे फाड़ डाले। लेकिन कल उसे वहाँ जाना जो है। पता नहीं, क्यों बुला भेजा है! मुझसे उन्हें काम ही क्या हो सकता है! लेकिन यह पत्र तारिणी ने लिखा है। पूर्णिमा ने इसमें एक शब्द तक नहीं लिखा।—क्यों? पूर्णिमा की याद करने का मतलब?

"हर चीज का मतलब नहीं हुआ करता। चीज अपने आप में खुद एक मतलब है। हाँ, तो पूर्णिमा ने, जान पड़ता है, याद नहीं की। हम ग़रीबों की याद भला कौन करता है! अगर हमारे पास भी सूट होता, अगर मैं बँगला, गाड़ी और फ़ोन रखता होता!—पर मेरी बातों में उसको दिलचस्पी तो कुछ जरूर थी। मैं भी एकाएक इन दोनों प्रमदाओं को दोनों ओर देखकर सहम गया। यहाँ तक कि एक तरह से बनता ही चला गया। फिर भी मुझे उस तरह उनमें बनना भी प्यारा ही लगा? लेकिन यह है कितनी जलील चीज कि मैं इन्हीं लोगों का स्वप्न देखा करता हूँ। पर मैं और करूँ भी क्या। जब और कोई काम नहीं है तो इन लोगों को उड़ाने की बातें भी सोचने से बाज आऊँ? मैं गिरधारी तो हूँ नहीं, जो आदर्श का पुतला है। मेरा बस चले, तो मैं इन्हें एक दिन में साफ़ कर दूँ। प्रत्येक प्रोलेतेरियत को इस विषय में तगड़ा होना चाहिये। गोर्की दादा, तुम

भी यार रहे खूब ! मानता हूँ उस्ताद। 'पतझड़ की वह रात' तुम्हारी खूब रही !

'लेकिन, उस दिन का मेरा वह पार्ट भी खूब रहा। उन्हीं के घर में, उसी के मुँह पर, उसी के विषय में प्यूरिटनिज्म का पक्ष मैंने खूब लिया। मैं असल में उन लोगों पर प्रभाव डालना चाहता था। पान, मिठाई और चाय से अरुचिवाली बात भी खूब जमती है। इन लोगों को उल्लू बनाने के ये अमोघ अस्त्र हैं। जब पूर्णिमा ने खिचड़ी खिलाने का प्रस्ताव किया, तो मुझे ग्राम्य गीत की एक पंक्ति याद आ गयी—

"चलो रंगमहल में हो, खवावौं तोंहि घिउ खिचड़ी !"

"ये फ्रॉयडियन आलोचक जिन्होंने केवल उनका नाम-भर सुन लिया है, कहते हैं—यह मानसिक अस्वस्थता का चिह्न है। पूछो, समाज भर में जहाँ पूँजीवाद ने जहरबात फैला रक्खा है, शिक्षित, स्वस्थ और स्वाभिमानी होने का दंड जहाँ दरिद्रता और बेकारी हो और अपने दुःख-सुख के इजहार का अर्थ हो बगावत, वहाँ का नौजवान नैतिकता का कफ़न सिर में लपेट कर चले ! जहाँ जीवन मृत्यु की अपेक्षा कठिन और दुर्वह हो रहा हो, वहाँ आशा की जाय कि आदमी सदाचारी, सच्चा और आदर्शोन्मुख हो। यह बुद्धि का खोखलापन नहीं तो और क्या है !

"लेकिन मालती को नाराज करना ठीक नहीं हुआ। भविष्य में मैं सावधान रहूँगा। यह लड़की भी वक्त पर काम दे सकती है। लेकिन है पूरी मदिरा। इसकी तो दूर की मित्रता अच्छी ! मेरा जैसा आदमी तो अपने को बेचकर भी उसकी फ़रमाइशों को पूरा नहीं कर सकता। तिसपर अविवाहित ! अरे बाप रे !—करेला और नीम चढ़ा !!

"कल सोचा था—शर्म्माजी से लेख के पारिश्रमिक के लिए कहेंगे। सो वहाँ नकशा ही दूसरा नजर आया। हड़ताल होनेवाली थी, सो भी नहीं हो रही है ! बेकारी का नंगा नाच भी तो कुछ देखने में आये। आदमी आदमी को किस तरह खा रहा है, इसके स्पष्टीकरण की अत्यधिक आवश्यकता है।

फिर करवट बदल लेता है। नींद तो आ नहीं रही। ब्रह्मचारी को यों भी कम आती है। जी में आया, कुछ पढ़ा ही जाय। किन्तु ज्यों ही उठता है, त्योंही देखता क्या है कि लालटेन हाफ़-पास्ट-सिक्स का सिगनल दे रही है।

अब बूँदा-बूँदी बन्द हो गयी है। झिल्ली अलबत्ता गा रही है। पिछवाड़े के खँडहर की झाड़ी में दमकते हुए जुगनू, बीच-बीच में 'अपने में महान' मेढकों के स्वर और लपकती हुई बिजली और रात का सन्नाटा; सब मिलकर एक विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहे हैं।

विनायक का चौंतीस वर्ष का वय, और इसी तरह बीत रहा है। जब उसने, अपना होश सम्हाला, तो देखा कि वह एक हाईस्कूल में पढ़ रहा है। घर में एक नौकर है। पिताजी क़ानूनगो हैं। प्रायः उन्हें दौरे पर रहना होता है। वहाँ देहात में पढ़ना न हो सकने के कारण उसे शहर भेजा गया है। फिर शहर में भी वह रहता अपनी बुआ के यहाँ है, जहाँ सिवा इसके कि दोनों वक्त समय पर उसे बना बनाया—सो भी एक निश्चित क्रम के अनुसार—भोजन मिल जाता हो, और कोई सुविधा उसे प्राप्त नहीं है। महीने में केवल बीस रुपये आते थे। बाद में जब पिता का वेतन बढ़ गया, तो पचीस आने लगे थे। बस, इसी क्रम से उसने इंटर तक पढ़ पाया था। तदनन्तर जब पिता का स्वर्गवास हो गया, तो यह सहायता भी बन्द हो गयी। ट्यूशन के बल पर ही उसने आगे पढ़ना जारी रक्खा। और यही क्रम अब तक चल रहा है। एक बार चालिश रुपये मासिक की जगह उसे अवध के एक ताल्लुक़दार के हाईस्कूल में मिली भी, परन्तु चापलूस हेडमास्टर से मतभेद हो जाने के कारण उसे लात मार कर चला आना पड़ा। पिता कुछ रुपये छोड़ गये थे। माँ की सलाह से उससे यही मकान ले लिया गया था, जिसमें वह रहता है। बहिन के ब्याह के लिए रुपये के अभाव में उसे एक सेठ के यहाँ यह मकान गिरवी रख देना पड़ा। होते-करते ब्याज और मूलधन मिलाकर रुपया इतना बढ़ गया कि दस वर्ष में ही मकान सेठ का हो गया। अब वही सेठ साहब उसे मकान से निकाल देने की चेष्टा कर रहे हैं।

माँ ने कई बार कहा कि बेटा गुजर तो किसी-न-किसी तरह हो ही जायगी, बहू आ जाती तो अच्छा होता। पर विनायक का उत्तर सदा यही रहा है—गरीब का ब्याह और मौत की जिन्दगी।

चार घंटे बाद :

ऐसा जान पड़ता है, जैसे कोई उसके बदन से सटा हुआ चल रहा हो। बहुत सबेरा हो और ठंढी-ठंढी हवा चल रही हो। दोनों कहीं जा रहे हों। कहाँ लिये जा रहा है, दरवाजे से ही पुकारकर वह साथी, कुछ पता नहीं है। विनायक चाहे तो पूछ ले, पर वह यह क्यों पूछे कि वह कहाँ जा रहा है। वह जा रहा है और उसके साथ-साथ, इतना ही यथेष्ट है। गति में तीव्रता है, मन में एक मिठास और नशा। क्या इतना कम है?

लेकिन यह साथी इतना सटकर क्यों चल रहा है कि कन्धे-से-कन्धा छू-छू जाता है?

चुप! साथी से कोई ऐसा प्रश्न करता है।

फिर कानों में कुछ शब्द आते हैं—मैं जानती थी, तुम मेरे साथ चल दोगे और यह भी न पूछोगे कि आखिर जाना कहाँ है।

इसी क्षण विनायक एक चुम्बन लेता हुआ अनुभव करता है—ओः! मदक कितना है।

उत्तर में कानों में कुछ शब्द सुरसुराहट उत्पन्न करते हैं—

"लेकिन ऐसी जल्दी क्या है! उँह, छोड़ो भी! (पुलक भरा यह प्रतिरोध भी कितना प्रिय लग रहा है!) अच्छा, जो गाड़ी छूट गयी, तो?"

और इसी क्षण विनायक की आँख खुल जाती है। हृदय धक्-धक् कर रहा है। किन्तु मन में अब भी एक मादक मिठास भरी है।—अजीब बात है। जो जीवन में कभी सम्भव नहीं, स्वप्न उसी की सम्भावना है। क्या सपने इतने सुहावने होते हैं, इतने मीठे!

काश यह कभी पूरा न हो!

आदमी सपनों को पूरा करने को भींखता है!

———

सत्रह

मन, वचन और कर्म की एकता आज मनुष्य में दुर्लभ हो गयी है। भीतर और बाहर के ऐक्य का निर्वाह दुष्कर हो रहा है। न तो उसमें इतना आत्मबल है कि वह सत्य का निर्वाह कर सके,—कर्म में नहीं तो कम-से-कम मन,और वचन में तो कर ही सके—न इतना साहस, धैर्य और सामर्थ्य कि मन और कर्म का समन्वय अपने व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ने बौद्धिक और जड़वादी बनकर, वस्तु-स्थिति पर आवरण डालते हुए अपने आपको रहस्यमय बना लिया है। वह सोचता है कि उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु साहस के बिना भोग, लिप्सा और विलास के क्षेत्र में उसकी वास्तविक स्थिति कितनी हीन, विवश और शोचनीय हो जाती है, यह विचारणीय है। जब तक वह मिथ्या आडम्बरों के मोहों से मुक्त होकर जीवन की नग्न यथार्थताओं को स्वीकार नहीं करता, तब तक उसकी स्थिति सदा भयावह रहेगी।

व्रजनाथ बाबू संयोग से आज एक नयी जगह फँस गये हैं। वे एक कोठी के अन्दर हैं। कोई अपरिचित हो या मित्र, बिना आज्ञा लिये अन्दर आ नहीं सकता। गाड़ी पर आफ़िस जा रहे थे। एकाएक दूर से ही गाड़ी पहचान ली गयी और युक्ति से पकड़ बुलाये गये।

वे जिस कमरे में बैठे हुए हैं, अभी जब पधारे, तो तीन ओर से तीन सुन्दरियों ने अभिनव मुसकानों और कटाक्षों द्वारा उनका स्वागत किया। दो ने तो दोनों ओर से उन्हें अपनी भुजाओं को फैलाकर छाती से कस लिया। किन्तु उनमें से एक इतमीनान के साथ आकर गद्दे पर बैठ गयी। इसके पश्चात् अन्य दो क्रम-क्रम से अपने आप चली गयीं।

एक सेविका इसी समय पान इलायची तश्तरी में कायदे के साथ रखकर बूँदी को देकर लौट गयी।

बूँदी बोली—सुरती भी दे जाना और सिगरेट भी। आप तो सिगरेट पीते हैं न?...तो शरीफ़ आदमी जान पड़ते हैं।...और शराब!...तो आप

देवता हैं।...अच्छा, सिनेमा देखने हफ़्ते में के दिन जाते हैं?...तो आप कुछ नहीं हैं।

ब्रजनाथ बाबू अपनी पूर्व प्रेमिकाओं से इसकी तुलना करने लगे। उनके मन में आया—इसके सामने अमराई सचमुच कोई चीज नहीं है। मैं तो उसी की बातों से घबड़ाता था; पर यह तो जैसे बिजली है।

बूँदी फिर बोली—मैंने तो कल ज़रा-सी पीकर देखी थी। आप उससे नफ़रत तो नहीं करते?···खैर करते भी हों, तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।

ब्रजनाथ बाबू कुछ घबरा से रहे थे। एक ओर इस रमणी से बातें करने में अपने को कुछ असमर्थ पा रहे थे, दूसरी ओर उसकी रूपछटा पर मुग्ध हो-होकर उसकी ओर देखते रह जाते थे। यहाँ तक कि उसकी बातों का उत्तर न देकर उसे सोचने लगते थे।

"आप लोग बुराइयों को खड़े होकर दूर से देखते हैं" बूँदी बोली—पर मैं उनमें प्रविष्ट होकर। आपमें और मुझमें केवल इतना अन्तर है। है कि नहीं? लेकिन यह बात नहीं कि उनको आप देखते न हों। देखते उन्हें आप भी हैं। यह बात दूसरी है कि आप उन्हें दूर से भी पूरी तरह देख पाने का अवसर न पाते हों। अवसर पायें, तो बाहर से ही देखते न रह जायँ, उनके भीतर भी आपको जाना ही पड़े।—कि झूठ कहती हूँ?"

सेविका सुरती, सिगरेट-केस और दियासलाई डब्बी लाकर दे गयी।

उठकर बूँदी ने केस में से एक सिगरेट ब्रजनाथ बाबू के आगे करते हुए कहा—'लीजिये, पीजिये।···अरे पीजिये भी।' और फिर झट से दियासलाई जलाकर वह बोली—होठों से लगाइए तो झट से। हाँ, दो-चार कश खींचिए।···हाँ, यह बात है।

ब्रजनाथ बाबू का सिर घूमने लगा। सोचा, कदाचित् यह सिगरेट भी स्पेशल है।

बूँदी बोली—मैं अभी आयी।—दो मिनट में।

वह अन्दर चली गयी।

ब्रजनाथ बाबू आकाश में जैसे बादलों पर बैठकर उड़ने लगे।

बूँदी ने साड़ी बदली, चप्पल पहने और पर्स लिया।

उसके आने पर ब्रजनाथ बाबू बोले—मैं तो अब इजाजत चाहता हूँ।

बूँदी ने कहा—मैं भी आपके साथ चलती हूँ। मुझे ज़रा फूलबाग़ तक जाना है। आपको मेरे साथ चलना होगा।

ब्रजनाथ बाबू जैसे हक्के-बक्के से रह गये। विरोध में इसलिए कुछ बोल न सके कि इन बातों में उन्हें कुछ नवीनता जान पड़ी।

तब आगे-आगे चली बूँदी, पीछे-पीछे ब्रजनाथ बाबू।

गली से घूम कर वह बूँदी के साथ मूलगंज में आकर गाड़ी पर बैठे ही थे कि बूँदी बोली—चलिये, मेस्टन रोड के उस चौराहे के पास ज़रा ठहर जाइयेगा। पहले एक जगह थोड़ी चाय पी ली जाय।

बात कहकर बूँदी मुसकराने लगी। इस व्यक्ति में कितनी दृढ़ता है, इसी बात की परीक्षा की ओर उसका ध्यान चला गया था।

ब्रजनाथ बाबू ने भी उसके इस भाव को लक्ष किया। निर्दिष्ट स्थान पर आकर उसने कहा—इस वक्त मुझे फ़ुरसत नहीं है। मैं आफ़िस जा रहा हूँ।

"चले जाना आफ़िस। मैं रोकूँगी नहीं। ज़रा चाय तो पी लो।" —बात कहकर उसने उनका वाम बाहु थाम लिया। बोली—चलिये। अरे चलिये तो!

आन्दोलन ब्रजनाथ, विवश होकर बोला—अच्छा छोड़ो, चलता हूँ।

फ़ुटपाथ पर आते-आते दोनों ने एक दूसरे को आँखों-ही-आँखों में जैसे भर लिया हो। क्षण भर के लिए ज़ीने के नीचे दोनो स्तब्ध खड़े रह गये।

ब्रजनाथ बोला—चलो।

बूँदी ने भी मुसकराते हुए कहा—चलो न?

विवश ब्रजनाथ ही तब सीढ़ियों पर आगे-आगे चढ़ने लगा। पीछे बूँदी। ज़ीना ज़रा लम्बा था चक्करदार सीढ़ियाँ। एकदम तीसरे खंड पर जाकर समाप्त होती थीं।

बूँदी बीच ही में बोल उठी—मैं तो थक गयी।

"इतनी जल्दी" ब्रजनाथ कहकर घूम गया। वह देखने लगा बूँदी की ओर।

बूँदी हाँफ रही थी; मुसकराती हुई बोली—आपके पीछे जो हूँ।

सामने होकर ब्रजनाथ अवाक् रह गया। किन्तु फिर आगे बढ़ते हुए बोला—तब तुम मघा नक्षत्र की तो हो नहीं।

"आप ठीक कह रहे हैं। स्वाँति की हूँ।"

उससे ब्रजनाथ ऐसे उत्तर की कल्पना नहीं करता था। अब दोनों ऊपर पहुँच गये थे। बूँदी एक सुशोभित कक्ष की ओर बढ़ गयी, जिसमें गोल टेबिल के दोनों ओर छोटे-छोटे कोच पड़े हुए थे। आमने-सामने दोनों बैठ गये।

ब्वॉय आने पर बूँदी बोली—टोस्ट और चाय।

ब्रजनाथ बोला—मैं टोस्ट नहीं लूँगा।

बूँदी उसकी ओर देखती हुई जरा-सी मुसकरा दी। फिर बोली—दफ़्तर में क्या काम रहता है?

"डिप्टी सब-एजेण्ट हूँ। हिसाब-किताब के सिवा बैंकर लोगों के मामलों की जाँच···।" ब्रजनाथ कहकर रुका ही था कि बूँदी बोली—तब तहखोब का हिसाब रखना भी ख़ूब जानते होंगे आप।

ब्रजनाथ को कुछ आश्चर्य्य तो हुआ किन्तु वह चुप रहा।

"लेकिन आपको मुझसे जो इतना डर लगता है, इसका कारण शायद यह है कि कभी इस तरह का जमा-खर्च करने की नौबत नहीं आयी। सेविंग्स बैंक में कितना रुपया जमा कर रक्खा है?"

सशंकित ब्रजनाथ ने उत्तर दिया—अपना मतलब बताओ।

इसी समय ब्वॉय चाय की ट्रे ले आया। बूँदी ने उसे अपने आगे रख लिया। कप तैयार करती हुई वह फिर बोली—देखती हूँ, आप सोचते हैं—आपके जवाब का मतलब मैं जानती नहीं हूँ।

"इतना जानता हूँ कि तुम मुझसे मतलब निकालने की विद्या में कुछ बड़ी ही ठहरोगी।"—व्रजनाथ बोला—न भी ठहरो, तो भी अनुभव में तो तुम बड़ी हो ही। अच्छा होता, तुम मुझसे इस तरह पेश न आतीं। इस तरह की बातें करने के लिये तुम्हें दुनिया पड़ी है। मैं ज़रा ऐसी गुफ़्तगू कम पसन्द करता हूँ।

"जाने दीजिये। गोली मारिये।" कहते हुए एक अन्दाज़ के साथ एक कप तैयार करके बूँदी ने व्रजनाथ बाबू के आगे कर दिया। तदनन्तर अपने कप को होठों से लगाकर दो घूँट कण्ठगत् करने के पश्चात् उसने कहा—लिफ़ाफ़ा देखने में मुझसे कभी ग़लती नहीं हुई। पर आज देखती हूँ चिट्ठी का मज़मून अन्दाज़ से बाहर हो रहा है। ख़ैर। पर आप इस तरह भागते क्यों हैं मुझसे?

...आप चाय में चीनी कुछ ज़्यादा तो नहीं लेते? मैंने अपने अन्दाज़ से छोड़ी है।

व्रजनाथ ने कह दिया—ठीक है।

व्रजनाथ बाबू के प्लेट में टोस्ट के दो टुकड़े आये थे। एक टुकड़ा आधा खा लेने के बाद उसमें पड़ा रह गया था। बूँदी ने उसी को उठाकर खा लिया।

अचकचाकर व्रजनाथ बोला—यह आपने क्या किया?

"कुछ तो नहीं। मैंने सिर्फ़ यह देखना चाहा कि आपके टोस्ट में नमक-मिर्च ठीक है कि नहीं। मुझे आज इस बात का भय लग रहा है कि कहीं घर की नायीं यहाँ भी ऐसा न हो कि आप इस प्लेट को भी खाली ही छोड़ दें!

व्रजनाथ अब की बार अपना नियमन न कर सका। एकदम से विहँस पड़ा। बोला—जान पड़ता है, तुम मुझे माफ़ न करोगी!

उसने चाय का अपना कप थोड़ा पीकर फिर प्लेट पर रख छोड़ा था। अब की बार बूँदी ने उसको भी उठाकर होठों से लगा लिया। व्रजनाथ उसे देखता रह गया। ऐसा करने से उसने उसे मना नहीं किया। किसी

प्रकार का आश्चर्य्य भी अब की वार वह प्रकट नहीं कर सका। वृश्चिक-दंश का-सा विष उसे चढ़ आया था। बूँदी के आकर्ण विलम्बित नयन-कटोरों में अब उसे हलाहल-सा भरा जान पड़ने लगा—

बूँदी ने उस कप के दो घूँट ही पिये होंगे कि उसकी भंगिमा देखकर उसने उसे छोड़ दिया। थोड़ी देर दोनों-के-दोनों निश्चेष्ट बैठे रहे। अन्त में व्रजनाथ उठकर खड़ा हो गया। बूँदी उठकर खड़ी हो रही थी कि झट से रूमाल से मुँह पोछकर व्रजनाथ चल दिया। बूँदी कुछ और निकट आकर खड़ी हो गयी। वह बोली—ज़रा ठहरिये, कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं।

तब वह एक सर्वथा एकान्त कमरे की ओर चल पड़ी। व्रजनाथ भी साथ लगा रहा। कुछ बोला नहीं। उसने सोचा, पृथक् होने से पूर्व सम्भव है, उसे कुछ कहना ही हो किन्तु बूँदी उस सजे-सजाये विहार-गृह के अन्दर जाकर बोली—बैठो। इधर बैठो।

व्रजनाथ एक बड़े सोफ़े पर बैठ गया। बूँदी भी उससे लगकर समर्पित-सी हो पड़ी। तब व्रजनाथ झट से उठकर खड़ा हो गया। इस समय उसकी भृकुटियाँ चढ़ी हुई थीं, होंठ फड़क रहे थे। मस्तक की रेखाएँ तन गयी थीं। आग उगलनेवाले पर्वत की भाँति भड़कते हुए वह बोला—तुमको क्या कहना है, यह मैं जानता हूँ बूँदी। अपने बारे में तुमने समझा होगा—मैं जलती हुई शमा हूँ—मुझको पतंग बनाने में देर कितनी लग सकती है! लेकिन तुमने यह नहीं सोचा कि पतंग बनने से पूर्व आदमी एक आँधी भी है। जलो, जितना जल सको। मैं भी देखना चाहता हूँ, कहाँ तक, कितनी देर तक जल सकती हो!

इतना कहकर जब व्रजनाथ बाहर जाने के लिये चल दिया, तो बूँदी बोली—तुम्हें मेरी क़सम, थोड़ी देर और बैठ लो। उसने झट से उठकर उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचना चाहा। किन्तु व्रजनाथ धक्का देकर अलग हो गया। बूँदी गिरते-गिरते बची। इसी समय उसने यकायक ताली बजा दी। दो ओर से दो आदमियों ने आकर पहले सलाम बजाया

और फिर एक बोला—हुजूर, आप यहाँ से किसी तरह कहीं जा नहीं सकते।

बूँदी ने कुटिल मुसकान के साथ कहा—'सलाम!' फिर उसने ऐसा संकेत कर दिया कि वे दोनों आदमी यथास्थान चले गये।

व्रजनाथ बाबू ने आश्चर्य, कातरता और आशंकाओं में डूबकर कुछ सावधान होते हुए कहा—तो इसका मतलब यह है कि मुझे धोखा दिया गया है। लेकिन तुमको अभी मालूम नहीं है कि तुमने किसको चैलेंज किया है।

"मुझे अच्छी तरह मालूम है बाबू साहब"—कुछ रूखेपन के साथ बूँदी ने कहा—कि आपकी कितनी आमदनी है। मैं यह भी जानती हूँ कि अभी दस दिन पहले आप एक टीचरेस का हमल गिरवाने के लिए उसे लखनऊ ले गये थे।

बात सुनकर व्रजनाथ बाबू के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। अस्थिर, क्षुब्ध और मर्माहत स्थिति में उनके मुँह से जरा जोर के साथ निकल गया—तुम बिलकुल झूठ बोल रही हो और इसके लिए तुमको पछताना पड़ेगा।

बूँदी बोली—आप ज़रा आराम कर लें, इतमीनान के साथ अपना नफ़ा-नुक़सान सोच-समझ लें, तब बात करें। मैं आपको नाराज़ नहीं करना चाहती। मेरा मतलब तो तभी पूरा हो सकता है, जब आप ख़ुश रहें। कुछ ऐसी बातें इत्तिफ़ाक़ से मुझे मालूम हो गयी हैं, जिनके ज़ाहिर हो जाने से आपकी इज़्ज़त को बट्टा लग सकता है। आप रईस आदमी हैं। रईसों के लिए पैसा उतनी बड़ी चीज़ नहीं, जितनी उनकी मुँदी-झपी हुई इज्जत का बाहरी ख़ुशनुमा नक़शा। हमारी बात दूसरी है। हमारी इज्ज़त और ज़िन्दगी इसी में है कि आप लोगों से पैसा मिलता रहे। कभी-कभी पैसे की दिक्क़त हमको भी हो जाती है। मसलन यह कि यह बिल्डिंग अपनी है। मगर इस पर दस हज़ार रुपये का क़र्ज़ है। माँ बीस हज़ार छोड़ गयी थीं। मैंने दो साल में दस हज़ार अदा कर पाया है। सोचती हूँ बाक़ी की अदायगी की भी कोई सूरत होनी चाहिये। और यह तो

आपको मालूम ही है कि हम लोगों की एक फ़सल होती है, एक सीज़न होता है। अगर ऐसे मौक़ों पर हमने अपनी फ़सल न सम्हाली, तो अल्ला मियाँ का कहना है कि मैं भी मदद नहीं कर सकता!

"मैं फिर आपसे दरख्वास्त करूँगी"—वूँदी ने इतमीनान के साथ सोफ़े पर पैर फैलाकर सिगरेट सुलगाते हुए कहा—कि आप ज़रा टेबिल पर आ जायँ। कहिये तो मैं आपको ड्रिंक मंगवाऊँ।

उसने ताली बजा दी। एक वेट्रेस सामने आ पहुँची।—तब वूँदी बोली—लाल परी को झट से तैयार करके भेजो। बस दो गिलास!

व्रजनाथ बाबू इसी क्षण कुछ कातरता के साथ बोले—पर कम-से-कम मेरा एक परचा तो बैङ्क में पहुँच ही जाना चाहिए, आज की छुट्टी के लिए।

"बेशक और फ़ौरन।"—वूँदी ने कहा—रमजान को भेजो, चिट्ठी लिखने का पैड दे जाय और बाबू साहब की चिट्ठी ले जाय।

पैड आ गया और व्रजनाथ बाबू पत्र लिखकर लिफ़ाफ़ा उस आदमी को देते हुए बोले—बैङ्क के सब एजेंट के पास पहुँचाना होगा।

वूँदी उठी और बोली—"लेटर ज़रा मुझको दिखलाना।" साथ ही वह एक कटाक्ष से व्रजनाथ बाबू की ओर देखने लगी।

उधर व्रजनाथ बाबू बग़ल में लगाई हुई टेबिल पर देख रहे थे—बोतल का कार्क खुल रहा है और 'सोडे के फेन के साथ लाल परी ढल रही है!

अठारह

हृदय-दान के क्षेत्र में मनुष्य जितना मुखर और स्पष्ट होता है, जीवन में वह स्वाभिमानी और कष्ट-सहिष्णु भी होता है। वह किसी प्रसङ्ग के एक अंश को खोलकर दूसरे को अनभिज्ञ हुआ करता है। पहलू बदलकर अवस्था, स्थिति और स्वार्थों के संघर्ष

उसके आधारभूत विश्वासों और उसकी मान्यताओं में अन्तर नहीं डालते।

किन्तु इस प्रकार का व्यक्ति प्रायः भावुक होने के कारण व्यर्थ ही एक अविश्वास का पात्र भी बन जाता है। जो बुद्धिजीवी हैं, वे ऐसी दशा में कभी-कभी बड़े मानसिक संघर्ष में पड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में अवलम्ब का एक मात्र साधन है, धैर्य्य।

एक रेस्तराँ में बैठकर दो व्यक्ति बातें कर रहे हैं। एक व्यक्ति अपने पूरे सूट में है और है क्लीनशेव्ड। उसकी चेष्टा से ऐसा जान पड़ता है, मानो वह निश्चिन्त, प्रसन्न और अपने कर्तव्य-कर्म के क्षेत्र में तत्पर है। वह व्यावहारिक है और उसने जीवन की अनेक ऊँची-नीची घाटियाँ पार की हैं। किन्तु दूसरा व्यक्ति कुछ चिन्तित, उदास और व्यस्त है। बात करते-करते वह ऊपर एक ओर खुले आकाश को देखने लगता है। पहले ललित बाबू हैं, दूसरे शर्म्माजी।

ललित बोला—अच्छा हो, आप इस विषय में कुछ न पूछें। जिसके साथ आपकी घनिष्टता है, मैं नहीं चाहता, उसकी कोई ऐसी बात मैं आपके समक्ष रक्खूँ, जिसको सुनकर आपके हृदय को चोट पहुँचे।

"हृदय को चोट!—हँ-हँ···ललित बाबू, आप तो डाक्टर हैं न?"—गम्भीर वाणी में शर्म्माजी बोले—रक्त-मांस की वस्तु को आप शब्दों से चोट पहुँचायेंगे! कहिये, जो कुछ भी आप जानते हों, कह जाइये। मालती से मेरा ज़रा भी हार्दिक सम्बन्ध नहीं है। मैंने अपना मन स्थिर कर लिया है। मैं उससे घृणा कर सकता हूँ; मैं उसकी प्राण-हानि तक—किसी भी क्षण—कर सकता हूँ। विश्वास रखिये ललित बाबू।

"डॉक्टर हूँ, तभी तो ऐसा कह रहा हूँ।" ललित ने टेबिल पर रक्खे हुए पानों में से दो बीड़े लेते हुए कहा—आप कुछ भी कहें, आपकी चेष्टा बतला रही है—ये भृकुटियाँ, मस्तक पर बनती-बिगड़ती रेखाएँ; आँखों की पुतलियाँ, यहाँ तक कि चिबुक और कपोल के बीच की उचटती-बनती झुर्रियाँ, शब्दों के उच्चारण का प्रकार; तात्पर्य यह कि आपकी प्रत्येक मुद्रा यह बतला रही है कि आप भीतर से काफ़ी भरे हुए हैं। आप टोह रहे हैं कि कहाँ

थाह की जगह है। आप भटक रहे हैं। पैर आपके जमीन पर नहीं पड़ रहे। आप अपने आपसे विद्रोह कर रहे हैं। आपका हृदय जहाँ है, मस्तिष्क वहाँ नहीं है। आपके प्राण जहाँ वास करते हैं, विवेक वहाँ आपको खड़ा भी नहीं रहने देता।

"आप जो करना चाहते हैं, वह नहीं कर रहे। आपका आदर्श निरन्तर यथार्थ से लड़ रहा है। आप जो बारम्बार सोचते हैं, सिद्धान्त की कसौटी पर कसते हुए उसे ठुकरा देते हैं। आप जैसे जिम्मेदार व्यक्ति के लिए यह स्थिति भयावह है। मैं चाहता हूँ कि आप इस स्थिति से ऊपर उठें। अन्यथा आश्चर्य्य नहीं, जो आप मानसिक विकृतियों से घिरकर प्रमाद से आक्रान्त हो जायँ।

"आज एक बात मैं आपको और बतला दूँ—रेणु की स्थिति भी अच्छी नहीं है। मैंने उसकी परीक्षा ली है। उसका एक फेफड़ा कुछ खतरे में है। बहुत सावधानी से उसकी चिकित्सा होने की आवश्यकता है। आप स्वतः इतने दुर्बल और चिन्तित हो रहे हैं कि मैंने आपको एक नयी परेशानी में डालना उचित नहीं समझा। आज जब आपको गम्भीर वार्तालाप के लिए तत्पर देखा, तो विवश होकर ऐसा कहना पड़ा।"

शर्म्माजी कुरसी से उठकर खड़े हो गये। खिड़की से उन्होंने आकाश की ओर देखा, दोनों होंठ दबाये और अन्दर की ओर पलटते हुए उन्होंने कहा—'तो यह बात है!' उस समय उनकी मुट्ठियाँ बँधी हुई थीं, भृकुटियाँ कभी-कभी फड़क उठती थीं, होंठ हिल रहे थे। पैरों में कम्पन आ गया था। देर तक वे कुछ नहीं बोले। ललित सोचने लगा—जो सोचा था, वही हुआ। इतनी ही बात सुनकर शर्म्माजी मर्म्माहत हो गये। अतएव आगे अब मालती की चर्चा क्या उठायेंगे!

किन्तु शर्म्माजी ने टेबिल पर रक्खे हुए पान खा लिये। फिर मुसकराते हुए वे बोले—लेकिन असल चीज़ से हम दूर चले आये। रेणु का प्रश्न नहीं है। मैं जानता हूँ, वह कितने दृढ़ हृदय की नारी है। आप मालती के सम्बन्ध में कुछ कह रहे थे। वही कहिये; मैं उसी को सुनना चाहता हूँ।

ललित बोला—अच्छा तो फिर सुनिये।

"आपको कालूम है, जब वह इंटर में पढ़ती थी, तभी......कालेज के एक छात्र राजेश्वर ने आत्मघात कर लिया था।

शर्म्माजी ने आश्चर्य्य में डूबकर कहा—अच्छा! ऐसी बात है! मैंने नही सुना। मुझे नहीं मालूम हुआ। हो सकता है। मैं उन दिनों व्यस्त बहुत रहता था। मुझे अवकाश ही इतना नहीं मिला कभी कि मैं शिकारी-सम्प्रदाय के लोगों के साथ मिल-जुल सकता। कहीं बातचीत चल रही थी। उसमें एक बार सुना ज़रूर था कि किसी छात्र ने आत्मघात किया है। किन्तु फिर यह नही मालूम हो सका कि वह है कौन और क्यों उसको इसके लिए विवश होना पड़ा। खैर।...हाँ, अब आप बतलाइये कि राजेश्वर ने क्यों आत्मघात किया था।

ललित ने कहा—तब आपको शुरू से बताना पड़ेगा।" बात यह हुई कि राजेश्वर और मालती में कुछ काल तक बहुत घनिष्टता थी। प्रायः साथ-ही-साथ चलता था। कार पर भी दस-पाँच बार वे घूमते हुए देखे गये थे। एक दिन राजेश्वर ने देखा, मालती प्रोफ़ेसर मुकर्जी से बातचीत कर रही है। मिलने पर राजेश्वर ने पूछा—क्या बात थी?—तो मालती टाल गयी। कोई दूसरा कारण बतला दिया। थोड़े दिनो बाद उसने यह भी देखा कि मालती उससे छिपकर मुकर्जी महाशय के यहाँ आती-जाती भी है। इसी के कुछ दिनों बाद परीक्षा-फल जो आउट हुआ, तो मालती फ़र्स्ट आयी। पिछले दिनों लगभग एक मास तक वह राजेश्वर से कभी मिलने तक नहीं आयी थी। अन्त में एक दिन मेस्टनरोड के रास्ते में भेंट तब हुई, जब परीक्षाफल आउट हुआ, जिसमें मालती की पोज़ीशन फ़र्स्ट थी और राजेश्वर की थर्ड! और भेंट होने पर राजेश्वर कुछ कहने को ही था कि एक कुटिल मुसकान के साथ मालती ने उसे बधाई दी!

"तो यह कहो कि राजेश्वर ने जो आत्मघात किया था, उसका मुख्य कारण परीक्षाफल का ख़राब हो जाना था, न कि मालती की कोई चरित्र-सम्बन्धी दुर्बलता।"—शर्म्माजी ने कहा।

"नहीं" कहते हुए ललित बोला—आत्मघात की दुर्घटना से पूर्व और किसी से राजेश्वर की बातचीत होने का पता नहीं चला। एक शिवनाथ ऐसा था, जिससे उसने इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण किया था। उसका कहना था कि राजेश्वर को परीक्षा-फल के खराब हो जाने का कोई रंज नहीं था। वह तो उसपर अपना शरीर बेंचकर इस तरह आगे बढ़ने और सम्मान पाने का चार्ज लगा रहा था! उसका कहना था कि मुकर्जी ने उसे छोड़ा होगा, इस पर मैं विश्वास कर ही नहीं सकता! ऐसी बात न होती, तो मेरे साथ उसका जो सम्बन्ध था, उसमें अन्तर पड़ ही नहीं सकता था! फिर आपको पता है कि राजेश्वर की मृत्यु कितने भयानक ढंग से हुई थी? पोस्ट-मार्टम करने पर, कहा जाता है कि, डाक्टरों ने कहा था कि यह लाश तो उस आदमी की होना चाहिये, जो मर जाने पर भी कम-से-कम आठ घंटे रस्से से झूलती रही है!

ललित की इस बात को सुनकर कुछ ऐसा मालूम पड़ा कि शर्म्माजी अब कहेंगे कि बस, इतना यथेष्ट है। आगे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हुआ यह कि वे एकदम से स्तब्ध हो उठे। सत्य-कृष्ण कुछ बोले ही नहीं। न तो यह कहा कि अच्छा, हाँ, और बतलाओ—न बीच में संशयात्मक होकर अन्य कोई प्रश्न ही किया!

ललित बोला—रह गयी मेरी बात। सो मैं उस ज़माने में तो पढ़ रहा था; पर इधर उसके घरवालों की चिकित्सा के सिलसिले में अवश्य जाता रहा हूँ। निजी अनुभव तो नहीं है; पर सुनता ऐसा ज़रूर हूँ कि एक बार गर्भ रह जाने पर वह लखनऊ जाकर शुद्ध हो आ चुकी है। लेकिन यह सुनना ऐसा है, जो आदि से अन्त तक सटीक है। और छोटी-मोटी बातें तो बहुतेरी हैं। उनकी चर्चा भी व्यर्थ है। मुझसे जो वह भयभीत रहती है और प्रायः कटूक्तियों से पेश आती है, उसका कारण यह है कि मैं उसकी इस समन्त जीवनचर्य्या से परिचित हूँ।

शर्म्माजी ये सब बातें एक होटल में बैठकर कर रहे हैं। चाय पहले

ही पी चुके थे। बिल का पेमेंट भी हो चुका है। बातें भी जो होनी थीं, हो ही गयी हैं। अब केवल इतना शेष है कि वे उठकर चल दें।

ललित ने इसी क्षण अपनी कलाई-घड़ी की ओर देखा, तो वह बोल उठा—अब मैं चलूँगा, शर्म्माजी। मुझे एक मरीज को देखने जाना है।

शर्म्माजी बोले—मैं भी चलता हूँ, मुझे यहाँ बैठना तो है नहीं।

इतना कहकर वे उठना ही चाहते थे कि इसी क्षण उनके सामने बायीं ओर का पर्दा हिला और उसके भीतर से पहले मालती और फिर विनायक आ टपके। क्षुब्ध, संतप्त और उत्तेजित मालती बोली—आप नहीं जा सकते शर्म्माजी, आपको यहाँ बैठना पड़ेगा। आपने अभी तक केवल एक पक्ष की बातें सुनी हैं। अब आपको दूसरे पक्ष की बातें भी सुननी पड़ेंगी। और डॉक्टर साहब! जान छिपाकर आप कहाँ भाग रहे हैं! आपको भी तो यहाँ बैठना पड़ेगा। हृदय की जलन को जरा ठंढा भी तो कर लीजिये। बराबर जलते रहना आपके लिए एक खतरा है।

ललित ने चलते हुए उत्तर दिया—मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।

"अच्छी बात है"-मालती ने कहा और वह कुरसी पर बैठ गयी।

शर्म्माजी बोले—कहिये विनायक बाबू, आपको कितने रुपये दूँ?

विनायक को आश्चर्य्य हुआ कि शर्म्माजी आज यह कह क्या रहे हैं! न तो वे कार्यालय में बैठे हैं कि उन्हें लेख को देखकर उसके पारिश्रमिक का हिसाब लगाने की सुविधा हो—न यहाँ वौचर सामने है कि मैं तुरन्त उस पर हस्ताक्षर कर दूँगा।...फिर जब-जब आवश्यकता हुई है, तब-तब बराबर मैं ही माँगकर ले आता रहा हूँ। पर आज तो वे स्वतः याद करके ऐसा प्रिय प्रश्न उठा रहे हैं!

विनायक को मौन देखकर शर्म्माजी आपही आप कहने लगे—बात यह है कि आज मेरे पास कुछ रुपये आ गये हैं। मैं चाहता हूँ कि आप उसमें से पहले अपना भाग ले लें। क्योंकि बाद में फिर ऐसा भी हो सकता है कि माँगने पर भी कुछ समय तक आपको रुपया न मिले। हर समय ऐसी सुविधा मुझे रहती भी नहीं है।

मुसकराते हुए विनायक ने उत्तर दिया—लगभग ढाई पेज का लेख गया है। हिसाब से दस रुपये होते हैं। देने को आप जो चाहें दे सकते हैं। चाहें तो नहीं भी दे सकते हैं। सुशील का ट्यूशन मिल गया है। पहले मास का वेतन मैंने एडवांस ले लिया है। काम चल रहा है। अब कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं है।

आश्चर्य्य से "अच्छा" कहकर कुछ प्रसन्नता प्रकट करते हुए शर्म्माजी बोले—यह बात है! मालती की कृपा का फल होगा।...कितने का ठहरा है ट्यूशन ?

मालती दूसरी ओर देखने लगी। विनायक बोला—तीस रुपये मिलेंगे।

"यह बहुत अच्छा हुआ। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।"—कहकर शर्म्माजी रुपये देते हुए बोले—

"बीस रुपये ये मेरे भी उसी में शामिल कर लीजिये। आज से मैंने आपके लेख का पारिश्रमिक दूना कर दिया है।"

विनायक की आदत है कि वह साधारण अवसरों पर धन्यवाद नहीं देता। जब उसे वास्तव में कृतज्ञता-ज्ञापन करना होता है, तभी वह धन्यवाद देता है। इसीलिए उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उसका धन्यवाद बड़ा महँगा होता है। अतएव इस समय जब उसने कह दिया—धन्यवाद।—तो शर्म्माजी बोल—चलो बाद मुद्दत के आपके धन्यवाद का अवसर तो आया।

कुछ सोचती हुई-सी मालती बोली—अब सरकार, मेरा भी मामला सुन लें।

शर्म्माजी गम्भीर होकर बोले—उसका भी अवसर आयेगा मालती। ऐसी जल्दी क्या है?...समय सब करा लेता है।

और इतना कहते हुए वे उठकर खड़े हो गये। बोले—अब मैं चलूँगा।

वे चले गये। इस बार उन्होंने मालती से, कुछ कहना तो दूर रहा, चलते क्षण उसकी ओर देखा तक नहीं।

मालती भी धीरे-धीरे सीढ़ी से उतरकर सड़क पर आ गयी। गाड़ी खड़ी हुई थी। दोनों उसी में बैठकर चल दिये।

गाड़ी चली जा रही थी, लेकिन दोनों मौन थे। मालती गिरधारी की बात सोच रही थी। किन्तु विनायक पर न ललित की बातों का कोई प्रभाव था, न मालती का। वह अपनी बुढ़िया माँ की उस प्रसन्नता को कल्पना के पट पर देख रहा था, जो ये रुपये उसके हाथ पर धर देने से होगी। झुर्रियों से युक्त वह पोपला मुँह और उसकी मातृत्व से भीगी मुसकराहट।

उन्नीस

संसार अपनी गति से चलता रहता है। मनुष्य के आन्तरिक मन्तव्यों की परवा उसे नहीं होती। उसका सुख-दुःख, निश्वास और क्रन्दन कौन सुनता है! उसकी व्यथा और पीड़ा, टीस और कराह की चिन्ता किसे होती है! मन के मेल का ही सारा खेल है। जब एक व्यक्ति का दूसरे के साथ न मन मिलता है, न कार्य की गति में और कर्म की धारा में ही कहीं वे परस्पर मिल पाते हैं, तब घटनाएँ जगत् में न होकर अन्तर में चला करती हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि बाह्य जगत् में जो घटनाएँ होती हैं, वे मनुष्य के अन्तर को क्या उतना मंथनशील बना पाती हैं जितना वे संक्रान्तियाँ, जिन्हें मनुष्य स्वतः अपने जीवन के साथ लगा लेता है।

दिन चल रहे हैं।

लेकिन दिन तो सदा चलते ही रहते हैं। सुख के दिन जल्दी बीत जाते हैं। लेकिन दुःख के दिन तो काटे नहीं कटते। वरन् कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है, मानो दिन हमें काट रहा है।

रेणु की तबियत अच्छी हो रही है। वह नित्य नियम से सवेरे घूमने जाती है। साथ में शर्म्माजी भी रहते हैं। वे अकसर उससे गम्भीर विषयों की भी चर्चा कर लेते हैं। मनोविनोद भी आपस में चलता है। हड़ताल रोक दी गयी है। मिल वालों को विचार करने के लिये अवसर दे दिया गया है। शर्म्माजी में अब एक विचित्र परिवर्तन आ गया है। पहले की अपेक्षा वे अब हँसते अधिक हैं। रेणु को कभी-कभी उस हँसी को देखकर भय-सा होने लगता है। क्योंकि उस हास में मार्दव का सर्वथा अभाव होता है। कभी-कभी वे मस्तक पर हाथ रखकर अपने आप कुछ बुदबुदाते हुए अँगुलियों की पोरें गिनते हैं। ऐसा जान पड़ता है, जैसे किसी वस्तु की गणना करते हों। खाने-पीने के समय के सम्बन्ध में पहले भी नियम भंग करते रहते थे। और आज तो अनियमितता नियम बन गया है। खाने की चीजों और उनके स्वाद को लेकर वे पहले बहुत स्पष्ट और सजग रहते थे। अब जो भी, जितना और जैसा कुछ सामने आ गया, खा लेते हैं। कभी घंटों बात नहीं करते, कभी घंटों बीच में रुकते नहीं। किन्तु एक बात में वे दृढ़ हैं। उसमें उनसे कभी भूल नहीं होती। वह यह कि मालती का वे कभी नाम नहीं लेते। लेकिन इस सिलसिले में एक बात और छूट रही है। और वह यह कि यों साधारणतया उनको पैसे की तंगी रहती थी। पर अब समस्त कार्य्य ठीक ढंग से चल रहे हैं। पैसे की कमी के कारण कोई कार्य्य रुक नहीं रहा है।

रेणु इधर मालती के घर भी कई बार हो आयी है। विपिन सदा साथ गया है। माँ ने उसे एक दर्जन ब्लाउज्ज, छै साड़ियाँ तथा एक दुशाला भेंट में दिया है। रञ्जन के लिए एक पैराम्बुलेटर आ गया है, जिस पर बिठाकर लोचन उसे नित्य घुमाने जाता है।

विक्टर को अब मालती से कोई 'शिकायत नहीं है। मालती ने भी इधर महीनों बाद वायोलिन उठाया है। विनायक प्रायः उसके पास आ जाता है। खाने-पीने में अब वह कच्चे चने, फल, दूध और कभी-कभी खिचड़ी तक ही सीमित नहीं है। चाय, टोस्ट और मटनचॉप ही नहीं,

सिगरेट तक भी, अब उसके लिए, न आश्चर्य्य की वस्तु है, न आपत्ति की। कभी-कभी पाकेट में भी गोल्डफ्लैक्स का पैकेट देख पड़ता है। एक दिन तो मालती ने जब वायोलिन बजाया, तो वह किवाड़ों की ओट से खड़ा-खड़ा सुनता रहा और प्रकट तब हुआ जब मालती उसे उठाकर रखने लगी। इधर उसने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं और खिलखिलाती हुई पूर्णिमा सोचती है कि उनकी प्रेरणा उसे मुझसे मिली है।

पर मालती ने वायोलिन उठाया है, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह मजदूरों के बीच में जो कार्य्य कर रही थी उसे उसने स्थगित कर दिया है। उसका कार्य्य बराबर चल रहा है। कल ही वह एक सभा में गयी थी। वहाँ उसने अपने भाषण में बतलाया कि रूस में रेड-आरमी का जन्म कैसे हुआ। जन-साधारण के साथ वहाँ रेड-आरमी का क्या सम्बन्ध है। स्त्रियाँ रेड-आरमी की सहायता किस प्रकार करती हैं। इस अवसर पर बच्चे तक रेड आरमी के लिए क्या-क्या और किस-किस तरह करते हैं।

मालती की जीवन-चर्य्या में भी एक परिवर्तन हुआ है। वह प्रायः बात कम करती है। पहले वह पैदल दस क़दम भी चलने में झिझकती थी। अब मील-दो-मील चलना दूर रहा, मजदूरों के बीच वह घंटों खड़ी-खड़ी बातें करती और उन्हें समझाती रहती है। उसने मजदूरों के बच्चों में खिलौनों, किंडर-गार्टन-बक्सों और सचित्र ज्ञानवर्द्धक मनोरंजक पुस्तकों के वितरण के लिए एक फंड कायम किया है और तीन वर्ष से लेकर सात वर्ष तक के पाँच-सौ बच्चों में वह इन वस्तुओं को वितरित कर चुकी है। इसका फल यह हुआ है कि मिल-क्षेत्र में उसे आते-जाते देख बच्चे दूर से पहचान कर प्रसन्नता से चिल्ला उठते हैं। सफ़ाई की ओर भी उसने विशेष ध्यान दिया है। मजदूर-बच्चों के वस्त्रों को साफ़ रखने और साबुन की टिकियाँ उन्हें आधे दाम में दिलाने के लिए उसने मजदूर क्षेत्रों में अलग-अलग दूकानें स्थिर कर दी हैं। वहाँ टिकट दिखलाकर कोई भी मजदूर सप्ताह में एक बार दो टिक्की साबुन आधे दाम में ले सकता है।

रेणु की तबियत अच्छी हो रही है। वह नित्य नियम से सवेरे घूमने जाती है। साथ में शर्म्माजी भी रहते हैं। वे अकसर उससे गम्भीर विषयों की भी चर्चा कर लेते हैं। मनोविनोद भी आपस में चलता है। हड़ताल रोक दी गयी है। मिल वालों को विचार करने के लिये अवसर दे दिया गया है। शर्म्माजी में अब एक विचित्र परिवर्तन आ गया है। पहले की अपेक्षा वे अब हँसते अधिक हैं। रेणु को कभी-कभी उस हँसी को देखकर भय-सा होने लगता है। क्योंकि उस हास में मार्दव का सर्वथा अभाव होता है। कभी-कभी वे मस्तक पर हाथ रखकर अपने आप कुछ बुदबुदाते हुए अँगुलियों की पोरें गिनते हैं। ऐसा जान पड़ता है, जैसे किसी वस्तु की गणना करते हों। खाने-पीने के समय के सम्बन्ध में पहले भी नियम भंग करते रहते थे। और आज तो अनियमितता नियम बन गया है। खाने की चीजों और उनके स्वाद को लेकर वे पहले बहुत स्पष्ट और सजग रहते थे। अब जो भी, जितना और जैसा कुछ सामने आ गया, खा लेते हैं। कभी घंटों बात नहीं करते, कभी घंटों बीच में रुकते नहीं। किन्तु एक बात में वे दृढ़ हैं। उसमें उनसे कभी भूल नहीं होती। वह यह कि मालती का वे कभी नाम नहीं लेते। लेकिन इस सिलसिले में एक बात और छूट रही है। और वह यह कि यों साधारणतया उनको पैसे की तंगी रहती थी। पर अब समस्त कार्य्य ठीक ढंग से चल रहे हैं। पैसे की कमी के कारण कोई कार्य्य रुक नहीं रहा है।

रेणु इधर मालती के घर भी कई बार हो आयी है। विपिन सदा साथ गया है। माँ ने उसे एक दर्जन ब्लाउज़, छै साड़ियाँ तथा एक दुशाला भेंट में दिया है। रञ्जन के लिए एक पैराम्बुलेटर आ गया है, जिस पर बिठाकर लोचन उसे नित्य घुमाने जाता है।

विक्टर को अब मालती से कोई 'शिकायत नहीं है। मालती ने भी इधर महीनों बाद वायोलिन उठाया है। विनायक प्रायः उसके पास आ जाता है। खाने-पीने में अब वह कच्चे चने, फल, दूध और कभी-कभी खिचड़ी तक ही सीमित नहीं है। चाय, टोस्ट और मटनचॉप ही नहीं,

खिलायें।...अपने जेठ (व्रजनाथ बाबू) के लिए।—वे प्रत्येक सुन्दर स्त्री पर अविश्वास करते हैं। उनका मतलब यह है कि जो स्त्री सुन्दर है, जाहिर है कि उसके चाहनेवाले भी अनेक होंगे ही। ऐसी दशा में सच्चरित्र बने रहने का अवसर ही उसे कहाँ रह जाता है। तात्पर्य यह कि उनकी कमजोरी यह है कि प्रत्येक सुन्दर स्त्री को पाने के लिए वे लालायित ख़ुद हो उठते हैं; और सोचते यह हैं कि उसका इस सीमा तक उदार होना स्वाभाविक है।... जीजी (तारिणी)—वे सोचती हैं, स्त्री के पास नित्य बदलने के लिए अगर नयी साड़ियाँ नहीं हैं, तो कुछ नहीं है।...मत्तू (शोफ़र) के सम्बन्ध में—वह सोने से कभी नहीं तृप्त होता। पाँच मिनट भी अगर उसको कहीं बैठने को मिल जायँ, तो वह सो जायगा।—अमिया (नौकरानी)-हुक्म मिलने पर वह हमेशा दौड़कर जायगी। वह सोचती है कि जो दौड़कर तुरन्त चल नहीं देता, वह नौकरी करने के सर्वथा अयोग्य है। जान पड़ता है उसको भय रहता है कि देर हो जाने पर मालिक कहीं नाराज़ न हो जायँ।

मालती के सम्बन्ध में उसका कथन बड़ा विचित्र है। उसका कहना है कि बीबी अपने को छिपाकर रखना चाहती हैं। उनका भेद पाना कठिन है। वे किसी पर विश्वास नहीं करतीं।—रह गया विक्टर। सो उसकी आदत यह है कि अगर स्त्री का पैर उसके ऊपर रक्खा रहे, तो वह कभी उठकर न जायगा, चाहे जैसी भूख-प्यास या अन्य कोई आवश्यकता उसे बनी रहे!

इसके पश्चात् उन लोगों का नम्बर आता है, जो सार्वजनिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। एक आलोचक के सम्बन्ध में—वे किसी आधुनिक साहित्यकार को स्रष्टा नहीं मानते। यही कारण है कि जब तक वह मर नहीं जाता, तब तक वे उसमें अवगुण-ही-अवगुण देखते हैं। उनकी दृष्टि में समालोचक का अर्थ है छिद्रान्वेषक।...एक सम्पादक महाशय हैं। वे सोचते हैं कि गाली देना प्रसिद्धि पाने की सबसे बड़ी कुञ्जी है। और यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिभा के द्वारा यशस्वी हो रहा है, तो उसको गिराने के लिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि उस पर किसी रचना के सम्बन्ध में चोरी का

आजकल मालती कुछ विशेष प्रकार के चार्ट्स बना रही है। उसमें मजदूरों के स्वास्थ्य के क्रम-विकास का वार्षिक विवरण प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी है। उनके द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि सन्तानोत्पादन का उनका औसत क्या है? उनकी स्त्रियों में प्रायः किस प्रकार के रोग होते हैं, जिनसे वे मृत्यु के मुँह का ग्रास बन जाती हैं? उनके गार्हस्थ्य-जीवन की क्या स्थिति है? दूध, घी और चीनी उनमें कितनी वार्षिक खर्च होती है? उन मजदूरों की संख्या किस परिमाण में है, जिन्हें लगातार तीस वर्ष कार्य करते हो चुके किन्तु जो अब भी तेली के बैल की तरह काम में जुते हुए हैं? उनमें अपराध-कारिणी वृत्तियाँ किस मात्रा में हैं और उनकी नैतिक मान्यताओं का स्तर क्या है? बीमार पड़ जाने पर बिना क़र्ज लिये छः महीने तक चिकित्सा करा सकने की स्थिति जिन मजदूरों की है उनका औसत क्या है?

पूर्णिमा को एक नया खेल सूझा है। अपने सभी परिचित व्यक्तियों के सम्बन्ध में उसने कुछ ऐसी सूचियाँ बनाई हैं जिनमें उनकी दुर्बलताओं और आदतों का उल्लेख किया गया है। सबसे पूर्व उसने रघुनाथ बाबू (स्वामी) के सम्बन्ध में लिखा है। वे जब बाहर से आते हैं, तो सबसे प्रथम मेरे पास आकर पूछते हैं—कैसी तबियत है? वे असिस्टैंट-इन्कमटैक्स आफ़िसर हैं। उनके कार्यालय में फ़ोन है। वे आफ़िस से नित्य चार बजे चल देते हैं। किन्तु सीधे घर न आकर पहले वे एक क्लब में जाते हैं। वहाँ टेनिस खेलते, जलपान करते, मित्रों के साथ गप लड़ाते और कभी-कभी सिनेमा देखकर लौटते हैं। नित्य नियम से चार बजने से कुछ मिनट पहले फ़ोन पर मेरी पुकार होती है और प्रश्न होता है, सब ठीक है न?

मतलब यह कि वे आशंकालु व्यक्ति हैं और सबसे अधिक भय उन्हें मेरी ओर फिर कुटुम्बियों की अस्वस्थता का रहता है। वे अमांगलिक कल्पनाओं से बुरी तरह घिरे रहते हैं।···माँ के सम्बन्ध में—वे सोचती हैं कि जो देश-भक्त नेता है, वह घर का ग़रीब जरूर है। उनकी बड़ी इच्छा रहती है कि वे उसको कुछ भेंट करें और उसे अपने सामने बैठाकर अच्छा-से-अच्छा खाना

खिलायें।···अपने जेठ (ब्रजनाथ बाबू) के लिए।—वे प्रत्येक सुन्दर स्त्री पर अविश्वास करते हैं। उनका मतलब यह है कि जो स्त्री सुन्दर है, जाहिर है कि उसके चाहनेवाले भी अनेक होंगे ही। ऐसी दशा में सच्चरित्र बने रहने का अवसर ही उसे कहाँ रह जाता है! तात्पर्य यह कि उनकी कमजोरी यह है कि प्रत्येक सुन्दर स्त्री को पाने के लिए वे लालायित ख़ुद हो उठते हैं; और सोचते यह हैं कि उसका इस सीमा तक उदार होना स्वाभाविक है!··· जीजी (तारिणी)—वे सोचती हैं, स्त्री के पास नित्य बदलने के लिए अगर नयी साड़ियाँ नहीं हैं, तो कुछ नहीं है।···मत्तू (शोफ़र) के सम्बन्ध में— वह सोने से कभी नहीं तृप्त होता। पाँच मिनट भी अगर उसको कहीं बैठने को मिल जायँ, तो वह सो जायगा।—अमिया (नौकरानी)-हुक्म मिलने पर वह हमेशा दौड़कर जायगी। वह सोचती है कि जो दौड़कर तुरन्त चल नहीं देता, वह नौकरी करने के सर्वथा अयोग्य है। जान पड़ता है उसको भय रहता है कि देर हो जाने पर मालिक कहीं नाराज़ न हो जायँ।

मालती के सम्बन्ध में उसका कथन बड़ा विचित्र है। उसका कहना है कि बीबी अपने को छिपाकर रखना चाहती हैं। उनका भेद पाना कठिन है। वे किसी पर विश्वास नहीं करतीं।—रह गया विक्टर। सो उसकी आदत यह है कि अगर स्त्री का पैर उसके ऊपर रक्खा रहे, तो वह कभी उठकर न जायगा, चाहे जैसी भूख-प्यास या अन्य कोई आवश्यकता उसे बनी रहे!

इसके पश्चात् उन लोगों का नम्बर आता है, जो सार्वजनिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। एक आलोचक के सम्बन्ध में—वे किसी आधुनिक साहित्यकार को स्रष्टा नहीं मानते। यही कारण है कि जब तक वह मर नहीं जाता, तब तक वे उसमें अवगुण-ही-अवगुण देखते हैं। उनकी दृष्टि में समालोचक का अर्थ है छिद्रान्वेषक।···एक सम्पादक महाशय हैं। वे सोचते हैं कि गाली देना प्रसिद्धि पाने की सबसे बड़ी कुञ्जी है। और यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिभा के द्वारा यशस्वी हो रहा है, तो उसको गिराने के लिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि उस पर किसी रचना के सम्बन्ध में चोरी का

आजकल मालती कुछ विशेष प्रकार के चार्ट्स बना रही है। उसमें मज़दूरों के स्वास्थ्य के क्रम-विकास का वार्षिक विवरण प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी है। उनके द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि सन्तानोत्पादन का उनका औसत क्या है? उनकी स्त्रियों में प्रायः किस प्रकार के रोग होते हैं, जिनसे वे मृत्यु के मुँह का ग्रास बन जाती हैं? उनके गार्हस्थ्य-जीवन की क्या स्थिति है? दूध, घी और चीनी उनमें कितनी वार्षिक खर्च होती है? उन मजदूरों की संख्या किस परिमाण में है, जिन्हें लगातार तीस वर्ष कार्य करते हो चुके किन्तु जो अब भी तेली के बैल की तरह काम में जुते हुए हैं? उनमें अपराध-कारिणी वृत्तियाँ किस मात्रा में हैं और उनकी नैतिक मान्यताओं का स्तर क्या है? बीमार पड़ जाने पर बिना क़र्ज लिये छः महीने तक चिकित्सा करा सकने की स्थिति जिन मजदूरों की है उनका औसत क्या है?

पूर्णिमा को एक नया खेल सूझा है। अपने सभी परिचित व्यक्तियों के सम्बन्ध में उसने कुछ ऐसी सूचियाँ बनाई हैं जिनमें उनकी दुर्बलताओं और आदर्शों का उल्लेख किया गया है। सबसे पूर्व उसने रघुनाथ बाबू (स्वामी) के सम्बन्ध में लिखा है। वे जब बाहर से आते हैं, तो सबसे प्रथम मेरे पास आकर पूछते हैं—कैसी तबियत है? वे असिस्टैंट-इन्कमटैक्स आफ़िसर हैं। उनके कार्यालय में फ़ोन है। वे आफ़िस से नित्य चार बजे चल देते हैं। किन्तु सीधे घर न आकर पहले वे एक क्लब में जाते हैं। वहाँ टेनिस खेलते, जलपान करते, मित्रों के साथ गप लड़ाते और कभी-कभी सिनेमा देखकर लौटते हैं। नित्य नियम से चार बजने से कुछ मिनट पहले फ़ोन पर मेरी पुकार होती है और प्रश्न होता है, सब ठीक है न?

मतलब यह कि वे आशंकालु व्यक्ति हैं और सबसे अधिक भय उन्हें मेरी और फिर कुटुम्बियों की अस्वस्थता का रहता है। वे अमांगलिक कल्पनाओं से बुरी तरह घिरे रहते हैं।...माँ के सम्बन्ध में—वे सोचती हैं कि जो देश-भक्त नेता है, वह घर का ग़रीब जरूर है। उनकी बड़ी इच्छा रहती है कि वे उसकी कुछ भेंट करें और उसे अपने सामने बैठाकर अच्छा-से-अच्छा खाना

खिलायें।···अपने जेठ (व्रजनाथ वावू) के लिए।—वे प्रत्येक सुन्दर स्त्री पर अविश्वास करते हैं। उनका मतलब यह है कि जो स्त्री सुन्दर है, जाहिर है कि उसके चाहनेवाले भी अनेक होंगे ही। ऐसी दशा में सच्चरित्र बने रहने का अवसर ही उसे कहाँ रह जाता है। तात्पर्य यह कि उनकी कमजोरी यह है कि प्रत्येक सुन्दर स्त्री को पाने के लिए वे लालायित खुद हो उठते हैं; और सोचते यह हैं कि उसका इस सीमा तक उदार होना स्वाभाविक है।··· जीजी (तारिणी)—वे सोचती हैं, स्त्री के पास नित्य बदलने के लिए अगर नयी साड़ियाँ नहीं हैं, तो कुछ नहीं है।···मत्तू (शोफ़र) के सम्बन्ध में—वह सोने से कभी नहीं तृप्त होता। पाँच मिनट भी अगर उसको कहीं बैठने को मिल जायँ, तो वह सो जायगा।—अमिया (नौकरानी)-हुक्म मिलने पर वह हमेशा दौड़कर जायगी। वह सोचती है कि जो दौड़कर तुरन्त चल नहीं देता, वह नौकरी करने के सर्वथा अयोग्य है। जान पड़ता है उसको भय रहता है कि देर हो जाने पर मालिक कहीं नाराज न हो जायँ।

मालती के सम्बन्ध में उसका कथन बड़ा विचित्र है। उसका कहना है कि बीबी अपने को छिपाकर रखना चाहती हैं। उनका भेद पाना कठिन है। वे किसी पर विश्वास नहीं करतीं।—रह गया विक्टर। सो उसकी आदत यह है कि अगर स्त्री का पैर उसके ऊपर रक्खा रहे, तो वह कभी उठकर न जायगा, चाहे जैसी भूख-प्यास या अन्य कोई आवश्यकता उसे बनी रहे।

इसके पश्चात् उन लोगों का नम्बर आता है, जो सार्वजनिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। एक आलोचक के सम्बन्ध में—वे किसी आधुनिक साहित्यकार को स्रष्टा नहीं मानते। यही कारण है कि जब तक वह मर नहीं जाता, तब तक वे उसमें अवगुण-ही-अवगुण देखते हैं। उनकी दृष्टि में समालोचक का अर्थ है छिद्रान्वेषक।···एक सम्पादक महाशय हैं। वे सोचते हैं कि गाली देना प्रसिद्धि पाने की सबसे बड़ी कुञ्जी है। और यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिभा के द्वारा यशस्वी हो रहा है, तो उसको गिराने के लिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि उस पर किसी रचना के सम्बन्ध में चोरी का

अपराध लगा दिया जाय ।...एक प्रकाशक हैं। वे सोचते हैं कि उनका सहयोग अगर किसी ग्रन्थकार को प्राप्त न होगा, तो वह इस दुनिया से उठ जायगा ।...एक अनुवादक महाशय हैं। उनकी कमजोरी यह है कि वे मौलिक ग्रन्थकारों की कृतियों की छान-बीन इस उद्देश्य से करते हैं कि एन-केन-प्रकारेण यह सिद्ध हो जाय कि भाव-ग्रहण करके उस पर अपनी सृष्टि करना भी या तो अनुवाद की श्रेणी में आना चाहिए अथवा अनुवाद-कार्य की गणना भी रचनात्मक कार्य के रूप से मान्य होनी चाहिये ।...एक कवि महाशय हैं। वे नित्य सवेरे उठते ही उन्हीं पत्रों पर प्रथम दृष्टि डालते हैं, जो पिछले दिन की अपनी तथा मित्रों एवं परिचितों की डाक से छँटकर आते हैं और जिनमें उनकी काव्य-कला के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ छपा रहता है। जिस दिन ऐसा अवसर नहीं मिलता, कहा जाता है कि उस दिन वे सायंकाल अपने घर जरा देर और इतमीनान से लौटते हैं।...एक प्रोफ़ेसर साहब हैं। वे उर्दू में कविता लिखते हैं। पर उनको अपने विषय में यह सुनने का बड़ा हौसला रहता है कि वे हिन्दी कविता समझते खूब हैं। यद्यपि उनके सम्बन्ध में कहा यह जाता है कि जब वे किसी कवि की कविता पसन्द करते हैं तो सिगरेट होठों में दबाये हुए सबसे पहले उनके मन में जो प्रश्न उठता है, वह होता है—पता नहीं, इसकी उमर क्या है!

इधर इस लिस्ट में दो नाम और बढ़ गये हैं :

शर्मांजी—अगर वह किसी को प्यार करते हैं तो कथनों तथा भावों द्वारा ही नहीं, व्यावहारिक रूप से भी सिद्ध यही करना चाहते हैं कि वे उससे घृणा करते हैं। अर्थात् वे अपनी उस तृष्णा को छिपाना चाहते हैं, जो सौन्दर्य्य-लतिकाओं की ओर से अतृप्त रही है और जिसकी पूर्ति की सम्भावनाएँ अब उत्तरोत्तर घट रही हैं।

विनायक बाबू—उनको नव-युवतियों के बीच में पड़कर साधु बन जाने का बड़ा चसका है। खाने-पीने तथा स्वागत-सत्कार के अवसरों पर वे अपने को आज का महापुरुष अथवा पुरातन युग का ऋषि घोषित करना चाहते हैं। चाय के लिए अगर कोई आग्रह करता है, तो किसी ओर

से संकेत आने पर वे दूध पीना स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु 'ऐसे अवसरों पर दूध पीते हुए उनके सामने कुछ नारीरूपी बकरियों के भरे स्तन रहते हैं!

एक दिन संयोग से पूर्णिमा की मेज का वह दराज खुला रह गया, जिसमें यह लिस्ट रक्खी थी। पर पूर्णिमा को इसका कुछ भी ध्यान नहीं था। दूसरे दिन जब उसने चाभियों के गुच्छे को लेकर एक चाभी से उसे खोलना चाहा, तो उसे पता चला कि अरे यह तो खुला रह 'गया! तब झट से उस दराज को जोर से खींचा, तो देखती क्या है कि जीजी की हस्तलिपि में एक टिप्पणी उसके आगे और लिख गयी है:—

पूर्णिमा—वे वास्तव में सुन्दरी हैं। पर उतनी नहीं, जितनी मोहकता वे अपने व्यवहारों द्वारा प्रदर्शित कर पाती हैं। वे हँस बहुत अच्छा लेती हैं। यहाँ तक कि एक सम्भ्रान्त कवियित्री को भी इस विषय में चाहें तो मात दे सकती हैं। (यद्यपि इसकी सम्भावनाएँ बहुत कम हैं; क्योंकि तब प्रश्न उठेगा इंटलेक्चुअल ब्यूटी का, जिसका उनमें अभाव है।) सम्भवतः वे प्रयत्नशील हैं कि उनके सम्पर्क में आने वाले अधिक-से-अधिक व्यक्ति इस भ्रम में पड़ जायँ कि कहीं वे उन्हें प्रेम तो नहीं करतीं।

इस अभिनय का अर्थ भगवान जाने क्या है! अच्छा हो इस विषय में हिन्दी के उस आलोचक से पूछा जाय, जो फ्रॉयडियन मनस्तत्व का पंडित है और जिसका दावा है कि प्रेमचन्द के बाद हिन्दी फ़िक्शन ह्रास की ओर जा रहा है।

बीस

अर्थ का अभाव मनुष्य को कितना पंगु बना डालता है, इसका अनुभव उसे तब होता है, जब ज़िम्मेदारियाँ नग्न रूप में सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। भीतर का सारा अहङ्कार, सारा दर्प, उस समय चूर-चूर हो

जाता है। उसने अर्थ-संचय न करके कितने अविवेक का काम किया है, इसका पता उसे उसी समय चलता है। वह भाग्य को कोसता है, जिसे उसने अपने वश की वस्तु मानने की चेष्टा नहीं की। वह अपने अकल्पित अदृष्ट को भींखता है, जिसके सम्बन्ध में उसने अपने को असहाय मान रक्खा है। और अन्त में वह उसी समाज के साथ समझौता करती है, कभी जिसके प्रति वह असन्तुष्ट हुआ था। गलती किसकी रहती है, यह प्रश्न दूसरा है। गलती होने पर समझौता कर लेने में कोई हानि नहीं है।

किन्तु आर्थिक बल होने पर थोड़ी-बहुत गलती होने पर भी मनुष्य जो अपने स्वाभिमान और अहङ्कार की रक्षा कर पाता है, आर्थिक हीनता में उसकी सुविधा तो सदा दुष्कर ही रहेगी।

दिन कुछ चढ़ आया है। रेणु को साथ लिये, शर्म्माजी को घूमकर लौटते हुए अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ देर हो गयी है। रास्ते में मिल गया विपिन। बोला—सेठजी आज ही शाम की गाड़ी से बम्बई चले जायँगे। अच्छा हो, आप उनसे इसी समय मिल लें। ताँगा मैं लिये आता हूँ। माँजी को घर पहुँचाने के लिए मैं साथ चला जाऊँगा।

रेणु शर्म्माजी को अपनी ओर ताकता हुआ देखकर बोली—हाँ, ठीक तो है। तुम उनसे अभी मिल लो। मेरे साथ जाने की ऐसी कोई खास जरूरत भी नहीं है। अब यहाँ से घर दूर ही कितना है। मैं अकेली भी जा सकती हूँ।

"ऐसी बात है। अच्छा तो···" शब्दों के साथ शर्म्माजी थोड़ी देर रुके ही थे कि विपिन ताँगा लाने चला गया।

लाल इमली के पास एक ओर खड़े चिन्तित शर्म्माजी बोले—समय प्रतिकूल है, नहीं तो कम्पनी शेयर बिकने में देर न लगती। देखें, सेठ उजागरमल आज क्या उत्तर देते हैं।

"सब कुछ वार्तालाप पर निर्भर करता है"—रेणु ने कहा·—अपनी आवश्यकताओं और कठिनाइयों का वर्णन न करके लगनेवाली पूँजी की

रक्षा और अनिवार्य्य लाभ के सम्बन्ध में ध्यान आकर्षित करना अधिक उपयोगी होगा।

रेणु की सलाह सुनकर शर्म्माजी मुसकराने लगे। बोले—तुमको आपत्ति या संकोच न हो, तो मेरी यह भी इच्छा है कि इसके लिए तुम्हीं चली जाओ।

सचमुच रेणु सोच विचार और संकोच में पड़ गयी। बोली—अच्छी बात है। मैं ही चली जाऊँगी। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि सेठजी लजा जायँ और मुझसे पूरी बात भी न कर पायें। यह भी हो सकता है कि टाल दें। इससे तो अच्छा हो कि मैं तुम्हारे साथ चली चलूँ। बाद में अगर आवश्यकता होगी, तो मैं फिर मिल लूँगी।

शर्म्माजी बोले—हाँ, बस यह तै रहा।

विपिन इसी समय ताँगा ले आया। शर्म्माजी बोले—तै यह हुआ है कि हम सब लोग चलेंगे।

विपिन प्रसन्नता से उछल पड़ा। बोला—अच्छा! मुझे यह निश्चय बहुत पसन्द आया शर्म्माजी।...अब तो सफलता निश्चित है।

तब ताँगे में रेणु और शर्म्माजी पीछे बैठे, विपिन आगे। अभी वे थोड़ी दूर ही चले होंगे कि विपिन बोला—कितने अंधेर की बात है कि बाजार में जाओ, तो गेहूँ मिलना दुर्लभ है। किन्तु कल शाम को मैं लाला केदारनाथ की गोदाम से गुजरा था। वहाँ सयोग से एक मित्र मिल गये और खड़े-खड़े मैं जो उनसे बातें करने लगा, तो क्या देखता हूँ कि अन्दर हजारों बोरे माल भरा पड़ा है। पूछने पर एक पल्लेदार ने बतलाया कि गेहूँ है साहब, गेहूँ।

आश्चर्य्य में डूबकर रेणु बोली—ऐसा भी कहीं हो सकता है!

विपिन ने उत्तर दिया—होने की बात चाहे न हो, पर इतना तो तै है कि हो रहा है।

"तब हो क्यों नहीं सकता? सब कुछ हो सकता है। किन्तु"... शर्म्माजी ने बतलाया—है यह पूँजीवादी अर्थनीति का दुष्परिणाम। एक

युग था जब मनुष्य को पदार्थों की कमी के कारण कष्ट होता था। पर आज जब कि उत्पादन की प्रचुरता है, तो भी मनुष्य को उपभोग के लिए उचित परिणाम में पदार्थ नहीं मिलते। बात यह है कि पूँजीपति चाहता है कि जनता को चहे जितना कष्ट हो, पर उसको अन्धाधुन्ध मिलता जाय। वह अपने कारखाने में एक ओर माल तैयार कराने की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि चाहता है, दूसरी ओर उसकी दृष्टि इस बात पर लगी रहती है कि माँग में कमी न होने पाये; क्योंकि अगर बाजार में माल अधिक पहुँच जायगा, तो माँग में अन्तर आ जायगा। इसलिए वह कभी कारखानों में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या घटाने लगता है और कभी तैयार माल को बाजार में न भेजकर गोदामों में भरना प्रारम्भ कर देता है। कहीं-कहीं तो बाजार-दर को स्थिर रखने के लिए तैयारशुदा माल नष्ट तक कर दिया जाता है। एक ओर जनता-भर पेट भोजन न मिलने के कारण भूखी और नंगी रहती है, दूसरी ओर पूँजीपति माल की खपत बढ़ाने के लिए करोड़ों मन गेहूँ जलाकर नष्ट कर डालता है।

इसी समय विपिन ने प्रश्न कर दिया—किन्तु सरकार भी तो ऐसी दशा में बिक्री की दरों पर नियंत्रण लगा देती है।

शर्म्माजी बोले—उसका परिणाम यह होता है कि जनता में भविष्य के सम्बन्ध में नाना प्रकार के संशय और आशंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। वह यह सोचने का अवसर पाती है कि आगे कौन जाने इस भाव से माल मिले, न मिले। तब वह उसे आवश्यकता से अधिक खरीदने पर विवश होती है। इस प्रकार अन्त में लाभ पूँजीपति ही उठाते हैं। जनसाधारण के जीवनक्रम में ऐसी अनिश्चितता इसी युग—और सो भी पूँजीवादी में—सम्भव हो सकी है।

रेणु बोली—पर यह तो एक प्रकार की हिंसा है।

तब शर्म्माजी ने बतलाया—इस विषय में अमेरिकन खानों के मजदूरों से सम्बन्ध रखनेवाला एक संवाद है:

"एक कोयले की खान का मजदूर है। वह घर पर नहीं है। सर्दी देखकर लड़का अपनी माँ से पूछता है—आज यह बात क्या है माँ, जो तुम आग नहीं जला रही हो! देखती नहीं हो कितनी सर्दी पड रही है।

माँ उत्तर देती है—बेटा, घर में कोयला नहीं है।

"बाजार से क्यों नहीं मँगवा लिया?"—लड़के ने पूछा।

माँ ने बतलाया—बेटा, आजकल तुम्हारे पिता बेकार हैं। उनको काम नहीं मिला और इस कारण हमारे पास पैसे चुक गये हैं।

लड़का फिर पूछता है—पर बाबूजी को काम क्यों नहीं मिला, माँ?

माँ का उत्तर होता है—कोयला बहुत ज्यादा तैयार हो रहा है इसलिये।"

रेणु और विपिन सुनकर स्तब्ध रह गये।

फिर भी स्पष्टीकरण किये बिना शर्म्माजी की तबियत नहीं मानी। बोले—लड़का शीत के कारण काँप रहा है, उसके दाँत कट्‌कट्‌ बोल रहे हैं, क्योंकि उसके घर में आग जलाने के लिए कोयले का अभाव है। कोयले का अभाव इसलिए है कि उनके पिता को काम नहीं मिला और इसी कारण उसके घर में पैसे नहीं हैं। और काम उसे इसलिए नहीं मिला कि कोयला प्रचुर प्रमाण में पैदा हो गया है। अर्थात् कोयले के उत्पादन की प्रचुरता ने उत्पादक के लड़के को सर्दी से ठिठुरने के लिए विवश किया है।

सुनकर रेणु बोली—अर्थात् पूँजीपतियों के गोदामों में लाखों मन गेहूँ भरा पड़ा है, इसलिए हम लोगों को गेहूँ नहीं मिल रहा है।

ताँगा रामनारायण बाजार से गुजर रहा था कि अवधविहारी (विज्ञापन-क्लर्क) जाता हुआ दिखाई पड़ा। तब शर्म्माजी ने ताँगा खड़ा करवा दिया। अवधविहारी को निकट बुलाकर उन्होंने उससे पूछा—कहीं काम मिला?

अवधविहारी ने सिर नीचा कर लिया। कोई उत्तर न देकर वह नाखून खोदने लगा।

शर्म्माजी बोले—नहीं मिला न ?

अवधविहारी ने सिर उठाया। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये थे।

शर्म्माजी ने कहा—फ़ौरन घर जाओ और खाना खाकर आफ़िस आओ और काम सम्हालो।

अवधविहारी ने शर्मांजी के पैरों पर सिर रख दिया। वह सिसकियाँ भरता हुआ रो रहा था।

सिर पर हाथ रखकर सान्त्वना देते हुए शर्म्माजी बोले—पागलपन मत करो! उठो, भविष्य में कभी ऐसी ग़लती न करना। अच्छा ?

अवधविहारी जब चलने लगा तो शर्म्मांजी ने भी ताँगेवाले से कहा—चलो, बढ़ाओ।

इक्कीस

ज्ञान मात्र वह वस्तु नहीं है, जो मनुष्य की तपन से बचा सके। इसके लिये उसमें होना चाहिये साहस और आत्मबल। किन्तु जो लोग भोग-विलास में नित्य डूबे रहते हैं, वे अपने शरीर पर किसी तरह की आँच तक आना गवारा नहीं कर सकते। उनके स्नायु बहुत सेंसिटिव (नाज़ुक) होते हैं। अतएव ऐसे आदमी मारपीट की सम्भावनाओं और विभीषिकाओं से क्षण-क्षण पर आक्रान्त रहते हैं। उनकी आत्मा बलवान नहीं होती, वे अपने साधारण से आराम का भी त्याग नहीं कर सकते। इसका एक कारण है। वे इतने समर्थ भी तो रहते हैं कि पैसे से आराम को ख़रीद सकें और उसी के बल पर परेशानियों से मुक्त भी हो जायँ। यह बल तो उसी में होता है, जो पैसे के मामले में इतना समर्थ नहीं होता, जो साधारण स्थिति का व्यक्ति होता है और जीवन-संग्राम में ठोकरें खा-खाकर पुष्ट बनता है।

इसके सिवा पतनशील मनुष्य की एक और विचित्र किंवा विवश स्थिति होती है। जब लज्जा के बाँध टूट जाते हैं, कलुष से डरने के संस्कार नष्ट हो जाते हैं और पैसे के सम्बन्ध में समर्थ होने के कारण शारीरिक और मानसिक कष्ट-सहिष्णुता की शक्ति भी क्षीण हो जाती है, तो पतन की ओर उन्मुख होता हुआ व्यक्ति उत्तरोत्तर उस ओर बढ़ता ही जाता है। वह जानती है कि यह काम बुरा है, किन्तु फिर भी बुराई से अपनी रक्षा नहीं कर पाता। ग़लतियाँ बढ़ती जाती हैं और मनुष्य उनके जाल में फँसता जाता है।

ब्रजनाथ बाबू अब झूम रहे थे।

कुछ लोगों के लिए स्त्री एक कमज़ोरी होती है। उसी जाति के ख़ान्दानी कुछ ऐसे लोग भी इस दुनियाँ में हैं, जिनके लिए शराब एक कम-ज़ोरी है। ब्रजनाथ बाबू दोनों कमज़ोरियों से घिरे हुए थे। पैसे की उन्हें कमी नहीं थी। उनके पिता एक लाख रुपया नक़द छोड़ गये थे। वह बैंकों में—दो लड़के, एक लड़की और स्त्री—अलग-अलग हरएक व्यक्ति के लिए सुरक्षित था। तो भी वे नौकरी करते थे। वेतन उनका पाँच सौ मासिक था। साधारण रूप से सवा-सौ रुपया मासिक उसमें से निकाल कर वे इस राग-रंग में व्यय किया करते थे। साहब लोगों की तरह वे सुबह की चाय चारपायी पर ही लेते, उसके बाद नित्यकर्मों की बारी आती थी। दफ़्तर से लौटकर वे सीधे घर कभी न आते। साधारण रूप से प्रायः आठ बजे और कोई विशेष कार्य रहता अथवा नवीन चिड़िया फँसनेवाली होती, तो रात को लौटते हुए ग्यारह बजा देते थे। कार घर में थी। पर वे उसका व्यवहार नहीं के बराबर करते। दफ़्तर जाने और उधर से ले आने के लिए उन्होंने एक विशेष प्रकार की अपनी इच्छानुसार बनवाई हुई गाड़ी रख छोड़ी थी और उसका कोचवान वे इतना विश्वस्त रखते थे कि क्या मजाल कहीं कोई बात किसी आदमी से कह दे। इसके लिए उसके पास एक अमोघ अस्त्र था रुपया। प्रायः दूसरे-तीसरे महीने वेतन के अतिरिक्त भी वे उसे दो-चार रुपये ऊपर से दे देते थे। पर इसके लिए शर्त यह थी कि

जरूरत पड़ने पर उसे स्वयं माँग लेना पड़ता था। वे स्वभाव के मीठे, व्यक्तित्व के प्रभावशाली, हृदय के भीरु और अपने काम में चतुर थे।

हाँ, तो झूमते हुए ब्रजनाथ बाबू बोले—मैं क्या जानूँ कि वह टीचरेस कौन है। (वे अपने मन में बराबर यह सोच रहे थे कि उन्हें कोई बात स्वीकार नहीं करनी है) तुम मेरे साथ रहतीं, तो जानतीं वह कौन है और कैसा उसका हुस्न है।...तुम जानती हो, हुस्न की क्या क़ीमत होती है? मैं जानता हूँ। मैंने अदा की है। तुम क्या जानो। लेकिन तुम हसीन तो बहुत हो।...तुमको वो गाना आता है?

"कौन?"

"वही, "ऐ दर्द जरा दम ले, करवट तो बदलने दे।"

"आता तो है। लो, सुनाती हूँ—"

और वह वास्तव में सुनाने लगी। ब्रजनाथ बाबू खड़े होकर नाचने लगे। नाचते-नाचते वे नशे को झोंक में बूँदी के ऊपर गिरने ही वाले थे कि उन्हें छाती से लगा लिया।

ब्रजनाथ ने चुम्बन लेते हुए पूछा—तुमने मुझको धोखा देकर क्यों बुलाया?...बोलो, ऍं...! तुमने मेरा भेद जानकर क्यों धमकाया? बोलो ऍं...। क्या मैं तुम्हारे हुस्न की क़ीमत यों अदा नहीं कर सकता था? बोलो, ऍं...!

"तो आज तुम मुझे कितने रुपये दे रहे?" बूँदी ने पूछा।

"आज मैं रुपया लेकर कहाँ आया। आज तो जेब में मुश्किल से दस रुपये होंगे। पर वे तो तुम्हारी न्यौछावर के लिए भी काफ़ी न होंगे बुन्दन।"

"यह मैं नहीं मानती। तुम इतने बड़े आदमी हो। बाजार से दस-पाँच हजार रुपया तुमको महज रुक़्क़े पर मिल सकता है। मैं तो सिर्फ़ दो हजार माँगती हूँ।"

"लेकिन इतना रुपया मैं एक साथ किसी से कैसे माँग सकता हूँ। मेरी इज्जत लेना चाहती हो?"—कहते हुए ब्रजनाथ बाबू नशे में होने पर भी कुछ सावधान हो गये।

"और मेरी इज्जत की कोई क़ीमत नहीं है ?" भृकुटियाँ तरेर कर बूँदी बोली।

"वेश्या को भी कोई इज्जत होती है! नाली के कीड़े उससे फिर भी कुछ पाक होते हैं।"

ब्रजनाथ के स्वर में कुछ तीव्रता थी।

बूँदी की मुद्रा विकृत हो गयी। होंठ काटती हुई वह बोली—और अमीरों के घरों की बहू बेटियाँ कैसी होती हैं क्या मैं आपको बतलाऊँ! आपकी बहन, जिसका नाम मालती है, किस किसके साथ पार्कों और आम सड़कों पर यारों से गले में हाथ डलवाये और होटलों में उन्हें सीने से चपकाये घूमती रही हैं, आपको पता नहीं है उनका ?

"तुम झूठ बोलती हो। तुमने ऐसी बात कही है कि तुम्हारे मुँह में कीड़े पड़ेंगे।"

"मैं ठीक कहती हूँ। मेरे पास फ़िल्म रक्खे हैं। आप जब चाहें तब उन्हें देखकर मेरी बात की दिलजमई कर सकते हैं...और आप खुद क्या हैं! मेरे पास उस चिट्ठी की कॉपी है, जिसमें जानकी से आपका नाजायज़ ताल्लुक़ साबित है। शीशे में अपना मुँह न देख लीजिये! वह मासूम बच्चा, जो पेट से लहू और लोथड़ों की शकल में निकाला गया, क्या आपके मुँह पर स्याही पोतने के लिए काफ़ी नहीं है ?

ब्रजनाथ बाबू का नशा हिरन हो गया है। वे ग़श खाकर गिर पड़ते हैं। बूँदी ताली बजाती है। ठंडे पानी की छींटे और हवा का उपयोग हो रहा है।

अब चार बज रहे हैं। ब्रजनाथ बाबू की तबियत कुछ स्थिर हुई है। किन्तु उनका सिर दर्द कर रहा है। वे सोच रहे हैं कि कहाँ आकर फँस गया। किन्तु बारम्बार मालती की बात सोचने लगते हैं। घृणा अन्दर फैलकर उनके रोयें-रोयें को जैसे नोचने लगती है।

थोड़ी देर को बूँदी आराम करने के लिए चली गयी थी। द्वार पर जो आदमी उसने ब्रजनाथ बाबू की निगरानी के लिए बैठा दिया था ज्योंही

उसने देखा, वे उठ बैठे हैं, त्योंहीं उसने बूँदी को सूचित कर दिया। तुरन्त बूँदी वहाँ आ पहुँची। कुटिल मुसकान के साथ सहानुभूति प्रकट करती हुई बोली—मुझे बड़ा अफ़सोस है कि मैंने नाहक़ आपको तकलीफ़ दी। मुझे पता नहीं था कि आप लिफ़ाफ़िये रईस हैं, असल में आपके भीतर पोल है और आप वक्त जरूरत पर दस-पाँच हजार रुपये भी अपनी आबरू बचाने के लिए खर्च नहीं कर सकते। रोजमर्रा के खर्चे-भर का इन्तिजाम जो आपके बुजुर्ग लोग कर गये हैं, उसी के भरोसे आप खयाली लुत्फ़ उड़ाते रहते हैं। अगर मुझको पहले से यह इल्म होता तो मैं आपको क़तई तकलीफ़ न देती। आप यह भी न सोचें कि मैंने आपको जबदरस्ती रोक रक्खा है। आप जब चाहें तब ख़ुशी-ख़ुशी जा सकते हैं। हालाँ कि आपके आराम के लिए यहाँ हर एक चीज मुहैया है। मैं हर तरह से आपकी खिदमत करने के लिए तैयार हूँ। रुपये की अजहद जरूरत न होती, तो मैं आपको क़तई तकलीफ़ न देती। अब भी आपको मैं तकलीफ़ देना नहीं चाहती। यही जरा-सा खयाल हो आता है कि आप एक इज्जत-दार आदमी हैं और अगर आपकी बदनामी होगी, तो पता नहीं, आपके दिल पर क्या गुजरे। ऐसे मौक़ों पर आदमी क्या नहीं कर गुजरता! इसी वक्त मैं आपके चेहरे को जो देखती हूँ, तो मुझे एक खौफ़नाक खयाल हो आता है। आज जब आप तशरीफ़ ले आये थे, तो आपका चेहरा गुलाब के फूल के मानिन्द खिला हुआ था। अब मगर इस वक्त अगर कोई देखे, तो क़सम से, वह डर जाय। मगर मैं आपको ज्यादा तकलीफ़ नहीं दे सकती। अगर आपकी तबियत ख़ुश रहेगी, तो कभी-न-कभी आप मुझे फल दी जायँगे। रुपया मुहब्बत के आगे कोई हस्ती नहीं रखता। मैं आपको अभी लालपरी से मुलाक़ात कराये देती हूँ। बात-की-बात में वह आपका ग़म ग़लत कर देगी।

और इसके बाद फ़ौरन बूँदी ने ताली बजा दी। सेविका आवाज के साथ हाजिर हो गयी।

इस समय ब्रजनाथ बाबू के मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विचार आ-जा

रहे थे। वे यह जानते हैं कि यह वेश्या है। उन्हें अच्छी तरह से इस बात का पता है कि वेश्या के हृदय नहीं होता। वह कोई भी काम कर सकती है। कुछ भी उससे बचा नहीं होता। वह जिसके गले में बाहें डाल कर रो रही है, सम्भव है, शाम को ही उसे जहर पिला दे। झूठ बोलने, धोखा देने, रूप, सौन्दर्य और कलात्मक प्रदर्शनों, मोहों और आकर्षणों में फाँसकर वह किसी का भी सर्वस्व हरण कर सकती है। किन्तु वह अपनी तीन मिनट की बातचीत में कितने रंग बदल सकती है, इसका प्रत्यक्ष ज्ञान उन्हें इसी समय हो रहा था।

घृणा से मुँह बनाकर ब्रजनाथ बाबू बोले—तुम लोग कितनी मक्कार होती हो, इसका मुझको आज पता चला।

"आप बिल्कुल ठीक कहते हैं ब्रजनाथ बाबू" तपाक से बूँदी बोली—"और आप लोग कौन हैं, यह भी क्या मैं आपको बतलाऊँ? आप लोगों के पास रुपया भरा पड़ा रहता है, तो भी आप लोगों के यहाँ नौकरों को इतनी काफ़ी तनख़्वाह नहीं मिलती कि वे बेफ़िकरी के साथ आराम की जिन्दगी बिता सकें। उनको आपने इस क़ाबिल बना रखा है कि उनमें मालिक के लिए ख़ैरख़्वाह रहने का ख़याल तक मर गया है। वे लोग अदना-से-अदना और ज़लील-से-ज़लील बातें मौक़ा पड़ने पर लोगों को बतलाने में ज़रा भी नहीं हिचकते। वे निगाह बचाकर, मालिकान की लापरवाही से चोरी करते, चीज़ें उड़ाते और कभी-कभी तो चोरी, डाका और बहू बेटियों के भगाने तक में भेदिया बनकर और दूसरे तरीक़ों से इमदाद पहुँचाने को मजबूर होते हैं। आप उनके बीमार हो जाने पर (तनख़्वाह के अलावा) उनकी क्या मदद करते हैं? ज़्यादा तनख़्वाह पानेवालों को निकालकर कम पर राज़ी हो जानेवाले नौकर आप लोग अपने दफ़्तरों और कारख़ानों में नहीं रखते? हिसाब-किताब के मामले में ग़बन से आप लोग एकदम पाक हैं! ज़मीन-जायदाद के बटवारे के लिए इन्साफ़ और सचाई को ताक़ में रखकर पैसे के बल पर ही, अदालतों से आप भाई-भतीजों और हिस्सेदारों का हक़ नहीं मारते? पैसा काफ़ी जमा रखने पर

भी ख़्वाहिशमन्द; मजबूर और मुसीबतों में मुब्तिला गरीबों और यतीमों को ही नहीं, मौक़ा पड़ने पर अपने अजीज़-से-अजीज़ आदमी तक को बैरंग वापस नहीं कर देते ? क्या आप लोगों में ऐसे लोगों की मिसालें नहीं मिल सकतीं, जो बहिनों-बेटियों और भतीजियों तक का रुपया हड़पने से बाज़ नहीं आते ? एक ही हालत, मौक़े और मामले को कई आदमियों से जुदा-जुदा तौर से बतलाने में आप लोग कभी चूकते हैं ? आप कितने मक्कार हैं, ज़रा अपने आपसे पूछिये।"

ब्रजनाथ बाबू सन्न रह गये।

बूँदी बोली—ज़रा सोच-समझकर बातें किया कीजिये। मैं सिर्फ़ इस ख़याल से चुप थी कि जब मैं आपसे मुहब्बत करती हूँ, तब मुझे आपको नाराज़ नहीं करना चाहिये। लेकिन आप मेरी हर बात को ग़लत समझते हैं, यह भी कोई शरीफ़ाना बर्ताव है !

"मैं माफ़ी चाहता हूँ बूँदी"—ब्रजनाथ बाबू ने कहा—'मुझे अफ़सोस है कि मैंने तुम्हारा जी दुखाया। रुपया मैं तुमको दो हजार शर्मा सराफ़ से ला दूँगा। पर पहले तुमको यह बताना पड़ेगा कि मेरी और मालती की बाबत ये बातें तुमको कहाँ से और कैसे मालूम हुईं।"

"हैं-हैं ! आप तो बच्चों की-सी बातें करते हैं ब्रजनाथ बाबू।"—बूँदी ने कोच से उठकर कहा—"यानी आप मुझे बेवकूफ़ समझते हैं।"

ब्रजनाथ—क्या तुमको मेरी बात पर यक़ीन नहीं ? क्या तुम सोचती हो कि इस हद तक राजी होकर मैं पलट जा सकता हूँ ?

कुछ टाल देती हुई बूँदी बोली—बात तो कुछ ऐसी ही है। पर ख़ैर। मैं माने लेती हूँ। चलिये, पहले थोड़ा जलपान कर लीजिये।

गोविन्दा सामने खड़ी थी। बूँदी ने पूछा—सब तैयार है न ?

वह बोली—हाँ, सब तैयार है।

"पर मुझे तो कुछ इच्छा नहीं है।"—ब्रजनाथ बाबू ने कुछ अरुचि का भाव दिखलाकर कहा।

गोविन्दा चली गयी।

बूँदी उठी और उसने ब्रजनाथ बाबू के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—इतनी-सी बात में नाराज़ हो गये। यह भी नहीं हुआ कि पहली मुलाक़ात के ही सिलसिले में समझ लेते कि इतना तो नज़राना मेरा होता है। उठिये, चलिये।

पछताता हुआ ब्रजनाथ बोला—इस तरह की मात मैंने कहीं नहीं खायी।

बूँदी खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—अच्छा, तुम इसमें अपनी मात समझते हो!

"क्यों, यह मात नहीं तो और क्या है कि धौंस के साथ, जैसे पिस्तौल की नोक पर, रुपये वसूल कर रही हो!"

"रुपया देते हुए वाक़ई बहुत खल रहा है!"

"क्यों, ख़ुशी से रुपया देना और बात है; पर यह तो सरासर लूट है, डाका है—हत्या!"

"अच्छा जाओ, मैं सब छोड़ती हूँ।...अब तो करलो कुछ जलपान।

ब्रजनाथ बाबू उठे, मुसकराये और बोले—तुम बड़ी शैतान हो। मैं तुमको कभी नहीं भूल सकता।

बूँदी खिलखिलाकर हँसने लगी। बोली—ऐसा! नहीं, ऐसी बात नहीं है।

ब्रजनाथ उसके साथ दूसरे कमरे में चले गये।

परन्तु ज्योंही वे उस कमरे में पहुँचे, त्योंही क्या देखते हैं कि वहाँ एक ओर कुरसी टेबिल पर एक फ़ोन लगा है; दूसरी ओर दूसरी टेबिल पर मिठाई-नमकीन और चाय है; साथ ही शेम्पेन और सोडा की बोतलें और गिलास।

फ़ोन की ओर संकेत करती हुई बूँदी बोली—सुभीते की जगह है। यहीं बैठे बैठे आप चाहे जिस शराफ के यहाँ से रुपया मँगा सकते हैं।

ब्रजनाथ अनुभव कर रहा था, बिल्ली जिस तरह चूहे को खेलाती है, उसी तरह आज यह मुझे खेला रही है। उसकी इच्छा हुई वह पुलिस को

फ़ोन कर दे की ऐसा संगीन मामला है। परन्तु बूँदी बराबर उसकी दृष्टि और भंगिमा को ताड़ रही थी। वह पास ही बिल्कुल सटकर बैठ गयी और डाइरेक्टरी देती हुई बोली—नम्बर खोजकर बतलाइये, किसको फ़ोन करूँ। आपको सिर्फ़ इतना कहना पड़ेगा कि "हाँ, मैं हूँ ब्रजनाथ कपूर। आपको ठीक बतलाया गया है। मैं इस वक्त वाक़ई रुपये की जरूरत में हूँ। किसी मातबर आदमी के हाथ दो हज़ार रुपये मेस्टनरोड पर ... की बिल्डिंग में (दस-दस के नोटों की शकल में) भेज दीजिये। मैं वहाँ मिलूँगा और रसीद उसी वक्त दे दूँगा। ये रुपये आपको मैं कल इसी दूकान पर दे जाऊँगा। मैं इस वक्त अपने आफ़िस से बोल रहा हूँ।"

ब्रजनाथ बाबू ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं यह सब कुछ नहीं करूँगा। अपना आदमी साथ कर दो, उसी को मैं रुपया दे दूँगा।

बूँदी ने भी रुखाई के साथ कहा—अच्छी बात है। मुझे अब आपसे दूसरी तरकीब से रुपये वसूल करने पड़ेंगे। मुझे आदमी भेजने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। आप ख़ुशी से मुझे मेरे मकान पर दे जायँगे।

बूँदी के इस कथन के बाद ब्रजनाथ बाबू एक बार फिर सन्न रह गये। किन्तु एक मिनट के बाद जब वह चाय बना रही थी ब्रजनाथ बाबू ने फ़ोन हाथ में लेकर चट से अंग्रेज़ी में कुछ कह कर फ़ोन वहीं रख दिया।

उधर ब्रजनाथ बाबू को फोन करते देखकर उत्फुल्ल बूँदी बोली—एक बात पूछूँ, अगर बुरा न मानें।

गम्भीरता के साथ ब्रजनाथ बाबू ने कहा—बुरा मानने की बात का डर तुमको भला मुझसे क्यों होने लगा?

बूँदी फ़ोन की बात सुन ही चुकी थी। अतएव अवसर देखकर बोली—अच्छा यह बात है!

उसने पुकारा—रमज़ान!—हुसेनी!

आवाज़ के साथ रमज़ान वहीं आ पहुँचा और हुसेनी ने कहा—हुज़ूर।

बूँदी बोली—देखो, बाबू को नहखाने में ले जाओ और आध घंटे बाद खाने की इत्तिला दो।

तब एक ओर रमजान ने ब्रजनाथ बाबू का हाथ पकड़ लिया, दूसरी ओर हुसेनी ने।

ब्रजनाथ बाबू ने पहले तो हाथ झटकते हुए कहा—क्या करते हो!

रमजान बोला—तो फिर सीधी तरह चले चलिये न।

ब्रजनाथ ने अब एक ओर तो यह देखा कि किसी तरह खैरियत नहीं है, दूसरी ओर उन्हें भरोसा था कि पुलिस चल चुकी होगी। इन दोनों स्थितियों से परे एक बात और थी। वे सोचते थे कि रुपया घूस देकर यह अपने को झट छुड़ा तो लेगी ही, मेरा जाने क्या हाल हो।

इस अमांगलिक कल्पना से वे काँप उठे। फिर सोचने लगे—यदि मैं छूट भी गया, तो बाद में अगर इसने मेरा भेद खोल दिया, जिसके लिए वह तत्पर भी है, तब क्या होगा! और उस स्थिति की कल्पना करके वे नितान्त अस्थिर हो उठे!

एक क्षण यदि और व्यतीत हो जाता तो दोनों आदमी ब्रजनाथ बाबू को घसीट कर ले जाने के लिये तत्पर हो जाते। किन्तु उसी क्षण उन्होंने कहा—मैं रुपया अभी मँगाये देता हूँ, बूँदी। मेरे साथ इस तरह का बर्ताव मत करो।

"छोड़ दो तुम लोग बाबू साहब को।" कथन के साथ तुरन्त उनको छोड़ देते ही फिर ज़रा भी रुके बिना कुटिल मुस्कान के साथ बूँदी ने कह दिया—आइये, ज़रा चाय पी लीजिये।

पर ब्रजनाथ बाबू ने तुरन्त फ़ोन उठा लिया, मिलाया और बोले—हाँ, वह बात यों ही थी। फ़ैसला हो गया। तकलीफ़ के लिए माफ़ी चाहता हूँ।...जी?...शुकराना? अच्छी बात है। कल मिल जायगा। फिर उन्होंने बूँदी के प्रस्तावानुसार एक शराफ़ से वास्तव में दो हजार रुपये भेजने के लिए कह दिया।

आतंकपूर्ण, चिन्त्य और अवाञ्छनीय वातावरण उपस्थित हो जाने के कारण ब्रजनाथ बाबू पसीने से लथपथ हो गये थे। अक्टूबर महीना चल रहा था, फिर भी उनको पंखे की उस समय आवश्यकता जान पड़ती थी।

मुसकराते हुए बूँदी ने पूछा—'आप मुझसे नाराज तो नहीं हैं ?"

और.........उसने कप ब्रजनाथ के सामने बढ़ा दिया; साथ ही मिठाई और नमकीन की तश्तरी।

किन्तु उन्होंने कहा—पर मैं इस वक्त एक दूसरी चीज चाहता हूँ।

बूँदी बोली—बतलाइये।

ब्रजनाथ बाबू ने लालपरी की ओर संकेत करते हुए कहा—"लेकिन जल्दी। फिर रूमाल से वे अपना मुँह पोछने लगे।

साहस

लड़ना साधारण बात नहीं है। जिसमें साहस, आत्मबल और क्रियात्मक कल्पना-शक्ति नहीं, वह कभी लड़ नहीं सकता। किन्तु मनुष्य की एक ऐसी स्थिति भी होती है, जब वह दूसरों से न लड़कर अपने आपसे लड़ता है। ऐसी दशा में वह प्रायः उसी संकल्प और कर्म की ओर बढ़ता जाता है, जिसको उसका अन्तःकरण तो स्वीकार नहीं करता, किन्तु जीवन और जगत के नाना प्रश्नों से भारानत होने के कारण जिसमें उसके विवेक को अपूर्व तृप्ति मिलती है। ऐसा व्यक्ति संसार के ऊपर उठकर गगनविहारी हो जाता है। जीवन की नग्न यथार्थताएँ वह स्वीकार न करके मनुष्य के उस रूप की कल्पना को साकार देखना चाहता है, जो साधारण न होकर सर्वथा असाधारण ऊँचा अपवाद है।

किन्तु मनुष्य के मन और उसके कार्य-कलाप की रेखायें उसके इस द्वन्द्व को कभी छिपा नहीं सकतीं। और विकृति के रूप में हो या उत्सर्ग के रूप में, मनुष्य सदा मनुष्य ही बना रहता है।

उस दिन के बाद, जब रेणु ने तबियत खराब होने के कारण रात के वक्त मालती को अपने यहाँ रोक लिया था, न तो शर्मा जी ने मालती के सम्बन्ध की कोई चर्चा की, न रेणु ने ही उस प्रसङ्ग को कभी फिर से उठाया। पर-

गृहस्थी से लेकर सार्वजनिक जीवन तथा संसार की आधुनिक गति-विधि तक नित्य ही दोनों चर्चा करते; पर मालती का नाम दोनों में से कोई भी जान-बूझ कर नहीं लेता था। मानों इस विषय में दोनों एक-दूसरे के मन की स्थिति तथा भविष्य के सम्बन्ध में उसकी निर्धारित नीति से पूर्णतया परिचित हों; मानों उन्होंने आपस में यह होड़ लगा ली हो कि देखें कब तक वह या वे रात की उस घटना को अत्यन्त साधारण किंवा नगण्य बनाये रख सकेंगे।

इधर दोनों में कुछ दिनों से एक बात और चल रही थी। रेणु उत्तरोत्तर अपनें स्वास्थ्य-सुधार तथा सौन्दर्य्य-प्रसाधन में अग्रसर हो रही थी। अब पहले की अपेक्षा वह अपने वस्त्र कहीं अधिक उज्ज्वल रखती थी। इस विषय में वह इतनी सतर्क थी कि किसी भी समय यदि उसे शर्म्माजी के साथ चल देने का अवसर आता, तो बिना फिर से वस्त्र बदले हुए वह उसी दशा में चलने को तत्पर हो सकती थी। साड़ी, बॉडिस, ब्लाउज़, चोटी और चप्पल; यहाँ तक कि काग़जात रखने का बैग तक उसका सदा अपनी जगह पर तत्पर रहता था। तबियत में उलझन रहने पर भी वह अपने भावों को छिपाकर हँसकर बातें कर सकती थी। पैदल चलते चलते थक जाने पर भी उसे थकान स्वीकार करते एक तरह की झिझक होती थी। सवेरे पाँच बजे उठकर वह घूमने के लिये चल देती और सात-साढ़े-सात के पहले कभी नहीं लौटती थी। जिस समय वह लौट कर आती, उस समय घर का कोना-कोना तक उसे साफ़-सुथरा मिलता। रसोई में चाय का पानी गरम मिलता और साथ में खाने के लिए पकौड़ी, शकरपारा अथवा हलुवा; इस तरह की कोई-न-कोई चीज़ तैयार रहती। रञ्जन तब तक नहा-धो कर कपड़े बदल चुकता था। या तो पता चलता कि वह सुधा के घर खेलने चला गया है, अथवा सुधा स्वतः वहाँ उसके साथ खेलती मिलती। चाय-चक्रम से निपट कर रेणु लगे हाथों तुरन्त रसोई चढ़ा देती और साढ़े नौ या दस बजते-बजते खाना तैयार हो जाता। इसके बाद शर्म्माजी तो दफ़्तर चले जाते, रेणु शर्म्माजी के, अपने और रञ्जन के पहनने के कपड़े सम्हालती।

सीवन टूटी हुई, या कहीं कुछ फट ही गया तो उसे सी दिया, बटन टूटी हुई तो लगा दी। कपड़े धुलने के लिए इकट्ठे हुए तो लिख कर धोबी के यहाँ डलवा दिये। हिसाब लिखती, खिलौनों द्वारा रञ्जन को पोट-फुसलाकर अक्षर-ज्ञान कराने की चेष्टा करती। इसके बाद वह स्वतः कुछ पढ़ती। या अगर तबियत में कुछ उमंग या सूझ उत्पन्न हुई, तो कुछ लिखने की भी चेष्टा करती। पाँच बजते-बजते शर्म्माजी आ जाते। तब फिर चाय-चक्रम चलता और उस समय की सारी व्यवस्था पिछले दिन की अपेक्षा सर्वथा बदली मिलती। ऐसी-ऐसी चीजें वह तैयार करती, शर्म्माजी जिनकी कल्पना तक नहीं कर पाते थे। खाने के सम्बन्ध में स्वभावतः उच्च रुचि रखने के कारण अब पाँच बजे घर पहुँच जाने के विषय में शर्म्माजी पहले की अपेक्षा अधिकाधिक नियमित होते जाते थे। शुरू से ही वे कुछ ऐसा कार्य-क्रम रखते कि पाँच-बजते घर अवश्य पहुँच जाते। घर की इस सुव्यवस्था के सम्बन्ध में विपिन ने अन्तरंग क्षेत्र में कहीं-कहीं चर्चा भी कर दी थी। इसका फल यह हुआ कि चलते समय या तो विनायक उनके साथ हो लेता, या विपिन। निदान चाय-चक्रम पहले की अपेक्षा अब अधिक आकर्षक भी हो गया था। डेढ़-दो घंटे में लोग चल देते और शर्म्माजी भी कार्यवश बाहर निकल जाते; तब फिर रसोई चढ़ती और नौ-साढ़े-नौ बजे शर्म्माजी आ जाते। उस समय खाना साथ-साथ चलता। शर्म्माजी उसके बाद अपने कमरे में जाकर कुछ पढ़ते-पढ़ते सो जाते। किन्तु रेणु को तुरन्त निद्रा आ जाती। शर्म्माजी अक्सर जगने भी न पाते कि वह उठ कर घूमने को तत्पर हो जाती थी। इस प्रकार दिन-भर वह काम में लगी रहती थी। वह खूब घूमती थी, खूब खाती थी और साथ ही खूब सोती भी थी। पहले उसे रात को नींद कम आती थी। अब शर्म्माजी को विश्वास हो उठा है, यद्यपि अभी उन्होंने उसे प्रकट नहीं किया कि वह नींद की रोगी हो गयी है। पहले घर के हर काम में अस्त-व्यस्तता रहती थी। अब हर एक काम उसकी एक सुरुचि प्रदर्शित करता है। पहले रञ्जन वेश-भूषा में एक साधारण श्रेणी के घर का लड़का जान

पड़ता था। अब सफ़ाई, कट और चुस्ती से जान पड़ता है, वह किसी डिस्ट्रिक्ट-मैजिस्ट्रेट से कम प्रतिष्ठावाले व्यक्ति का पुत्र नहीं है।

रेणु के इस परिवर्तन में मालती का कितना बड़ा हाथ है, यह शर्म्माजी से छिपा न था। स्वास्थ्य, सौन्दर्य्य, सजावट और मानप्रतिष्ठा के प्रति स्पर्द्धा की भावना जगाकर, माँ के द्वारा एक काफ़ी अच्छा उपहार दिलाकर और स्त्री का पुरुष के अन्दर जो एक स्थिर स्थान हो जाता है, उसके प्रति उसे सतर्क, सावधान और जागरूक बनाने में अगर कोई आधारभूत कारण है, तो वह एक मात्र मालती है। और मालती की इस चेष्टा में उसका कोई कलुषित अभिप्राय है, यह भी शर्म्माजी नहीं मानते। यद्यपि वे मानते हैं कि रेणु ऐसा ही समझ रही है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या मालती ने रेणु को किसी प्रकार की क्षति पहुँचायी है? क्या उसने रेणु के अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया है? क्या वह समझ बैठी है कि शर्म्माजी के हृदय में रेणु जिस स्थान पर आसीन है, वहाँ से उसको जबरदस्ती हटाकर वह वहाँ स्वयं बैठ जाना चाहती है? यदि ऐसी बात नहीं है, तो उसके प्रति उपेक्षा का यह भाव आखिर अर्थ क्या रखता है?

रेणु की स्थिति दूसरी है। वह मालती की कितनी क़ायल है, इसे वह स्वीकार करने को सदा तत्पर है। वह तत्पर है कि जब कभी अवसर आवे, तो वह इस बात को सच्चे हृदय से प्रकट भी कर दे। उसने उसकी निद्रा भंग की है, जागरण का सन्देश उसी ने दिया है। जितनी भी स्फूर्ति, उज्ज्वलता, उमंग और कर्मधारा वह अपने में पा रही है, सब मालती की ही प्रेरणा का फल है। किन्तु वह नहीं मानती कि मालती ने शर्म्माजी के हृदय में वही स्थान प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की, जो मुझे प्राप्त है। मेरे साथ उसने जो भी आत्मीयता प्रदर्शित की, उसके मूल में उसका अभिप्राय यही था कि जैसे भी हो, शर्म्माजी के हृदय में आसन जमाने में वह कृतकार्य हो जाय।

किन्तु मालती ने ही वह यदि इस प्रकार की शिकायत रखती, तो भी स्थिति दूसरी होती। वह तो जानती है कि न चाहने पर भी, अपनी ओर से सचेष्ट न होते हुए भी—यहाँ तक कि अनेक प्रकार से और अनेक बार हतोत्साह करने पर भी, उनके अंतराल में कहीं-न-कहीं कोई ऐसी भूमि अवश्य है, जहाँ मालती जमकर बैठ गयी है, इतनी कि टस-से-मस नहीं हो रही। वह नहीं जानती कि इसका कारण क्या है। उसे आश्चर्य्य है कि ऐसा क्यों है! उसने अपने इस स्थिति पर ध्यान देने और उसके मूल और मूलतम आधारों के अन्वेषण करने की जितनी ही अधिक चेष्टा की है, उतना ही अधिक उसका यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि मुझमें अगर कोई कमी है, तो वह यह कि मैं बन गयी हूँ।—मैं विवाहिता हूँ और गृहिणी का पद मैंने प्राप्त किया है। मैं सुलभ हूँ, निकट हूँ, प्राप्य हूँ, आबद्ध और अनिवार्य्य हूँ। आज किसी प्रकार यदि मैं दूर होती और होती प्रयत्न से प्राप्त होने वाली, तो मेरी स्थिति आज की-सी न होती। मैं उनकी कल्पना की वस्तु होती, मेरे सम्बन्ध में वे सोचा करते। मेरे एक-एक पत्र की उनको परवा होती। कहीं दूर मैं जाती भी देख पड़ती, तो चाहे मेरे पास आने की उनको परवा न होती; किन्तु इतना तो वे जरूर सोचते कि काश वह मेरे पास आती...!

इस प्रकार वेणु काम में जरूर लगा रहता है, चारों ओर से उसकी चेष्टा भी यही है कि वह कहीं से भी कभी किसी अभाव से ग्रस्त न हो; किन्तु बारम्बार वह यह प्रश्न सोचा करता है कि क्या पुरुष और स्त्री के मध्य में यह अनिवार्य्य मिलन-संविधान ही उनके बीच निरपवाद माधुर्य्य के संस्थापन और संरक्षण में एक बाधा नहीं है? मालती उस दिन यही तो कह रही थी!

वेणु स्वभाव से एकान्तप्रिय [illegible] है और [illegible] है। उसके मन में [illegible] है कि [illegible] विवाह न होने पर भी। [illegible] है। उसकी [illegible]

खुल कर टेढ़ा हो जाता है। भृकुटियाँ नागिन की पूँछ बनने लगती हैं। और होंठों को तो वह दाँतों से क्षतविक्षत तक कर डालना चाहती है। शर्म्मा जी उससे एक बात करते हैं, तो वह उसी प्रसंग की तीन बातें सुना देती है। वे जरा-सा मुसकराते हैं और छेड़ने को तत्पर दीखते हैं, तो वह खिलखिला कर हँस देती है। खड़ी हुई तो हँसती-हँसती पलंग पर गिर-गिर पड़ती है। शर्म्माजी कभी चिबुक को तर्जनी से छू देते हैं, तो वह हाथ के झटके के साथ एक तीखे कटाक्ष से, एक क़दम पीछे हटकर, कहती है—जाओ अपना काम देखो! उसके होठों में मन्द मुसकान, मुख पर लाली और नयनों में नशा झलकता है। किन्तु भीतर-ही-भीतर वह जैसे अंगारों के साथ खेल रही हो। वह अपने में एक ऐसा हाहाकार छिपाये है, जो खेल रहा है, सो रहा है और पल रहा है।

शर्म्माजी को भी मालती याद न आती हो, यह बात नहीं है। क्या आफ़िस, क्या घर, क्या मित्रों से वार्तालाप करते और क्या सम्पादकीय स्तम्भ के लिए कलम उठाते हुए, खाते-पीते, सोते-जागते, तात्पर्य्य यह कि दिन-रात में पचासों बार वे उसका स्मरण करते हैं। उसका बोलना और मुसकराना, उसका कण्ठस्वर, उसका वायोलिन बजाना, उसकी छवि और वेशभूषा, प्रसाधन और उसके चुनाव—सभी कुछ उसे याद आते हैं। एक स्मृति है, जो हृदय से टलती नहीं है। एक लकीर है, जो हृदय पर खिंच कर रह गयी है। एक सरिता है, जो बह रही है। एक सागर है जो लहराया करता है।

किन्तु हृदय के भीतर, इस सब के ऊपर, एक आदर्श भी है। वे सोचते हैं कि यह सब तो व्यक्ति से सम्बद्ध है। यह तो मोह है, एक प्रलोभन, एक मरीचिका, एक छलना। इसमें कोई तत्व नहीं है।

असल चीज़ यह है कि शरीर का खेल मेरे जीवन और उसके आदर्श से टकरायेगा और मैं उसे सहन कर लूँगा! ऐसा कैसे हो सकता है! मुझे जो कुछ होना है, हो जाय; किन्तु मैं अपने आदर्श को कैसे त्याग सकता हूँ! मैं वासना को अपने ऊपर आक्रमण करते हुए कैसे देख सकता हूँ!

मैं रेणु के साथ बँधा हुआ हूँ। उसके अधिकारों का अपहरण मुझसे कैसे हो सकता है! मैं ऐसा नहीं कर सकता, नहीं कर सकता!

शर्माजी के अन्दर एक द्वन्द्व और है। वह है नैतिकता की रक्षा। वे मानते हैं कि यदि मनुष्य समाज की नैतिक मान्यताओं की उपेक्षा करेगा, तो वह अपना घर और कुटुम्ब ही नहीं, अपने समस्त समाज को विपाक्त करके समस्त मानवता की हत्या कर डालेगा। मनुष्य जीवन की अपेक्षा वह पशु-जीवन को अपना लेगा।

इस द्वन्द्व को लेकर शर्माजी मालती के स्वैर-जीवन से भी बहुत अधिक घृणा रखते हैं। बार-बार घूम-फिर कर वे सोचने लगते हैं—फिर ऐसी स्त्री और वेश्या में अन्तर क्या रह गया? केवल यही न कि वह उसे एक रोज़गार, एक पेशा, बनाकर चलती है! केवल यही न कि वह अपनी लज्जा और मर्यादा को कुछ चाँदी के टुकड़ों पर बेच डालती है? थोड़ा सा अन्तर और हो सकता है। वह यह कि उसके समक्ष इच्छा और अनिच्छा का कोई प्रश्न नहीं होता। वह केवल रुपये के लिए इसे स्वीकार करती है। परन्तु उसके सामने मजबूरियाँ भी तो रहती हैं, पेट भी तो रहता है जो भीतर से कुरेदता है, ऐंठन जिसमें होती है और आँतें जिसमें कुलबुलाती हैं। तब नारी का यह स्वच्छन्द विहार क्या अर्थ रखता है! यह पशु और मनुष्य के भेद को नष्ट करना नहीं तो और है क्या? फिर इसी कालिमा को चेहरे पर पोतकर नारी अभिमान करे, यह क्या चीज है? यदि यह क्रांति भी हो, तो जीवन को क्या यह उद्भ्रान्त नहीं बनाती! यह तो पतन की पराकाष्ठा है! मनुष्य के विकास की रेखा तो इस उद्भ्रान्त पथ में कहीं है नहीं।

इस प्रकार दोनों में एक समानान्तरी चल रही है। प्यार तो है, किन्तु इस नारी के साथ है। घृणा भी है, तो निरी घृणा-ही-घृणा नहीं है; और भी कुछ है। बाधा केवल आदर्शों की है। ये [illegible] हों, तो प्यार-ही-प्यार है। शर्माजी को ऐसा जान पड़ता है कि मान्यताओं और आदर्शों से घिरे हुए शर्माजी यह मान बैठे हैं कि मनुष्य कोई दूसरी

चीज है। वह मनुष्य नहीं है जो आदर्शों से गिरता है। मनुष्य तो है; लेकिन दुर्बलताएँ अगर उसमें हैं, तो वह कैसा मनुष्य है! उसको मनुष्य होने का अधिकार ही जब नहीं है, तो वह मनुष्य हुआ क्यों? इतने पर भी वह यदि मनुष्य ही बना है और कहलाता भी मनुष्य ही है तो यह ग़लत चीज़ है। मैं इसको सही नहीं मान सकता। ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कैसे हो सकता है!—

—"क्या कहा? हो सकता है?"

—"हुश!"

एक दिन जब शर्म्माजी आफ़िस जाने लगे, तो रेणु बोली—मैं आज ज़रा नवाबगंज जाऊँगी। पूर्णिमा ने बुला भेजा है। यों चाहे न भी जाती, पर बुलावा आ जाने पर न जाना मेरे लिए असम्भव है। कुछ हो, वे लोग मुझको चाहते बहुत हैं। इतना आदर-सत्कार करते हैं कि मैं हैरान रह जाती हूँ।

शर्म्माजी ने सहर्ष कहा—अच्छा तो है। चलो जाना, तबियत ही कुछ बदल जायगी। एक ही जगह रहते-रहते आदमी की तबियत ऊबजाती है।

रेणु के मन में आया कि कह दे, आफ़िस से सीधे उधर ही चले आना! किन्तु केवल इस विचार से रुक गयी कि ऐसा न हो, इनकार कर दें। अतः केवल सोच कर रह गयी।

शर्म्माजी ने पूछा—कौन आया था?...मत्तू?

रेणु—हाँ; मत्तू...!

"और कुछ कह रहा था?" शर्म्माजी ने पूछा और वे चप्पल पहनते हुए चलने लगे।

"और तो सब ठीक है।"—रेणु बोली—केवल मालती कुछ अस्वस्थ है।

विस्मय से चौंककर शर्म्माजी ने पूछा—अच्छा, मालती अस्वस्थ हो गयी है! कैसे...क्या...शिकायत क्या है?

जाते-जाते घूम कर खड़े हो गये।

रेणु ने बतलाया—सिर में दर्द बराबर बना रहता है। रात को नींद नहीं आती। भूख भी नहीं लगती।

सुनकर सन्न रह गये। बोले—"लेकिन खबर तक नहीं दी! अच्छा...!" और निःश्वास लेते प्रतीत हुए।

अब रेणु का जी न माना। बोली—तुम देखने नहीं चलोगे?

"मैं?...मैं तो नहीं; लेकिन मैं...मुझे जाना चाहिये? अच्छा, हाँ, तुम्हारी क्या राय है?"

"मेरी राय की भी इसमें जरूरत है, मैं नहीं जानती। तुम्हारी तबियत हो, तो जाने में कोई हर्ज नहीं है। यों तुम्हारी मर्जी।"

तब चलते हुए बोले—अच्छी बात है, मैं सोचूँगा।

किन्तु रेणु ने कह दिया—सोचने की बात जरा भी नहीं है। तुमको जाना चाहिये। तुम्हारा यह कैसा स्वभाव हो गया है! मैं भी कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।

फिर ठहर गये। कुछ उतरे हुए कण्ठ से बोले—मैं आ जाऊँगा। तुम छै-साढ़े-छै तक तो खाली हो जाओगी न?

रेणु ने उस म्लान मुद्रा को देखा, तो देखती रह गयी। कुछ कह न पायी।

तेइस

सुख और दुःख, मिलन और वियोग, हास और व्याकुलता का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, यह बात कहने में चाहे जैसी विचित्र जान पड़े, किन्तु विश्व की क्षण-क्षण की घटनावली की ओर दृष्टि डालने पर वह बिल्कुल स्वाभाविक और सर्वथा साधारण प्रतीत होने लगती है। सांसारिक प्राणी इस वैचित्र्य को या तो अच्छी तरह से अनुभव नहीं कर पाते, या वे इतने कार्य-ग्रस्त रहते हैं कि इस ओर ध्यान देने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। जो हो, इतना तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि समस्त जग को यदि हम एक कुटुम्ब मान लें और क्षण-क्षण पर घटित होनेवाली घटनाओं की एक सूची बनाने बैठें, तो एक तो वह सूची अपने सम्पूर्ण अर्थ में कभी अप-टू-डेट न होगी; क्योंकि सारे जगत् का लेखा, एक ही समय, एक ही स्थान पर आ सकना अत्यन्त दुस्साध्य हो जायगा। किन्तु अगर वह साध्य और सुलभ भी हो, तो उस घटनावली को देखकर हम अन्त में इसी निष्कर्ष को पहुँचेंगे कि ये सब-की-सब एक सूत्र में बँधी हुई हैं। अर्थात् जहाँ आनन्द-विनोद का अट्टहास हो रहा है, ठीक उसके निकट मनुष्य ने अपनी पीड़ा से व्यथित होकर कराह ली है। एक ओर जनाज़ा निकल रहा है, तो दूसरी ओर सोहर गाये जा रहे हैं! एक ओर कपड़ों पर, हाथ पर (और विशेष स्थिति में अन्यान्य अंगों पर भी) इत्र छोड़ा, छिटकाया और मला जा रहा है, तो दूसरी ओर शव पर चन्दन, कपूर तथा इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य छोड़े जा रहे हैं। एक ओर पुत्र अपने पिता के सिर में तेल की मालिश कर रहा है तो दूसरी ओर पुत्र द्वारा उसकी कपाल-क्रिया हो रही है! कितनी विषमता है इन घटनाओं में, तो भी इनकी गति में कभी अन्तर पड़ता है! सृष्टि इतनी निर्मम है कि कभी उसका कार्य-कलाप स्थगित नहीं होता। न हास को रुदन से स्पर्द्धा होती है, न वियोग को मिलन से। किन्तु आज स्वार्थ-रत, रूढ़ियों, परम्पराओं कुप्रथाओं और कुसंस्कारों में विजड़ित पूँजीजीवी समाज का यह मनुष्य

कभी-कभी इतना क्षुद्र हो जाता है कि दूसरे का क्षणिक लाभ और स्वार्थ-साधन तक सहन नहीं कर पाता !

चार बजते ही शर्म्माजी सोचने लगे—नवाबगंज जाना है। झट रामदीन से बोले—एक अच्छा-सा इक्का ले आओ।

रामदीन जाना ही चाहता था। पर उसे ख़याल आ गया कि यह तो बतलाया ही नहीं कि जायेंगे कहाँ। तब उसने पूछा—कहाँ के लिए चाहिये ?

सम्पादकीय लेख का फ़ाइनल प्रूफ़ सामने था। यह ध्यान नहीं था कि रामदीन को यह भी बताना होगा कि कहाँ के लिए (इक्का) चाहिये। प्रश्न सुनकर चौंक से पड़े। बोले—ऐं ! क्या कहा ?

रामदीन ने उत्तर दिया—सरकार ने यह नहीं बतलाया कि कहाँ जाना होगा ?

तब ख़याल आ गया। बोले—हाँ, नवाबगंज जाना है। आने-जाने में दो-तीन घंटे लगेंगे।

रामदीन तो चला गया, किन्तु शर्म्माजी का भीतर-ही-भीतर कलेजा कोई नोचने लगा। 'कितने दिन हो गये, भेंट नहीं हुई।' फिर पोरों से हिसाब लगाने लगे —मालूम हुआ, अधिक नहीं; एक मास के लगभग हुआ है। बीच में रेस्तोराँ में नाटकीय ढंग से भेंट हुई थी। परन्तु उसको भेंट तो कहना नहीं चाहिये। मेरा व्यवहार कितना अमानुषिक था ! माना कि ललित नहीं ठहरा था; किन्तु फिर मुझे तो दूसरा पक्ष सुनकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचना था ! फिर इतने दिन बीत गये, मुझसे इतना भी नहीं हुआ कि मैं एक दिन जाकर मिल तो आता ! मेरा मत उससे नहीं मिलता। किन्तु मत न मिलने पर एक आदमी क्या दूसरे का साथ सहयोग और नाता त्याग देता है ? मत तो कभी-कभी रेणु का भी मुझसे नहीं मिलता; परन्तु, अन्त में क्या मुझे उसके साथ समझौता नहीं करना पड़ता है !

इसी समय फ़ोरमैन ने आकर कहा—मुझे आज कुछ रुपये की ज़रूरत है। मेरे घर में बच्चा हुआ है। बहुतेरे नये ख़र्चे एकाएक सिर पर आ पड़े हैं।

सुनते ही बोले—अच्छा, लड़का हुआ है! भगवान करे चिरंजीवी हो। कितने रुपये चाहिये? जरा मुंशीजी को बुलाना।

मुंशीजी की नियुक्ति हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। जब से प्रेस को लिमिटेड कम्पनी ब . नश्चय हुआ, बस तभी से यहाँ उनका पदार्पण हुआ है। पुराने ढंग का चश्मा लगाये हुए हैं। एक कमानी टूट गयी है, उसकी जगह डोरा बाँध लिया है। फ्रेम पीतल का है। कीलों में पेंच के पास हरी-हरी काई जम गई है। डील के लम्बे हैं। सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं। कमीज के ऊपर बन्द गले का कोट धारण किये हैं, जिसके बटन खुले हुए हैं। पीठ पर दायें और बगल में कोट की सीवन उधड़ी हुई है। पेंसिल कान में खुरसी है। सामने आने पर शर्म्माजी ने पूछा—रुपया नक़द कुछ होगा?

उत्तर में मुंशीजी ने पूछा—आपको चाहिये कितना?

शर्म्माजी को मुंशी जी का यह प्रश्न अच्छा नहीं लगा। दूसरा कोई होता, तो सम्भव था कि वे इस समय उसे डाँट देते। पर इस विचार से रुक गये कि आदमी खरे मिजाज का है। बुरा भी मान सकता है। अतएव केवल एक बार देखकर रह गये। कुछ ठहर कर बोले—पचीस रुपये दे सको, तो दे दो।

मुंशीजी ने कहा—पन्द्रह दे सकता हूँ।

शर्म्माजी बोले—पन्द्रह अभी दे दो, दस कल दे देना।

मुंशीजी चलने लगे, तो उन्हें फिर बुलाया—जरा एक बात और सुन लीजिये।—ये रुपये इनकी तनख़ाह से एक साथ न काट कर तीन रुपये माहवार काटे जायँगे।

मुंशीजी पहले तो आँखें फैलाकर ग़ौर से शर्म्माजी की ओर देखने लगे। फिर उन्होंने सिर से पैर तक फ़ोरमैन को भी देखा। कुछ बोले नहीं। किन्तु जब वे अपनी सीट पर पहुँचे, तो पेंसिल टेबिल पर पटकते हुए स्वगत रूप से बोलने लगे—हो चुका! इसी तरह यह कम्पनी चलेगी!

पास ही मुरलीधर नामक एक क्लर्क बैठे थे। उनकी ओर देखकर धीरे-से कहने लगे—देखा आपने मुरलीधर बाबू ? पच्चीस-पच्चीस रुपये एडवांस और कटती तीन रुपये माहवार !

फिर भी तबियत नहीं भरी तो बोले—"कुरसी ज़रा इधर खिसका लो।" और साथ ही अपने दायें-बायें देखने लगे कि कोई सुन तो नहीं रहा है। जब इतमीनान हो गया कि बात कही जा सकती है, तो मुरली बाबू के आने और टेबिल पर कोहनी टेक कर उनके झुकते ही कहने लगे—फ़ोरमैन के सामने ही मुझसे पूछ रहे थे—कितना रुपया नक़द इस समय सेफ़ में होगा ? पूछो, नौकर के सामने इस तरह का सवाल भी कोई करता है !

मुरली बाबू ने भी समर्थन में सिर हिलाते हुए कह दिया—बड़े तजरबे की बात आपने कही है। आपकी क्या बात है !

"बात सुनो—बात सुनो" कहते हुए इधर-उधर निगाह फैलाकर मुंशीजी फिर बोले—ये बातें तुमको बहुत गुप्त रूप से बता रहा हूँ। इनको गाँठ में बाँध लो। बहुत काम देंगी।...और सुनो।... मान लो, फ़ोरमैन को जरूरत ही थी, तो पच्चीस रुपये उसने माँगे थे, आप पन्द्रह दिला देते। अरे माँगने को तो वह सारी सल्तनत माँग सकता है ?

"सल्तनत" शब्द के उच्चारण के साथ उठाई हुई पेंसिल टेबिल पर दे मारते हैं।

मुरली बाबू का सिर हिल रहा है। वे समर्थन कर रहे हैं—सो तो है ही। माँगने को तो...।

"बात सुनो—बात सुनो"—कहते हुए झुक कर कान के पास मुँह ले जाकर फिर मुंशीजी बोले—माँगने को तो मैं माँग सकता हूँ—तुम अपनी बीबी मेरे साथ कर दो।...तो क्या तुम अपनी बीबी मेरे साथ कर दोगे ? बोलो, मैं पूछता हूं, बोलो तुम अपनी बीबी (कुछ और जोर से) मेरे साथ कर दोगे ?

दफ़्तर के सभी बाबू लोग मुंशीजी की तरफ़ देख कर रह जाते हैं।

कोई खाँसता है, कोई मुस्कराता और कोई पड़ोसी कानाफूसी करने लगता है। परन्तु मुंशीजी अकड़कर बैठ जाते और चारों ओर देखते हैं।

मुरली अब तक समर्थन कर रहा था, पर बुड्ढे की इस बात को सुन कर जान पड़ता है, उसको भी उमंग आ गयी है। स्वर को अस्वाभाविक रूप में बदल कर पैर छूते हुए वह बोला—मैं किसी से कहूँगा नहीं, पर इतना जरूर बता दीजिये कि आप आजकल कौन-सा टॉनिक खा रहे हैं। बस, वही मैं भी आपसे थोड़ा ले लूँगा। अधिक नहीं तो कमीशन तो आपको मिल ही जायगा।

खांसते हुए रामगोपाल ने पूछा—क्या बात है मुरली बाबू ?

एक और पड़ोसी ने उत्तरार्द्ध सुन लिया था। बोला—मुंशीजी, थोड़ा-सा मुझको भी।

मुरली बाबू ने जोर से कह दिया—आजकल मुंशीजी एक टॉनिक सेवन कर रहे हैं।

एक साथ आवाज़ें आती हैं—मुंशीजी की क्या बात है !...हर दसवें महीने अंडा पक जाता होगा। जी, आप समेत।...और मुंशीजी बिगड़कर कह उठते हैं—सब लोग अपना-अपना काम देखो। (फ़ोरमैन रुपये के लिए सामने खड़ा है) मुझे फ़ुरसत नहीं है। जाइये आप भी मुरली बाबू, मैंने फ़िजूल इतना वक्त खराब किया—लेजर खोलकर अन्तिम पेज के लिए बारम्बार पन्ने उलटते हैं—मुझे इतनी फ़ुरसत कहाँ रहती है। (फ़ोरमैन को सामने देखकर वक्र दृष्टि से उसे देखने लगते हैं और मुरलीधर अपनी जगह जा पहुँचता है

इसी समय शर्म्माजी ने भीतर से निकलते हुए पूछा—रुपये तुमको मिल गये, वेणीप्रसाद !

कई क्लर्क एक साथ उठ खड़े होते हैं। मुंशीजी आयरन सेफ़ खोलने लगते हैं—

वेणीप्रसाद ने उत्तर दिया—मिले जाते हैं।

शर्म्माजी कार्यालय से बाहर हो गये। पहले उन्होंने निश्चय किया

था कि वे नवाबगंज सीधे जायँगे, किन्तु अब उनके मन में आया, क्यों न रेणु को साथ लेते चलें। अतएव उन्होंने, इक्केवान से कहा—पहले पुरानी सब्जीमंडी की तरफ़ चलो।

उन्होंने पावदान पर पैर रक्खा ही था कि रामदीन ने पुकारा—सरकार ज़रा ठहर जायँ आप।

शर्म्माजी ने पूछा—क्यों ?

रामदीन ने कहा—गुप्ता बाबू (सहकारी-सम्पादक) ने कहलाया है। वे ख़ुद आ रहे हैं।

तब तक गुप्त जी भी आ गये। वे कुछ घबराये हुए थे। साँस फूल रही थी। बहुत धीरे-धीरे बोले—विपिन की हालत बहुत ख़राब है। सीधे हॉस्पिटल जाइये। फ़ून से किसी ने ख़बर दी है कि उसने विष खा लिया है।

सुनते ही शर्म्माजी ने आश्चर्य्य, चिन्ता और एक आघात के-से स्वर में पूछा—क्या कहा ? विष खा लिया !

गुप्तजी ने उत्तर दिया—अमृत ने फ़ोन से कहा है।

शर्म्माजी ने इक्केवान से कहा—हाँ, हॉस्पिटल ले चलो। ज़रा जल्दी।

हास्पिटल पहुँचने पर शर्म्माजी क्या देखते हैं कि विपिन चारपायी पर चुपचाप लेटा है। उसकी आँखें बन्द हैं। कभी-कभी छटपटाता हुआ पटिया पर हाथ दे मारता है। चेष्टा अत्यधिक म्लान है। कई दिन से शेव न करने के कारण मुख दूर से कुछ श्याम मालूम पड़ता है। होंठ बार-बार चाट रहा है।

पहुँचते ही लोग हट गये, शर्म्माजी के लिए अमृत ने कुरसी डाल दी। पर डॉक्टर मल्लिक ने अलग 'ले जाकर बतलाया, बड़ी ग़नीमत हुई कि फ़ौरन यहाँ ले आया जा सका। दस मिनट की भी देर हो जाने पर फिर केस कन्ट्रोल से बाहर हो जाता।

चिन्तित शर्म्माजी ने पूछा—कौन-सा विष था ?

"मारफ़िया मालूम पड़ता है!" डॉक्टर साहब ने बतलाया।

अमृत ने कह दिया—बड़ी नादानी का काम किया।

डॉक्टर साहब ने कथन की व्यर्थता पर ज़रा-सा मुसकरा दिया। फिर बोले—इस तरह कह डालना बड़ा आसान है।

अमृत बोला—कम-से-कम मैं इसे समझदारी तो नहीं मान सकता। वीरता भी यह नहीं कही जा सकती। बल्कि मैं तो इसे एक कमजोरी ही कहूँगा।

डॉक्टर साहब जवाब न देकर विपिन के पास आ गये। कुछ क्षणों तक साँस की गति देखकर फिर अलग हटकर कहने लगे—पेट की नसों को मेहनत ज़्यादा पड़ी है। क़ै कराई गई हैं न, इसलिए। उधर दिमाग़ भी थक गया होगा। इसके अलावा मारफ़िया खुद भी नींद के हक़ में ही रहती है। इसलिए नींद आना स्वाभाविक है। परन्तु हमें कोशिश करनी चाहिये कि नींद न आये।

फिर जाते हुए नर्स से बोले—देखो जरूरत पड़ने पर फ़ौरन मुझे इत्तिला करना।

रूमाल-सहित दोनों हाथ जोड़कर डॉक्टर बोले—'अच्छा, नमस्ते।' फिर लौटते हुए बोले—आपको यहाँ बैठने में उलझन हो, तो मेरे यहाँ आकर बैठिये।

शर्म्माजी बोले—अभी तो यहाँ ज़रा देर देखूँगा। फिर जरूरत समझूँगा, तो आ जाऊँगा।

"अच्छा-अच्छा" कहते हुए डॉक्टर मल्लिक चले गये।

अमृत ने इसी क्षण कहा—स्वभाव से भावुक तो इतना नहीं जान पड़ता था।

शर्म्माजी बोले—फिर भी अन्तर का आघात कौन जान सकता है? मैंने एक दिन कुछ बातें की थीं। उनसे इतना पता चला था कि आदमी चोट खाया हुआ जरूर है। मैंने आगे का रास्ता भी सुजाया था। बाद में घटनाओं ने क्या-कैसा टर्न (मोड़) लिया, इसका कुछ पता नहीं चल पाया। अभी आठ दिन की बात है, कार्यवश मेरे साथ एक जगह गया

भी था। उस समय भी ऐसी कोई बात नहीं जाहिर हुई थी। इधर ही कुछ हुआ होगा।

बात कहते हुए शर्म्माजी की दृष्टि फिर विपिन की ओर जा पड़ी। यह भी मालूम पड़ा कि वह निःश्वास ले रहा है। फिर उसने करवट बदली और पटिया पर बायाँ हाथ डाल दिया। शर्म्माजी की तबियत नहीं मानी। पास जा पहुँचे। जान पड़ा, पलक उठ रहे हैं। सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—विपिन ?

नर्स ने कहा—हाँ, सोने न दीजिये शर्म्माजी। बातें करते जाइये और और आँखें खुली रखने की कोशिश कीजिये।

अमृत ने पूछा—तब तक उठने और होश में आ जाने की उम्मीद है ?

नर्स ने कहा—यह मैं नहीं कह सकती! ऐसे केसेज में चार-छै घंटे भी लग सकते हैं। प्वाइज़न का जितना गहरा असर होगा, उसी औसत से, उतनी ही देर में, होश आयेगा।

अमृत ने पूछा—यहाँ कहीं फ़ोन तो होगा ?

नर्स ने बतलाया—डॉक्टर साहब के कमरे के बिल्कुल पास है।

शर्म्माजी ने पूछा—किसी को बुलाना है क्या ?

अमृत बोला—विनायक को अगर किसी तरह इत्तिला हो जाय, तो बड़ा अच्छा हो।

शर्म्माजी बोले—अगर मेरे दफ़्तर आयेंगे, तब तो मालूम ही हो जायगा।

इसी समय नर्स ने सुना, विपिन बड़बड़ा रहा है—"शर्म्माजी···कहेंगे!" वह प्रसन्नता-सी प्रकट करती हुई पास आकर बोली—शर्म्माजी आप ही हैं न ?

शर्म्माजी बोले—कहिये, कुछ ज़रूरत तो नहीं है ?

चुपके से नर्स बोली—अभी आपको याद किया था। आपने मार्क नहीं किया।

शर्म्माजी झुककर विपिन के मुँह की ओर एकटक देखने लगे।

अमृत ने कहा—लो, ललित बाबू भी आगये।

———

चौबीस

कभी-कभी अज्ञात अवस्था में भी कोई किसी को चाहने लगता है। उसे पता नहीं चलता कि उसने कोई कार्य, उपकार के रूप में ही सही, उसके लिए क्यों किया है। कुछ तो समाज के बन्धन, कुछ मनुष्य का अहंकार, कुछ लज्जा और शील-संकोचजन्य उसकी भीरुता कभी इन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण तक नहीं करने देती। कभी-कभी इसके विपरीत ऐसा भी होता है कि चाहते हुए भी व्यवहारों की शैली तथा मनुष्य की उदारता से इस विषय में भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु जहाँ तक हृदय-दान का प्रश्न है, छिपे और दबाये हुए मनोभाव यदि स्पष्ट होते चलें, तो जीवन में आज जो भ्रान्तियाँ और असफल प्रेम की विभीषिकाएँ हैं, उनका बहुत कुछ शमन तो हो ही सकता है। जीवन में असीम आनन्द का रत्नाकर भी लहरा सकता है।

धूप थोड़ी-सी ही जहाँ-तहाँ देख पड़ती है। दिनमणि अस्त होने ही वाले हैं। बँगले के आगेवाली सड़क पर से ग्वाले लोगों की भैंसों का झुण्ड जा रहा है। पश्चिम में मिलों के भोंपू लगातार थोड़े ही अन्तर से बजकर अपने-अपने स्वरों के पार्थक्य के साथ जब रेलवे-लाइनों पर आने-जानेवाली गाड़ियों के डब्बों की घड़घड़ाहट तथा एंजिनों की सीटियों का स्वर मिला देते हैं तब सहज ही जान पड़ने लगता है कि हम एक व्यावसायिक नगर में हैं।

विनायक सुशील को पढ़ाकर साइकिल से जा ही रहा था कि पूर्णिमा ने कहा—ज़रा बैठ लीजिये विनायक बाबू।

विनायक ने उत्तर दिया—मेरे बैठने से आप के काम में हर्ज हो सकता है।

उत्तर सुनकर पूर्णिमा ने विनायक की ओर देखा। उसके ओंठ कुछ विकसित हुए और वह बोली—आप कह क्या रहे हैं!

"क्या मैं कोई अप्रासंगिक बात कह रहा हूँ?" विनायक ने शान्त भाव से उत्तर दिया।

पूर्णिमा ने कागज्ञ एक ओर रख दिये। बोली—लीजिये, मैं बिलकुल खाली हुई जाती हूं। अब तो आपको मुझसे शिकायत नहीं होगी न?

"शिकायत मुझे यों भी नहीं थी।" विनायक बोला।

"अच्छा तो पहले मैं आपके लिए चाय बनवाऊँ"-उसने कहा और वह उठने ही वाली थी कि विनायक ने कह दिया—मैं यहाँ चाय नहीं पी सकता। रेस्तोराँ की बात दूसरी थी। वहाँ आपने विशेष आग्रह भी किया था। एक तरह से आपने जिद की थी। जान पड़ता था कि आप मेरा व्रत भंग करने पर तुल गयी हैं। मैंने भी सोचा, यह नियम का तोड़ना नहीं, एक अपवाद है। दुनिया में कोई-न-कोई तो ऐसा होना चाहिये, जो अपवाद रूप में ही जीवन को हरा-भरा बनाने में सहायक हो।

पहले आश्चर्य्य के साथ विनायक को ओर एकटक देखकर, फिर कमरे के द्वार को ओर दृष्टि डालती हुई पूर्णिमा बोली—देखती हूँ, आपकी बातों में पर्त-के-पर्त होते हैं। जैसे कोई साड़ी हो और इतमीनान के साथ तहाकर रक्खी गयी हो।

विनायक चुप रह गया। क्या उत्तर दे, जल्दी से वह इसका कुछ निश्चय न कर सका।

पूर्णिमा बोली—अच्छा तो मैं इस वक्त आपकी क्या खातिर करूँ?

"खातिर की ऐसी जरूरत क्या है पूर्णिमा जी?"—विनायक इसके बाद कहने जा रहा था कि 'इतनी खातिर कम है, जो आपने मुझे नित्य दर्शन पाने का अवसर दिया'। किन्तु फिर कुछ सोचकर वह आधी ही बात कह पाया।

"बीबी आ जातीं तो···खैर। —आप बैठिये, मैं अभी आयी। जरा देखूँ, जीजी कर क्या रही हैं।" कहती हुई वह उठी, और चल दी—

तारिणी दर्जी को डाँट रही थी—तुमने मेरा कपड़ा सत्यानाश कर दिया। मैंने तुमसे कहा नहीं था कि यह। यह इस तरह का कालर न रखना।

दर्जी सिटपिटाया-सा कह रहा था—सरकार मैंने समझा कि हुजूर ' ।

इसी समय उछलती हुई वहाँ पहुँच गयी पूर्णिमा। बोली—जीजी, तुमने कहा था कि विनायक बाबू से बातचीत करने का अवसर ही नहीं मिलता। सो मैंने उन्हे रोक रक्खा है। चलोगी नहीं ?

तारिणी पूर्णिमा की ओर ध्यान न देकर दर्जी से ही कहने लगी—तुम बड़े बेवकूफ़ हो जी ! तुमको जरा भी तमीज नहीं कि आजकल रोज-रोज तो फ़ैशन बदलता है। तुम्हें इतना तो पता होना चाहिये कि क़रीब-क़रीब दस वर्षों से यही कट चल रहा है और इसी बात से मुझे चिढ़ है।

दर्जी दबी हुई आवाज में फिर बोला—हुजूर मैंने समझा कि सरकार...।

तारिणी ने ब्लाउज को फेंकते हुए कहा—अब जाओ, इसकी सीवन उधेड़ कर ले आओ। कालर के लिए मैं दूसरा कपड़ा दूँगी।

दर्जी चलने लगा, तो वह फिर बोली—और देखो, .कैंची भी अपनी साथ लेते आना। मैं यहीं पर अपने सामने कालर कटवा दूँगी।

"बहुत अच्छा सरकार" कहता और एक सलाम फिर करता हुआ दर्जी चला गया।

अब तारिणी पलँग पर बैठ गयी और बोली—तुमको भी कम बेवक़ूफ़ थोड़े ही समझती हूँ। मैंने यह कब कहा था कि विनायक बाबू को आज ही शाम को रोक लेना ? तुमको पता है, मुझे अभी कितने काम निपटाने हैं ? आज रात को उस रिहर्सल में भी जाना पड़ेगा।·· तुम नहीं चलोगी ?

आश्चर्य्य से पूर्णिमा ने पूछा—कौन-सा···कैसा रिहर्सल ? मुझे तो कुछ मालूम नहीं। · और मुझसे किसी ने कहा भी नहीं।

"अच्छा, मैंने नहीं बतलाया तुमको ?" उसी प्रकार विस्मय दिखला-कर तारिणी बोली—अरे वही कुछ बंग महिलाएँ दुर्गापूजा के अवसर पर एक नाटक खेलती हैं न। उसी के लिए उन लोगों ने एक पार्ट मुझे भी दे रक्खा है। मैं बराबर इनकार करती रही। पर शारदा किसी तरह नहीं

मानी·। मैंने अभी माँ से कहा भी नहीं है। अच्छी याद आयी। लेकिन तुमको मेरे सिर की कसम है जो सुशील के बाबू तक इसकी खबर पहुँचायी। तुम जानती ही हो, वे इन मामलों में कितने कट्टर हैं। उस दिन मैं जो सिनेमा देखने गयी, तो मालूम नहीं कहाँ से अन्दर आ पहुँचे। इधर-उधर देखा, मैं किसके साथ बैठी हूँ, क्या बात है, तब कहीं वापस गये। · मैं तो डर-सी गयी थी।

पूर्णिमा बोली—मुझे तो कोई दिलचस्पी है नहीं। न मैं जाऊँगी ही। हम लोग इस क्षेत्र से दूर ही दूर रहते हैं। रंग-मंच हमारा अपना है नहीं। अभिनय-कला में हमारी कोई गति नहीं। ऐसी दशा में तुम कैसे सफल होओगी। अपनी हँसी करानी हो, तो जाओ। मैं मना नहीं करती। फिर यह भी पता नहीं, कैसे लोगों का साथ पड़ जाय। उधर बड़े बाबू का भी खयाल तुम्हें रखना ही है। कैसे निभा सकोगी! मेरा तो जैसे अभी से जी घबराने लगा।

तारिणी सोचती हुई बोली—कहती तो 'तुम ठीक हो। लेकिन मैं तो अब फँस गयी हूँ।

"इसमें फसने की तो कोई बात है नहीं" पूर्णिमा ने कहा—कह देना माँ ने स्वीकार नहीं किया · फिर तुम सोचती हो कि नाटक में पार्ट तक लोगी और सारी बात पचा ले जाओगी; बाबूजी तक पहुँचेगी नहीं? ऐसा भी हो सकता है कहीं!

"लेकिन तुमको मालूम नहीं है" तारिणी बोली—शारदा की भाभी सुना है, नाचती बहुत अच्छा है। एक दिन जरा-सी बानगी मुझे दिखलायी थी। मैं तो उतने में ही जैसे रीझ गयी।

"तो नाटक में तो सब एक साथ देख ही लोगी।"

"हाँ, यह तो तुम ठीक कहती हो।"

"सोच लो, अपना आगा-पीछा। मैं अधिक क्या कह सकती हूँ।"

"और भी एक बात है। वहाँ, सुना है कि, स्वामी राधाकृष्णजी आज आयेंगे। उनका नाम तो तुमने सुना ही होगा। वे बाँसुरी बजाने

में अपने देशभर में बेजोड़ हैं। बाल-ब्रह्मचारी हैं। बड़े आग्रह के बाद उन्होंने आना स्वीकार किया है। दो-एक दिन में ही चले जानेवाले हैं।"

अब शीघ्रता से पूर्णिमा बोली—तब मैं मना नहीं कर सकती। एक दो नहीं, अनेक कारण हैं। अच्छा, तो···मतलब यह कि···इस समय तुमको अवकाश नहीं कि विनायक बाबू से घड़ी-भर भी बात कर सको।

तारिणी मुसकराने लगी। बोली—"मैंने तुमको बेवकूफ़ भी बनाया और अब मैं तुम्हारी बात भी न मानूँ, जीजी को तुम इतना शीलहीन समझती हो। क्यों?" वह उठी और अलमारी से साड़ी निकालती हुई बोली—बस, मैं अभी चली।

पूर्णिमा पलँग पर लेटती हुई कहने लगी—अब मैं मरी।

तारिणी ने पूछा—क्यों?

पूर्णिमा ने उत्तर दिया—यानी तुम इसी साड़ी को पहने हुए विनायक बाबू से मिल नहीं सकतीं!

तारिणी बोली—पहले बात दूसरी थी। पर आजकल तो वे सुशील को पढ़ाने आते हैं। अपनी मर्यादा भी तो रखनी पड़ती है।

पूर्णिमा बोली—मैं यह सब परपञ्च नहीं जानती। इसकी अधिकारिणी तुम हो और तुम्हें यह शोभा भी देता है।

उधर विनायक अकेला रह गया था। पता नहीं कहाँ से घूमती हुई मालती आ पहुँची। बोली—कहिये विनायक बाबू, अकेले कैसे बैठे हैं। सुशील कहाँ गया?

अन्यमनस्क विनायक बोला—पढ़ाई का समय बिता लेने के बाद पता नहीं कहाँ चल दिया।

मालती अबतक खड़ी थी। अब कुरसी पर बैठ गयी। बोली—और क्या हाल-चाल है?

विनायक ने कहा—आपकी कृपा है।···अपना हाल बतलाइये। सुना है, आजकल आपको सारा समय मजदूरों की समस्याओं के समाधान में जाता है। पहले से कुछ दुर्बल भी तो हो रही हैं।

"अच्छा, दुर्बल हो रही हूँ!" आश्चर्य्य के साथ मालती ने पूछा।—फिर बोली—कुछ स्थूल भी तो उधर हो चली थी। क्यों, हो चली थी कि नहीं? सच बतलाइये विनायक बाबू।

विनायक संकोच में पड़ गया। बोला—मैंने योंही कह दिया। आप जानती हैं, मैं इन सब बारीकियों की छानबीन से अपने को दूर रखता हूँ।

"यानी आप कहना चाहते हैं कि"—मालती बोली—सेक्स की दृष्टि से आप सबनार्मल हैं।

विनायक की दृष्टि खिड़की से खुले आकाश की ओर जा पड़ी। बोला—आप चाहे जो समझ लें।

"अच्छा विनायक बाबू, मैं आपसे एक बात जानना चाहती हूँ"—मालती कुछ सोचती, कुछ अपने को स्थिर करती हुई बोली—आज नहीं, फिर कभी बतला देना, आज तो इसके लिए अनुकूल अवसर भी नहीं है।—आप भी मुझसे घृणा करते हैं? मैं सकारण और सविस्तार जानना चाहती हूँ।

विनायक तुरन्त बोल उठा—आपने मुझे बिलकुल गलत समझा है। मैं किसी से घृणा नहीं करता। न किसी से प्रेम ही करता हूँ। मुझे यह भी सोचने का अवसर ही नहीं मिला कि मैं किसी नारी को किस दृष्टि से देखने का अधिकारी समझूँ।

"आप झूठ बोलते हैं।"

"मुझे यह भी पता नहीं कि मैंने आपके साथ कब असत्य भाषण का प्रयोग किया!"

"आपको पता होना चाहिये कि मैंने ही आपको यहाँ यह काम दिलाया है। मैंने ही भाभी से आपकी योग्यता की प्रशंसा की थी। मैंने ही कहा था कि सौ रुपये मासिक पर भी ऐसा आदमी महँगा नहीं है। आपने बातचीत ही करते न बनी। जो उन्होंने कहा, आपने तुरन्त स्वीकार कर लिया। पचास रुपये तो कहीं नहीं गये थे।"

"मैं मानता हूँ कि आपने मेरे साथ ऐसा उपकार किया है जिससे मैं जीवन-भर उद्धार न हो पाऊँगा। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि नित्य नियम से दिन में सौ वार मुझे आपका कृतज्ञता-ज्ञापन करते रहना चाहिये। किन्तु आप मुझ पर झूठ बोलने का अभियोग लगायेंगी इसका तो मुझे क़तई गुमान नहीं था।

इसी समय आ गयी तारिणी और पूर्णिमा। तारिणी द्वार पर ठिठुक कर हाथ जोड़ती हुई बोली—नमस्ते।

मालती कुछ कहने जा रही थी; परन्तु फिर रुक गयी।

नमस्कार करते हुए विनायक बोल उठा—आप तो देख ही नहीं पड़तीं। मैंने सोचा था, रुपये का लाभ जो कुछ होगा, वह तो पासँग में पड़ेगा। असल चीज़ तो आप लोगों का सम्पर्क है। सो, सम्पर्क तो विकल्प में जा पड़ा, केवल पासँग हाथ लग रहा है।

पूर्णिमा हँसने लगी। बोली—अब कहो जीजी, तुम तो आ नहीं रही थीं न!

तारिणी मुसकराती हुई बोली—बात यह है विनायक बाबू कि मैंने अपनी कुछ ऐसी आदत बना रक्खी है कि मुझे लोगों से मिलने-जुलने का क़तई अवकाश नहीं मिलता। आपको यह सुनकर आश्चर्य्य होगा कि असम्पर्क की शिकायत एक आपको ही नहीं है।

पूर्णिमा अपने को रोक न सकी। बोली—अर्थात् वह बाबू जी तक को है। तात्पर्य यह कि इस क्षेत्र में भी आप अकेले नहीं हैं।

मालती जाने लगी थी। पूर्णिमा बोली—कहाँ चल दीं बीबी?—और तुमको बाहर से आते हुए तो मैंने देखा नहीं! नाराज़ तो नहीं हो मुझसे?

तारिणी बोली—शारदा कह रही थी, स्वामी राधाकृष्णजी की बाँसुरी सुनने भी न आयेंगी क्या! कितने दिनों से भेंट तक नहीं हुई।

"मुझे अवकाश नहीं है, इन सब बातों के लिए।" गम्भीर मालती बोली—ये सब काम उन लोगों को सूझते हैं, जिनके पास बैठे-बैठे खाने

"अच्छा, दुर्बल हो रही हूँ!" आश्चर्य्य के साथ मालती ने पूछा।—फिर बोली—कुछ स्थूल भी तो उधर हो चली थी। क्यों, हो चली थी कि नहीं? सच बतलाइये विनायक बाबू।

विनायक संकोच में पड़ गया। बोला—मैंने योंही कह दिया। आप जानती हैं, मैं इन सब बारीकियों की छानबीन से अपने को दूर रखता हूँ।

"यानी आप कहना चाहते हैं कि"—मालती बोली—सेक्स की दृष्टि से आप सबनार्मल हैं।

विनायक की दृष्टि खिड़की से खुले आकाश की ओर जा पड़ी। बोला—आप चाहे जो समझ लें।

"अच्छा विनायक बाबू, मैं आपसे एक बात जानना चाहती हूँ"—मालती कुछ सोचती, कुछ अपने को स्थिर करती हुई बोली—आज नहीं, फिर कभी बतला देना, आज तो इसके लिए अनुकूल अवसर भी नहीं है।—आप भी मुझसे घृणा करते हैं? मैं सकारण और सविस्तार जानना चाहती हूँ।

विनायक तुरन्त बोल उठा—आपने मुझे बिलकुल गलत समझा है। मैं किसी से घृणा नहीं करता। न किसी से प्रेम ही करता हूँ। मुझे यह का सोचने का अवसर ही नहीं मिला कि मैं किसी नारी को किस दृष्टि से देखने का अधिकारी समझूँ।

"आप झूठ बोलते हैं।"

"मुझे यह भी पता नहीं कि मैंने आपके साथ कब असत्य भाषण का प्रयोग किया!"

"आपको पता होना चाहिये कि मैंने ही आपको यहाँ यह काम दिलाया है। मैंने ही भाभी से आपकी योग्यता की प्रशंसा की थी। मैंने ही कहा था कि सौ रुपये मासिक पर भी ऐसा आदमी महँगा नहीं है। आपने बातचीत ही करने न दी। जो उन्होंने कहा, आपने तुरन्त स्वीकार कर लिया। पचास रुपये तो कहीं नहीं गये थे।"

"मैं मानता हूँ कि आपने मेरे साथ ऐसा उपकार किया है जिससे मैं जीवन-भर उद्धार न हो पाऊँगा। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि नित्य नियम से दिन में सौ बार मुझे आपका कृतज्ञता-ज्ञापन करते रहना चाहिये। किन्तु आप मुझ पर झूठ बोलने का अभियोग लगायेंगी इसका तो मुझे क़तई गुमान नहीं था।

इसी समय आ गयी तारिणी और पूर्णिमा। तारिणी द्वार पर ठिठुक कर हाथ जोड़ती हुई बोली—नमस्ते।

मालती कुछ कहने जा रही थी; परन्तु फिर रुक गयी।

नमस्कार करते हुए विनायक बोल उठा—आप तो देख ही नहीं पड़तीं। मैंने सोचा था, रुपये का लाभ जो कुछ होगा, वह तो पासँग में पड़ेगा। असल चीज़ तो आप लोगों का सम्पर्क है। सो, सम्पर्क तो विकल्प में जा पड़ा, केवल पासँग हाथ लग रहा है।

पूर्णिमा हँसने लगी। बोली—अब कहो जीजी, तुम तो आ नहीं रही थीं न!

तारिणी मुसकराती हुई बोली—बात यह है विनायक बाबू कि मैंने अपनी कुछ ऐसी आदत बना रक्खी है कि मुझे लोगों से मिलने-जुलने का क़तई अवकाश नहीं मिलता। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि असम्पर्क की शिकायत एक आपको ही नहीं है।

पूर्णिमा अपने को रोक न सकी। बोली—अर्थात् वह बाबू जी तक की है। तात्पर्य यह कि इस क्षेत्र में भी आप अकेले नहीं हैं।

मालती जाने लगी थी। पूर्णिमा बोली—कहाँ चल दीं बीबी?—और तुमको बाहर से आते हुए तो मैंने देखा नहीं! नाराज़ तो नहीं हो मुझसे?

तारिणी बोली—शारदा कह रही थी, स्वामी राधाकृष्णजी की बाँसुरी सुनने भी न आयेंगी क्या! कितने दिनों से भेंट तक नहीं हुई।

"मुझे अवकाश नहीं है, इन सब बातों के लिए।" गम्भीर मालती बोली—ये सब काम उन लोगों को सूझते हैं, जिनके पास बैठे-बैठे खाने

और अठखेलियाँ करने के लिये या तो पहले से पूर्वजो का दिया या संग्रहीत रुपया भरा है, अथवा ऐसा कोई स्थायी अवलम्ब कि जितना चाहो खर्च करते जाओ, कमी कभी पड़ ही नही सकती।

तारिणी ने कटाक्ष करते हुए कहा—पर ऐसा स्वावलम्बन अभी केवल उपदेश देने भर के लिए देख पड़ता है बीबी रानी। जिन्होंने संग्रह किया था, वे भी अक्ल रखते थे कुछ। एक ओर वे अपना भविष्य बना रहे थे, दूसरी ओर उनके दान-धर्म की भी एक मर्यादा थी।

"उसका और उसके उत्तराधिकार में प्राप्त आज की अभिनव मर्यादा का मुझे काफ़ी पता है।"···फिर आपही रुक कर बोली—पर इन बातों से बहस क्या? अपनी-अपनी ढफली, अपना-अपना राग। मैं तो आपको मना करती नहीं कि स्वामी राधाकृष्ण की बाँसुरी सुनने न जायँ।

तारिणी बोली—लेकिन मुझे तो अब उनसे यह कहना ही पड़ेगा कि रात-दिन की धौंस मैं सहन नहीं कर सकती। बीबी अपना रुपया चाहती है; वे संग्रह करके रक्खें, चाहे फेंक दें। तुम्हें दे देना चाहिये।

मालती बोली—तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं है। मैं ख़ुद उनसे कहूँगी। मैं यह भी कहूँगी कि भाभी को आजकल भगवद् भक्ति के फ़िट्स आ रहे हैं। उनके लिए एक मंदिर क्यों नहीं बनवा देते? दोनों वक़्त घंटा बजेगा, स्वामीजी की कृपा से प्रसाद हम लोगों को भी थोड़ा-बहुत मिल जाया करेगा।

पूर्णिमा ने ताली बजा दी। फिर उसने दाहने हाथ से घंटी हिलाने की मुद्रा में पुजारी का सा अभिनय करते हुए कह दिया—"बोल कृष्ण-बलदेव की जय!"

मालती जाने लगी। परन्तु उसी समय अमिया दौड़ी-दौड़ी आ पहुँची। वह कुछ घबराई हुई सी थी। बोली—अम्मा ने फ़ोन से अभी सुना है। विपिन किसी का नाम है?

"मालती मुद्रा में विनायक बोल उठा—हाँ, है तो। फिर, क्या हुआ?—हुआ क्या '

वह बोली—उन्होंने जहर खा लिया है। अस्पताल में ले जाये गये हैं। आपको बुलाया है।

विनायक के मुँह से निकल गया—अनर्थ हो गया।

वह चलने लगा। विदाई के रूप में उसने नमस्कार किया।

मालती ने एक क्षण तक सोचा, फिर वह बोली—मैं मत्तू से गाड़ी तैयार करने को कहती हूँ। मैं भी तो चलूँगी। तब तक मैं तैयार भी हो लूँगी। आप बैठिये।

तारिणी बोली—मुझे तो अब आज्ञा दीजिये।

पर इसी समय माँ आ पहुँची। बोलीं—विपिन की बात तो सुन ली न?

वे बहुत धीरे-धीरे बोल रही थीं। ऐसा जान पड़ता था, जैसे उनके किसी आत्मीय बन्धु ही ने ऐसा अनर्थकारी दुस्साहस किया हो।

विनायक ने कहा—अपने मजदूर-संघ में ऐसा सच्चा और कर्मठ कार्य-कर्ता दूसरा नहीं है। मुझे आश्चर्य्य है कि ऐसे दृढ़ चरित्र का आदमी कैसे ऐसा दुस्साहस कर बैठा!

माँ पहले कुछ नहीं बोलीं। फिर आँखें फैलाकर मुँह बनाते हुए उन्होंने कहा—जरूर कोई ऐसी गहरी चोट पड़ी होगी, जिसको वह सहन नहीं कर सका।

अमिया गिलास-भर कुनकुना दूध ले आयी।

देखकर विनायक बोला—इस समय इसकी क्या जरूरत थी माँ?

"तो क्या हुआ बेटा"—माँ ने तरल स्नेह के साथ कहा—अस्पताल जा रहे हो, कौन जाने कैसा समय आ पड़े, कब छूटना हो? जल्दी जल-पान तो तैयार हो नहीं सकता था। इन लोगों ने भी पहले से कुछ नहीं सोचा।

विनायक ने गिलास ले लिया।

मालती तैयार होकर आ गयी। बोली—दूध आज इस समय न हो मैं भी पी लूँ माँ। मेरा पेट भी कुछ भूखा जान पड़ता है।

और अठखेलियाँ करने के लिये या तो पहले से पूर्वजों का दिया या संग्रहीत रुपया भरा है, अथवा ऐसा कोई स्थायी अवलम्ब कि जितना चाहो खर्च करते जाओ, कमी कभी पड़ ही नहीं सकती।

तारिणी ने कटाक्ष करते हुए कहा—पर ऐसा स्वावलम्बन अभी केवल उपदेश देने भर के लिए देख पड़ता है बीबी रानी। जिन्होंने संग्रह किया था, वे भी अक्ल रखते थे कुछ। एक ओर वे अपना भविष्य बना रहे थे, दूसरी ओर उनके दान-धर्म की भी एक मर्यादा थी।

"उसका और उसके उत्तराधिकार में प्राप्त आज की अभिनव मर्यादा का मुझे काफ़ी पता है।"···फिर आपही रुक कर बोली—पर इन बातों से बहस क्या? अपनी-अपनी ढफली, अपना-अपना राग। मैं तो आपको मना करती नहीं कि स्वामी राधाकृष्ण की बाँसुरी सुनने न जायँ।

तारिणी बोली—लेकिन मुझे तो अब उनसे यह कहना ही पड़ेगा कि रात-दिन की धौंस मैं सहन नहीं कर सकती। बीबी अपना रुपया चाहती हैं; वे संग्रह करके रक्खें, चाहे फेंक दें। तुम्हें दे देना चाहिये।

मालती बोली—तुम्हारे कहने की ज़रूरत नहीं है। मैं ख़ुद उनसे कहूँगी। मैं यह भी कहूँगी कि भाभी को आजकल भगवद् भक्ति के फ़िट्स आ रहे हैं। उनके लिए एक मंदिर क्यों नहीं बनवा देते? दोनों वक़्त घंटा बजेगा, स्वामीजी की कृपा से प्रसाद हम लोगों को भी थोड़ा-बहुत मिल जाया करेगा।

पूर्णिमा ने ताली बजा दी। फिर उसने दाहने हाथ से घंटी हिलाने की मुद्रा में पुजारी का सा अभिनय करते हुए कह दिया—"बोल कृष्ण-बलदेव की जय!"

मालती जाने लगी। परन्तु इसी समय अमिया दौड़ी-दौड़ी आ पहुँची। वह कुछ घबराई हुई सी थी। बोली—अम्मा ने फ़ोन से अभी सुना है। विपिन किसी का नाम है?

"सशंकित मुद्रा में विनायक बोल उठा—हाँ, है तो। फिर, क्या हुआ?—हुआ क्या!

एक बना-बनाया ढंग है, जिसमें पढ़े-लिखे योग्य व्यक्ति ग़रीब बने रहते हैं और पूर्वजों की छोड़ी हुई जमा पूँजी के आधार पर अयोग्य-से-अयोग्य आदमी बैठे खाते और गुलछर्रे उड़ाते हैं। आज अगर पिता की छोड़ी हुई सम्पत्ति राष्ट्र की हो जाने लगे, तो लोगों को पता चल जाय कि भाग्य का खेल क्या है!

माँ बोलीं—पर ऐसा होने क्यों लगा। ऐसा भी कहीं हो सकता है! यह तो एक अजीब अन्धेर की बात है।

पूर्णिमा बोली—साम्यवादी देश हो जाने पर ऐसा ही होता है।

माँ बोली—तुम सब लोगों की मति मारी गयी है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मालती को पढ़ाने-लिखाने में हज़ारों रुपया जो ख़र्च हुआ, वह व्यर्थ गया।

दोनों अन्दर आने लगीं।

पूर्णिमा माँ के साथ हो ली। माँ अपने कमरे में बिछे हुए तख़्त पर बैठने लगीं। पूर्णिमा ने फ़र्श पर शीतलपाटी बिछा ली। बैठते ही उसने कहा—तुम्हारा यह ख़याल ठीक नहीं है माँ। बीबी का जीवन बहुत उज्ज्वल है। इधर उनमें मज़दूरों की सेवा का जो भाव आया है, वह कितना ऊँचे दरजे का है।

"अच्छा, एक बात बतलाओ" माँ ने बहस करने के ढंग से, अपनी समझ से जैसे वह कोई अकाट्य तर्क की बात हो, पूछा—यह विनायक जितना पढ़ा है, उतना न हमारे बड़े बेटा पढ़े हैं, न छोटे। यहाँ तक कि तुम लोगों के देवता-स्वरूप शर्म्माजी भी नहीं पढ़े। परन्तु उसकी ग़रीबी का हाल तो हमसे छिपा है नहीं। मैं तुमसे पूँछती हूँ, भाग्यवान होता तो उसे हमारे घर—मेरी कोख—में जन्म लेना चाहिये था।

पूर्णिमा ने फिर अपना उत्तर दोहराया। उसने कहा—पर पूज्य पितातुल्य हमारे ससुरजी जो सम्पत्ति हम लोगों के लिए छोड़ गये हैं, वह अगर पूरी नहीं, कहीं अधिकांश में भी राज्य की हो जाती, तब क्या होता?

मां बोली—ज़रूर पी लो और दूध ही क्यों, तेरी पाव-रोटी भी तो रक्खी होगी।

पूर्णिमा बोली—झट से दूध में डुबोकर ले तो आ।

शिकायत के ढंग से मां कहने लगी—मैंने तो कुछ कहना ही छोड़ रक्खा है। आज पता नहीं कहाँ से मालती को यह सूझा है कि कुछ खाना अपने आप स्वीकार कर रही है। नहीं तो क़सम से कहती हूं, अगर कुछ खाकर बाहर निकलने की बात मैं अपनी ओर से कहती, तो यह कभी स्वीकार न करती।...मेरी कोई बात ही नहीं मानती; सिर्फ़ एक खाने की बात नहीं है।

"लेकिन इसके लिए ऐसी चिन्ता करने की बात भी नहीं है मां—" विनायक बोला—माता-पिता के जीवन का एक आनन्द होता है। उसी का एक रूप इसे भी समझ लेना चाहिये। बाद में जब सभी कुछ अपने आप पर अवलम्बित हो जाता है, तब हम इन्हीं बातों को सोचते रह जाते हैं। स्वच्छन्द जीवन की उपेक्षित मान्यताएँ भी आगे चलकर प्रायः गार्हस्थ्य जीवन के स्तर को उन्नत बना देती हैं। और सच पूछो तो उनकी उचित उपयोगिता तभी ठीक तरह से साकार भी हो पाती है।

उत्तर सुनकर पूर्णिमा सोचने लगी—यह व्यक्ति अपनी प्रत्येक भेंट में मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

थोड़ी देर में कपड़े बदलकर तैयार मालती बुलाने लगी—चलिये विनायक बाबू।

गाड़ी पर चलकर जब दोनों पोर्टिको से चल दिये, तो पूर्णिमा बोली—अगर कहीं विनायक बाबू किसी अमीर घर में पैदा हुए होते, तो यह जोड़ भी बुरा नहीं था, मां।

मां ने निःश्वास लेते हुए कहा—मगर होते कैसे! भाग्य भी तो कोई चीज़ है।

'भाग्य क्या है! भाग्य की तो इसमें कोई बात ही नहीं मां—" पूर्णिमा बोली—यह तो इधर थोड़े बहुत दिनों से चला आ रहा समाज का

एक बना-बनाया ढंग है, जिसमें पढ़े-लिखे योग्य व्यक्ति ग़रीब बने रहते हैं और पूर्वजों की छोड़ी हुई जमा पूँजी के आधार पर अयोग्य-से-अयोग्य आदमी बैठे खाते और गुलछर्रे उड़ाते हैं। आज अगर पिता की छोड़ी हुई सम्पत्ति राष्ट्र की हो जाने लगे, तो लोगों को पता चल जाय कि भाग्य का खेल क्या है!

माँ बोलीं—पर ऐसा होने क्यों लगा। ऐसा भी कहीं हो सकता है! यह तो एक अजीब अन्धेर की बात है।

पूर्णिमा बोली—साम्यवादी देश हो जाने पर ऐसा ही होता है।

माँ बोली—तुम सब लोगों की मति मारी गयी है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मालती को पढ़ाने-लिखाने में हज़ारों रुपया जो ख़र्च हुआ, वह व्यर्थ गया।

दोनों अन्दर आने लगीं।

पूर्णिमा माँ के साथ हो ली। माँ अपने कमरे में बिछे हुए तख़्त पर बैठने लगीं। पूर्णिमा ने फ़र्श पर शीतलपाटी बिछा ली। बैठते ही उसने कहा—तुम्हारा यह ख़याल ठीक नहीं है माँ। बीबी का जीवन बहुत उज्ज्वल है। इधर उनमें मज़दूरों की सेवा का जो भाव आया है, वह कितना ऊँचे दरजे का है!

"अच्छा, एक बात बतलाओ" माँ ने बहस करने के ढंग से, अपनी समझ से जैसे वह कोई अकाट्य तर्क की बात हो, पूछा—यह विनायक जितना पढ़ा है, उतना न हमारे बड़े बेटा पढ़े हैं, न छोटे। यहाँ तक कि तुम लोगों के देवता-स्वरूप शर्म्माजी भी नहीं पढ़े। परन्तु उसकी ग़रीबी का हाल तो हमसे छिपा है नहीं। मैं तुमसे पूँछती हूँ, भाग्यवान होता तो उसे हमारे घर--मेरी कोख—में जन्म लेना चाहिये था।

पूर्णिमा ने फिर अपना उत्तर दोहराया। उसने कहा—पर पूज्य पितातुल्य हमारे ससुरजी जो सम्पत्ति हम लोगों के लिए छोड़ गये हैं, वह अगर पूरी नहीं, कहीं अधिकांश में भी राज्य की हो जाती, तब क्या होता?

अब माँ की समझ में कुछ आया। वे बोलीं—हाँ, तब तो हम सब लोग भी आज यह रईसी नहीं भोग सकते थे।

"इसका मतलब यह हुआ कि"—पूर्णिमा बोली—तब हम लोग भी तुम्हारे शब्दों में भाग्यशाली न होते। और सारे देश का ही जब यह हाल होता, तब उस राज्य के पास जो सम्पति होती, वह उन लोगों में बँट जाती, जो परिश्रम करके अपनी जीविका चलाते हैं। जो कोई भी राज्य के लिए अधिक उपयोगी काम करता, उसी को उपभोग के लिए, उजरत में, अधिक रुपया मिलता। उस दशा में, जब कि अपनी संतान को वह विशेष सम्पत्ति छोड़ जाने का अधिकारी न होता, यह भी स्पष्ट है कि उसके रहन-सहन का का दर्जा भी कम ऊँचा नहीं होता। और इतना तो तुम मानती ही हो कि योग्यता की दृष्टि से विनायक बाबू हम लोगों में सब से ऊपर हैं, तब उस दशा में हम सब लोगों की अपेक्षा सुखी भी वही अधिक होते। तो जिस वस्तु को आज हम भाग्य शब्द से याद करते हैं, वह वास्तव में एक रूढ़ि, एक प्रचलन और सामाजिक संगठन से सम्बन्ध रखने वाली एक नीति है, न कि भाग्य।

पर अभी माँ का समाधान हो नहीं पाया था। इसलिए वे कहने लगीं—लेकिन यह विनायक अपने लिए कोई ऐसा उद्योग भी तो नहीं करता, जिससे उसे कोई ऊँची नौकरी ही मिल जाती। निकम्मा आदमी तो कभी उन्नति कर नहीं सकता।

पूर्णिमा बोली—तुम कर्म की बात मत करो माँ। क्या हमारे देश में भी ऐसे लोगों की कमी है जो सपरिवार रात-दिन लगातार काम में तेली के बैल की तरह जुते रहते हैं। उनका सारा का सारा जीवन अँधेरी कोठरियों, गन्दे मकानों, धूप और शीत की स्वास्थ्यनाशक सीमाओं, दिल और दिमाग को बेकार कर देने वाली मशीनों और फैक्टरियों की [illegible] [illegible] के बीच बीत जाता है। फिर भी वे दरिद्र-के-दरिद्र ही बने रहते हैं। काम करते-करते ही वे जन्म लेते और मरते हैं, काम करते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] और स्नायुओं से निःशक्त होते-होते अपनी

जीवनलीला भी समाप्त कर देते हैं। वे नहीं जानते, भाग्योदय क्या वस्तु है। वे नहीं जानते, जीवन की उन्नति क्या है। वे यह भी नहीं जान पाते कि इस समस्त जगत् के असीम सौख्य-भोग में उनका भी कोई भाग हैं। फिर यह क्रम आज पचासों वर्षों से बराबर चल रहा है। पीढ़ियाँ ख़तम हो गयीं, पर उनकी ग़रीबी ख़तम नहीं हुई। मैं पूछती हूँ कि क्या यह हमी लोगों की स्वार्थपरता का कुफल नहीं है?

माँ बोली—पर उसकी वकालत करने की तुझे सूझी क्या है!

पूर्णिमा मन-ही-मन अपने आपसे पूछने लगी—वास्तव में क्या कोई ऐसी बात है, जो ये विनायक बाबू मुझे अधिक भाते हैं? मैं तो नहीं जानती! वह कुछ निश्चय न कर पायी। तब वह बोली—'तो क्या' इसका यह मतलब है कि एक सच्ची बात भी, जो मेरे मन में आये, मैं प्रकट न करूँ!' और इतना कहती हुई वह उठकर चल दी।

पच्चीस

जगत और जीवन में कितना कलुष भरा है, इसकी थाह किसी ने कभी पायी है! जितनी गहराई की खोज की जायगी, सीमा उसकी उतनी ही दूर चली जायगी। कलुष का आदि प्रारम्भ में इतना स्पष्ट भी नहीं होता कि दिखलाई तो पड़ जाय। वास्तव में उत्तरोत्तर उस पर पड़ते जाने वाले आवरण उसे पोषण देते हुए भीमकाय बना डालते हैं। आज की सभ्यता का सबसे घातक और विषाक्त रूप वहीं प्रतिष्ठित होता है जहाँ कटुसत्य पर परदा डाल दिया जाता है। बाद में रोने-धोने और अन्य ढंग से पश्चात्ताप करने से क्या होता है! घटनाओं के बीभत्स और नारकीय दृश्य आज के लिए सर्वथा नवीन तो हैं नहीं। मनुष्य अपनी ही बनाई हुई रूढ़ियों और नाशकारी मान्यताओं से अपना सिर चाहे जितना धुनता रहे; किन्तु उसकी अनिवार्य्य बुभुक्षा की जलन जब भी अवसर पायेगी, अपना भैरव नृत्य करके

ही शान्त होगी। नैतिक सीमाएँ बनेंगी और नष्ट होंगी, आदर्शों का स्थापन एक बार होगा, पुनः मिट जायगा। मनुष्य अपने त्याग और बलिदान से उसे सींचेगा। बेलि भी उनकी लहलहायेगी। किन्तु विवर्तन का चक्र तो कभी कहीं चला नहीं जायगा। वह तो आयेगा। क्रान्ति का ही अपना एक नाम इतिहास है।

आज गिरधारी का मन इतना अशान्त, अस्थिर और अधीर था कि उसने घर लौट कर भोजन नहीं किया। रेणु, विनायक, मालती तथा ललित सब-के-सब विपिन को देखने के लिए हास्पिटल आ गये थे। गिरधारी तो पांच बजे ही पहुँच गया था। अन्य लोग थोड़ी-थोड़ी देर से पहुँच पाये थे। सब के सब रात तक वहीं बैठे रहे। रञ्जन को नींद आ रही थी। वह घर आने के लिए मचल भी रहा था। इस कारण रेणु लोचन के साथ पहले चली आयी थी। अन्त में जब नौ बज गये और तब भी विपिन सचेत नहीं हुआ, तो वह यह कहकर चला आया कि जिस समय चैतन्य होकर विपिन आंखें खोलें, चाहे जो वक्त हो, मुझे तुरन्त सूचित कर दिया जाय।

विनायक बोला—मुझे एक बार घर जाना ही पड़ेगा। मैं मां को स्थिति समझा आऊँ, तब फिर निश्चिन्त होकर यहीं आ जाऊँगा।

मालती बोली—मैं तो रात-भर यहीं रहूँगी। गाड़ी लौटाये देती हूँ।

मालती ने जिस समय यह बात कही, उस समय क्षण-भर के लिए गिरधारी का ध्यान उसकी मुद्रा की ओर आकृष्ट हुआ, वह भी यह कहते कहते रह गया कि तो भी तुम्हारी तबियत खराब रहती है। ऐसी दशा में तुम्हारा यहां रात-भर जागरण करना ठीक नहीं है। किन्तु वह कुछ बोल न सका।

तब [illegible] उससे पूछा—क्या तुम मालती के साथ पहुँच पायी थीं? और [illegible] तुम्हें विपिन का ऐसा समाचार मिला था?

रेणु बोली—[illegible]! मार्ग में ही मालती से भेंट हो गयी। [illegible] [illegible] पूछ कर उनके साथ हो गयी थी।

"तो यह कहो कि तुम नवावगंज पहुँच नहीं पायीं।"—शर्म्माजी ने कहा।

रेणु वोली—यही तो मैं भी कह रही हूँ।

वस गिरधारी ने केवल यही दो प्रश्न रेणु से किये। रात को दो वजे तक वह कमरे में टहलता रहा। न तो वह कुछ पढ़ सका, न लेट सका। एक-आध वार यह भी सोचने लगा कि इससे तो यही अच्छा होता कि मैं विपिन के यहाँ ही वना रहता। परन्तु फिर मन में आया—किन्तु वह भी ठीक न रहता। वहाँ मालती भी तो उपस्थित है। भीड़-भाड़ में बात छिप जाती है। कोई यह नहीं ताड़ पाता कि अमुक आदमी अमुक व्यक्ति से वोलचाल नहीं रखता है। किन्तु जव वह रात-भर उन्हीं लोगों के साथ रहता तो इस नीति का निर्वाह किस प्रकार कर सकता था!

आज दो-एक वार यह भी उसके मन में आया कि मालती से वोल-चाल वन्द करना उचित नहीं हुआ।

रात को एक वजे के लगभग आज रेणु की नींद भी एक वार उचट गयी। उसने जो गिरधारी के शयनागार की ओर देखा तो उसे आश्चर्य्य हुआ। वह उनके पास जा पहुँची। वे उस समय चारपाई पर दोनों घुटनों के वल सिर टेके बैठे हुए थे।

रेणु ने जो उनको इस दशा में वैठे हुए देखा, तो वह वोली—तुम अभी तक सोये नहीं!

शर्म्माजी ने वहुत इतमीनान से सिर घुटनों पर से उठाकर कहा—हाँ, नहीं सो सका। नींद नहीं आयी।

रेणु वोली—तुम लेटे ही न होगे। नींद कैसे आती!

शर्म्माजी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रेणु फिर वोली—मैं पूछती हूँ, लेटे थे कि नहीं? वोलो न?

शर्म्माजी निःश्वास ले रहे थे।

रेणु पास ही उसी चारपायी पर जा वैठी। उसके दायें कन्धे पर

ही शान्त होगी। नैतिक सीमाएँ बनेंगी और नष्ट होंगी, आदर्शों का स्थापन एक बार होगा, पुनः मिट जायगा। मनुष्य अपने त्याग और बलिदान से उसे सींचेगा। बेलि भी उनकी लहलहायेगी। किन्तु विवर्तन का चक्र तो कभी कहीं चला नहीं जायगा। वह तो आयेगा। क्रान्ति का ही अपना एक नाम इतिहास है।

आज गिरधारी का मन इतना अशान्त, अस्थिर और अधीर था कि उसने घर लौट कर भोजन नहीं किया। रेणु, विनायक, मालती तथा ललित सब-के-सब विपिन को देखने के लिए हास्पिटल आ गये थे। गिरधारी तो पाँच बजे ही पहुँच गया था। अन्य लोग थोड़ी-थोड़ी देर से पहुँच पाये थे। सब के सब रात तक वहा बैठे रहे। रञ्जन को नींद आ रही थी। वह घर आने के लिए मचल भी रहा था। इस कारण रेणु ललित के साथ पहले चली आयी थी। अन्त में जब नौ बज गये और तब भी विपिन सचेत नहीं हुआ, तो वह यह कहकर चला आया कि जिस समय चैतन्य होकर विपिन आँखें खोले, चाहे जो वक्त हो, मुझे तुरन्त सूचित कर दिया जाय।

विनायक बोला—मुझे एक बार घर जाना ही पड़ेगा। मैं मा को स्थिति समझा आऊँ, तब फिर निश्चिन्त होकर यहीं आ जाऊँगा।

मालती बोली—मैं तो रात-भर यहीं रहूँगी। गाड़ी लौटाये देती हूँ।

मालती ने जिस समय यह बात कही, उस समय क्षण-भर के लिए गिरधारी का ध्यान उसकी मुद्रा की ओर आकृष्ट हुआ, [illegible] कह सका कि [illegible] तुम्हारा [illegible] रहती है। ऐसी दशा में तुम्हारा [illegible] जागरण करना ठीक नहीं है। किन्तु वह कुछ बोल न सका।

[illegible]—[illegible] तुम [illegible] पहुँच [illegible] था [illegible] विपिन के लिए [illegible] किया था।

[illegible]—[illegible] नींद [illegible]।

"तो यह कहो कि तुम नवाबगंज पहुँच नहीं पायीं।"—शर्म्माजी ने कहा।

रेणु बोली—यही तो मैं भी कह रही हूँ।

बस गिरधारी ने केवल यही दो प्रश्न रेणु से किये। रात को दो बजे तक वह कमरे में टहलता रहा। न तो वह कुछ पढ़ सका, न लेट सका। एक-आध बार यह भी सोचने लगा कि इससे तो यही अच्छा होता कि मैं विपिन के यहाँ ही बना रहता। परन्तु फिर मन में आया—किन्तु वह भी ठीक न रहता। वहाँ मालती भी तो उपस्थित है। भीड़-भाड़ में बात छिप जाती है। कोई यह नहीं ताड़ पाता कि अमुक आदमी अमुक व्यक्ति से बोलचाल नहीं रखता है। किन्तु जब वह रात-भर उन्हीं लोगों के साथ रहता तो इस नीति का निर्वाह किस प्रकार कर सकता था!

आज दो-एक बार यह भी उसके मन में आया कि मालती से बोल-चाल बन्द करना उचित नहीं हुआ।

रात को एक बजे के लगभग आज रेणु की नींद भी एक बार उचट गयी। उसने जो गिरधारी के शयनागार की ओर देखा तो उसे आश्चर्य्य हुआ। वह उनके पास जा पहुँची। वे उस समय चारपाई पर दोनों घुटनों के बल सिर टेके बैठे हुए थे।

रेणु ने जो उनको इस दशा में बैठे हुए देखा, तो वह बोली—तुम अभी तक सोये नहीं!

शर्म्माजी ने बहुत इतमीनान से सिर घुटनों पर से उठाकर कहा—हाँ, नहीं सो सका। नींद नहीं आयी।

रेणु बोली—तुम लेटे ही न होगे। नींद कैसे आती!

शर्म्माजी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रेणु फिर बोली—मैं पूछती हूँ, लेटे थे कि नहीं? बोलो न?

शर्म्माजी निःश्वास ले रहे थे।

रेणु पास ही उसी चारपायी पर जा बैठी। उसके दायें कन्धे पर

बाँया हाथ रखकर वह कहने लगी—आज उदास बहुत जान पड़ते हो। क्या बात है?

शर्म्माजी बोले—तुम सोओ जाकर चुपचाप, नहीं तो तुम्हारी नींद भी खराब होगी।

"मैं तब तक सोने नहीं जाऊँगी, जब तक तुम लेट नहीं रहोगे।" तुम्हें कुछ भी अपना ख़याल नहीं रह गया। दिन-दिन तुम दुर्बल होते जाते हो। यह कोई अच्छी बात नहीं है।

गिरधारी बोला—तंग मत करो रेणु। मुझे बैठा रहने दो। जैसे ही नींद आयी कि मैं स्वतः लेट रहूँगा। ज़िद करने से तो कुछ फ़ायदा है नहीं। तुम जाओ, चुपचाप सो तो रहो जाकर (ज़रा तीव्र स्वर में) जाओ, उठो।...मैं कहता हूँ, उठो, जाओ।

रेणु डर-सी गयी। वह उठ बैठी और बोली—"मैं चली तो जा रही हूँ, पर तुम्हारी यह नीति ठीक नहीं है।"

बस, इन्हीं शब्दों के साथ वह सोने चली गयी। चारपाई पर जाते ही दस मिनट में उसे नींद आ गयी।

तीन के लगभग शर्म्माजी की आँख ज़रा झपक गयी, फिर तब खुली, जब नीचे सड़क पर किसी ने पुकारा—आपको हास्पिटल में विपिन ने याद किया है।

संवाद पाकर शर्म्माजी उठे और तुरन्त चल दिये।

वे ज्यों ही [illegible] पर आये, त्योंही घूमता हुआ नलिन देख पड़ा। गिरधारी ने [illegible] कर लिया। आज उसने साहस करके नलिन से पूछा—[illegible] मैं [illegible] था। [illegible] मैं [illegible] [illegible] पूछूँगा।

[illegible] गिरधारी [illegible] देखकर [illegible] बोला—[illegible] है, [illegible]। मैं आपसे [illegible]

गिरधारी ने पूछा—[illegible] था?

ललित सोच-विचार में पड़ गया। बोला—आपसे मालती ने जान पड़ता है, कुछ कहा है। जो हो, मैं आपसे झूठ क्यों बोलूँ, एक बार मुझे कुछ शक जरूर हो गया था। मैंने उससे विवाह के लिए प्रस्ताव भी किया था। पर उसी के बाद हमारे सम्बन्ध टूट गये।

गिरधारी ने किसी तरह का कोई विचार न प्रकट करके केवल इतना कहा—बस मुझे यही पूछना था।

विपिन को चेतना सवेरे पाँच बजे आयी थी। चेतन होते हुए पहले उसने पानी माँगा। पर व्यवस्था के अनुसार उसे पहले एक मिक्स्चर दिया गया। वह बहुत कमजोर हो गया था। बहुत धीरे से बात कह पाता था। सिर इधर उधर करते हुए सबसे पहले उसने प्रश्न किया—मैं कहाँ हूँ?

मालती आराम-कुरसी पर लेट गयी थी। चार बजे तक वह विनायक के साथ बातचीत करती रही थी। अन्त में पहले विनायक को नींद आगयी, फिर मालती को।

इस प्रकार उत्तर विपिन को नर्स ने ही दिया—आप हास्पिटल में हैं।

बस, इतनी बात हो पायी थी, कि मालती झट से उठ बैठी। वह विपिन की ओर झुक गयी। उसने उसका हाथ टटोला। थोड़ा टेम्परेचर उसे मालूम पड़ा। नर्स बोली—पहले डाक्टर साहब को खबर करना ठीक होगा। और उसने तुरन्त एक नौकर को इसके लिए भेज दिया।

मालती ने कहा—आप चिन्ता जरा भी न करें। जान बच गयी, यह बहुत बड़ी बात हुई। अब क्या है, एक-आध दिन में तबियत अच्छी हो जायगी।

यह उसने जान-बूझ कर नहीं पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया?

इसी समय नर्स को शर्म्माजी को सूचना देने का स्मरण हो आया। जैसे ही डाक्टर आये, वैसे ही शर्म्माजी को बुलाने के लिए आदमी भेज दिया गया।

दवा पीते ही विपिन कुछ और चैतन्य हुआ। मालती और विपिन को लक्ष करके उसने कहा—आप लोगों को बड़ी तकलीफ़ हुई। नर्स ने उत्तर दिया—दोनों साहब सारी रात जगे हैं।

हुए, उनसे मैं बिलकुल अपरिचित था। उस बार जब मैं उसको लेने के लिये गया था, तब जिस कारण उसे उन्होंने नहीं भेजा, उसे दबाकर प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने यही घोषित किया था कि जिसे अपने खाने का सुभीता नहीं है, वह स्त्री को क्या खिलायेगा? पर इस बार पता चला कि उनके इस उत्तर के अन्दर वास्तव में एक रहस्य था।

"ससुर महाशय ने इधर एक नया विवाह किया है। उस स्त्री ने उन्हें इतना अनुचर बना लिया है कि उसी की व्यवस्था के अनुसार ससुर महोदय चलते हैं। जब मैंने उनसे विदा के लिए कहा, तो उन्होंने उत्तर दिया—विदा तो मैं कर देता, पर तुम्हारी माँ के बाल-बच्चा होनेवाला हैं। घर के काम को सम्हालने और अन्य बच्चों को देखने-सुननेवाला कोई है नहीं। ऐसी दशा में सत्यवती क भेज सकना मेरे लिए कठिन है। फिर दो-चार महीने बाद आकर ले जाना। यों तुम्हारा घर है; आते-जाते बने रहा करो।'

"आप जानते हैं, मनुष्य के धैर्य्य की एक सीमा होती है। मैंने उस समय उनको कोई उत्तर नहीं दिया। सोचा—मैं सत्यवती से पहले बात-चीत कर लूँ, तब कुछ निश्चय करूँ।...वहाँ पर कुछ इस तरह की प्रथा है कि जामाता चाहे जितने दिनों बाद ससुराल जाये, लड़की के साथ वे लोग उसकी भेंट नहीं होने देते। प्रायः मकान की बाहरी बैठक, दालान अथवा छप्पर हुआ तो उसी में, उसके सोने का प्रबन्ध किया जाता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैं एक दिन रहा, दो दिन रहा। किसी तरह जब सत्यवती से मिलने का कोई प्रबन्ध ही न हो सका, तो मैंने पास-पड़ोस में बैठना-उठना शुरू कर दिया।

"यहाँ यह मैं स्पष्ट कर दूँ कि वह गाँव काफ़ी बड़ा है। हफ़्ते में दो बार वहाँ बाजार लगता है। ससुर महाशय के कई मकान हैं। उनका कारोबार खूब फैला हुआ है। एक आटा-चक्की चलती है और ग़ल्ले का तो उनका अच्छा-खासा चलता हुआ कारोबार है। पास-पड़ोस में मैंने जो बैठक-उठक शुरू की, तो मुझे कई ऐसी बातों का पता चला, जो मेरे लिए

विनायक बोला—आज तुम हमको मिल गये, खोने नहीं पाये, सब से अधिक प्रसन्नता की बात तो यह है।

डॉक्टर ने स्टेथसकोप-से विपिन की परीक्षा ली। बोले—एवरी थिंग इज़ क्वाइट आलराइट।

फिर उन्होंने पूछा—मिक्स्चर दे दिया था न ?

नर्स ने उत्तर दिया—आँख खोलने पर पहली बात सुनते ही, फ़ौरन।

तीन दिन के बाद की बात है :

विपिन शर्म्माजी के यहां बैठा हुआ है। उसने आज उन्हीं के यहाँ भोजन किया है। रात के नौ बजे हैं। रञ्जन सो गया है। लोचन बाजार से दूध लाने गया हुआ है। रेणु कुरसी डाले पास बैठी है। शर्म्माजी ने विपिन के आने पर कुछ कहा नहीं। यहाँ तक कि आत्मघात की घटना के सम्बन्ध में भी कोई प्रश्न नहीं किया।

तब विपिन मनभेद बतलाने लगा। वह बोला—कई दिन से मैं आपको इस घटना का भेद बतलाने के लिए सोच रहा था। यह भी मेरे मन में आता था कि और किसी को चाहे न भी बतलाया जाय, पर आपसे क्यों कैसे छिपा सकता हूँ! उस दिन आपने कहा था—विनय से मनी-आर्डर भेजना शुरू कर दो। देखो, क्या होता है। मैंने तदनुसार दस रुपये किराया खर्च भेज दिये थे। आठ दिन में उसकी रसीद और फिर दूसरे ही दिन एक पत्र आया था। उसमें लिखा हुआ था—दो-चार दिन के लिए आप चले आइये। यहाँ लोग आपसे मिलने के लिए बड़े उत्सुक हैं। मैं [illegible] बिना सूचना घर से चला गया।

[illegible] विपिन रुक गया। [illegible] और [illegible]
[illegible]

[illegible]

हुए, उनसे मैं विलकुल अपरिचित था। उस वार जब मैं उसको लेने के लिये गया था, तव जिस कारण उसे उन्होंने नहीं भेजा, उसे दवाकर प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने यही घोषित किया था कि जिसे अपने खाने का सुभीता नहीं है, वह स्त्री को क्या खिलायेगा ? पर इस वार पता चला कि उनके इस उत्तर के अन्दर वास्तव में एक रहस्य था।

"ससुर महाशय ने इधर एक नया विवाह किया है। उस स्त्री ने उन्हें इतना अनुचर बना लिया है कि उसी की व्यवस्था के अनुसार ससुर महोदय चलते हैं। जब मैंने उनसे विदा के लिए कहा, तो उन्होंने उत्तर दिया—विदा तो मैं कर देता, पर तुम्हारी माँ के वाल-वच्चा होनेवाला हैं। घर के काम को सम्हालने और अन्य वच्चों को देखने-सुननेवाला कोई है नहीं। ऐसी दशा में सत्यवती को भेज सकना मेरे लिए कठिन है। फिर दो-चार महीने बाद आकर ले जाना। यों तुम्हारा घर है; आते-जाते बने रहा करो।'

"आप जानते हैं, मनुष्य के धैर्य्य की एक सीमा होती है। मैंने उस समय उनको कोई उत्तर नहीं दिया। सोचा—मैं सत्यवती से पहले वात-चीत कर लूँ, तब कुछ निश्चय करूँ।...वहाँ पर कुछ इस तरह की प्रथा है कि जामाता चाहे जितने दिनों वाद ससुराल जाये, लड़की के साथ वे लोग उसकी भेंट नहीं होने देते। प्रायः मकान की वाहरी बैठक, दालान अथवा छप्पर हुआ तो उसी में, उसके सोने का प्रवन्ध किया जाता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैं एक दिन रहा, दो दिन रहा। किसी तरह जब सत्यवती से मिलने का कोई प्रवन्ध ही न हो सका, तो मैंने पास-पड़ोस में बैठना-उठना शुरू कर दिया।

"यहाँ यह मैं स्पष्ट कर दूँ कि वह गाँव काफ़ी वड़ा है। हफ़्ते में दो वार वहाँ वाजार लगता है। ससुर महाशय के कई मकान हैं। उनका कारोवार खूब फैला हुआ है। एक आटा-चक्की चलती है और ग़ल्ले का तो उनका अच्छा-खासा चलता हुआ कारोवार है। पास-पड़ोस में मैंने जो बैठक-उठक शुरू की, तो मुझे कई ऐसी वातों का पता चला, जो मेरे लिए

"अन्त में जिस दिन मैं यहाँ आया, उसी दिन की वा
काल का समय था। दीपक नहीं जल पाये थे। मैं घूमता हुआ ससुर
जी की गोदाम की ओर जा पहुँचा। कुतूहलवश मैंने सोचा—देखूँ, माल
क्या···कितना है। मैं बाहर फाटक से न जाकर, खिड़की से ही जाने
लगा। बाहरी द्वार उसका बन्द नहीं था; किवाड़ मात्र भिड़े हुए थे।
एक धक्के के साथ मैंने उसे खोला, तो मुझे अपनी आँखों पर विश्वास
नहीं हुआ। नारी की लज्जाहरण की जो भी सीमाएँ हैं, उनकी नाश-
क्रिया का वह दृश्य!—सो भी ससुरजी के भृत्य उसी कहार के साथ!

विपिन चाहता तो रोकर दिखा सकता था। किन्तु हृदय के हाहाकार
की एक ऐसी भी स्थिति होती है, जिससे रुदन नहीं फूटता। वह तो
उसके समक्ष बहुत सस्ती वस्तु है। विपिन बोला—आपको कभी बतलाने
का अवसर नहीं मिला। किन्तु आज मुझे इतना बतलाना है कि मेरे वंश
का गौरव कभी इतना अधिक था कि हमारे पूर्वज कुलीनता में अपने से हीन
व्यक्ति के यहाँ विवाह नहीं करते थे। ब्राह्मण को छोड़कर अन्य किसी वर्ण
के घर से आया तथा रास्ते का चला हुआ दूध तक नहीं पीते थे। रसोई-
घर से जो लकड़ी एक बार वापस आती थी, वह दुबारा उसमें तभी जा
सकती थी, जब धोकर सुखा ली जाती थी। शर्म्माजी, वह गौरव आज
हमारा सब-का-सब न जाने कहाँ विलीन हो गया!

इसके बाद विपिन चुप रह गया। वह सोचने लगा, सम्भव है,
शर्म्माजी कुछ कहें। पर जब वे कुछ नहीं बोले, तो विपिन ने कह दिया—
आप लोगों ने मृत्यु से तो बचा लिया, पर अब जिन्दगी से कैसे बचाइयेगा!

लोचन दूध ले आया था। वह ठंडा हो रहा था। एक-एक गिलास
वह शर्म्माजी तथा विपिन को देने लगा।

रेणु बोली—पी लो विपिन, चाहे जितना दुःख हो, मनुष्य अपने कर्म
का त्याग कर नहीं पाता। देखो न, प्रकृति कितनी निर्मम है!

एक निःश्वास लेते हुए शर्म्माजी बोले—मैं क्या बतलाऊँ, मेरी तो
बुद्धि काम नहीं देती। मैं तो यही सोचने लगा हूँ, आज हमारी जैसी

"अन्त में जिस दिन मैं यहाँ आया, उसी दिन की वा
काल का समय था। दीपक नहीं जल पाये थे। मैं घूमता हुआ ससुर
जी की गोदाम की ओर जा पहुँचा। कुतूहलवश मैंने सोचा—देखूँ, माल
क्या···कितना है। मैं बाहर फाटक से न जाकर, खिड़की से ही जाने
लगा। बाहरी द्वार उसका बन्द नहीं था; किवाड़ मात्र भिड़े हुए थे।
एक धक्के के साथ मैंने उसे खोला, तो मुझे अपनी आँखों पर विश्वास
नहीं हुआ। नारी की लज्जाहरण की जो भी सीमाएँ हैं, उनकी नाश-
क्रिया का वह दृश्य!—सो भी ससुरजी के भृत्य उसी कहार के साथ!

विपिन चाहता तो रोकर दिखा सकता था। किन्तु हृदय के हाहाकार
की एक ऐसी भी स्थिति होती है, जिससे रुदन नहीं फूटता। वह तो
उसके समक्ष बहुत सस्ती वस्तु है। विपिन बोला—आपको कभी बतलाने
का अवसर नहीं मिला। किन्तु आज मुझे इतना बतलाना है कि मेरे वंश
का गौरव कभी इतना अधिक था कि हमारे पूर्वज कुलीनता में अपने से हीन
व्यक्ति के यहाँ विवाह नहीं करते थे! ब्राह्मण को छोड़कर अन्य किसी वर्ण
के घर से आया तथा रास्ते का चला हुआ दूध तक नहीं पीते थे! रसोई-
घर से जो लकड़ी एक बार वापस आती थी, वह दुबारा उसमें तभी जा
सकती थी, जब धोकर सुखा ली जाती थी। शर्म्माजी, वह गौरव आज
हमारा सब-का-सब न जाने कहाँ विलीन हो गया!

इसके बाद विपिन चुप रह गया। वह सोचने लगा, सम्भव है,
शर्म्माजी कुछ कहें। पर जब वे कुछ नहीं बोले, तो विपिन ने कह दिया—
आप लोगों ने मृत्यु से तो बचा लिया, पर अब जिन्दगी से कैसे बचाइयेगा!

लोचन दूध ले आया था। वह ठंडा हो रहा था। एक-एक गिलास
वह शर्म्माजी तथा विपिन को देने लगा।

रेणु बोली—पी ल विपिन, चाहे जितना दुःख हो, मनुष्य अपने कर्म
का त्याग कर नहीं पाता। देखो न, प्रकृति कितनी निर्मम है!

एक निःश्वास लेते हुए शर्म्माजी बोले—मैं क्या बतलाऊँ, मेरी तो
बुद्धि काम नहीं देती। मैं तो यही सोचने लगा हूँ, आज हमारी जैसी

की हवा खिलाये बिना अगर मैं शान्त हो जाऊँ, तो मेरे पुरुपत्व को धिक्कार है।

पर ज्योंही वे चलने लगते; त्योंही बूँदी एक-न-एक ऐसा कारण उपस्थित कर देती कि उन्हें रुकना पड़ता। अन्त में रुपया देने के कारण जब सब तरह से उनका नशा उतर गया और वे वास्तव में चलने के लिए तत्पर हो गये, तो उन्होने बूँदी से पूछा—एक बात मेरी समझ में नहीं आयी।

'बूँदी ने ब्रजनाथ बाबू की ओर एकटक देखते हुए उत्तर दिया—उसको भी समझ लीजिये न। ऐसी जल्दी क्या पड़ी है!

· ब्रजनाथ बाबू बोले—मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि आज तुमने मुझको इस तरह अपमानित क्यों किया? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो एक निर्दय हत्यारे की भाँति तुम मुझे तहखाने तक में डाल देने के लिए तैयार हो गयी थीं। पचासों वेश्याओं को जानता हूँ, पर किसी ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया! अगर ऐसा अन्धेर होने लगे, तो तुम लोगों का इस तरह रहना मुश्किल हो जाय। मैंने तो किसी तरह, रुपये के बल से, अपनी रक्षा कर ली। पर दूसरा आदमी होता, तो क्या तुम सोचती हो, इस तरह सहज ही रुपया दे देता! क्या वह अपनी जान पर न खेल जाता! और क्या इसमें कोई सन्देह है कि उस दशा में तुमको लेने के देने पड़ जाते!

बूँदी के हृदय में जैसे छुरियाँ चल रही हैं। वह बारम्बार सोचती है, इसको छोड़ ही क्यों दिया? इसका तो काम तमाम कर देना चाहिये था। अतएव उसने ब्रजनाथ बाबू के कथन पर एक तुच्छता का-सा प्रकट करते हुए मुँह बना दिया। फिर सिगरेट जलाकर उसने इस ढंग से धुआँ उड़ाया जैसे यह कोई महत्व की बात ही न हो। जैसे यह बात अपराध के रूप में उसको स्पर्श तक न कर पाती हो! उसने केवल इतना कहा—और कुछ?

ब्रजनाथ बोले—मुझे यह एक बड़ी विचित्र बात मालूम पड़ती है कि गला भी काटना होता है, तो वेश्या धीरे-धीरे काटती है; एकदम से एक ही झटके में गर्दन नहीं उड़ा देती। यदि ऐसा होने लगे; तो व्यवसाय के

रूप में यह पेशा किसी प्रकार दस दिन भी चल न सके। रुपया तो तुम ले ही चुकी हो। अपमान भी जितना तुम कर सकती थीं, तुमने कर ही लिया है। भेद नहीं बतलाओगी, तो मुझे एक शंका बनी रहेगी। अतएव सचमुच मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे इस तरह मेरे पीछे पड़ने का कारण क्या है?

बूँदी को स्मरण आ गया कि यही वह व्यक्ति है जो अपने विवाह के सम्बन्ध में स्वीकृति देने के सिलसिले में एक जगह लड़की देखने गया था। और अन्त में उसकी साधारण रूप-रेखा से ज़रा कम प्रभावित होने के कारण इसने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करवा दिया था।

बूँदी उठी और पास आकर ब्रजनाथ बाबू के मुँह की ओर एकटक देखने लगी। फिर बोली—मुँह तो इतना ख़ूबसूरत और उजला नहीं जान पड़ता; लेकिन ख़ैर।...हाँ, और कुछ?

अब की बार ब्रजनाथ बाबू को कुछ और शंका हुई। विस्मयाकुल भाव से उनके मुँह से निकल गया—मैं तुम्हारे सामने दया की भिक्षा माँगता हूँ बूँदी। अब बस करो। और अधिक मुझे अब मत सताओ। मुझे साफ़-साफ़ बता दो कि तुम हो कौन, किस प्रकार मेरी जीवन-भर की कमज़ोरियों का तुम्हें इतना अधिक पता लग सका—और मुझे इस प्रकार नीचा दिखाने में तुम्हें मिल क्या गया?

बूँदी इस बार हँसी और सिगरेट का धुआँ उसके ऊपर छोड़ती हुई बोली—इतने सस्ते छूटना चाहते हो! भला ऐसा भी कहीं हो सकता है!

ब्रजनाथ बाबू और भी आतंकित हो उठे। वे बोले—मुझे और अधिक मत सताओ बूंदी। मुझे कुछ ऐसा सन्देह हो रहा है कि रुपये की भूख इस षड़यंत्र का असली कारण नहीं है। असल बात तो कुछ और है।

बूँदी को एक-एक करके वे सारी बातें याद आ रहीं हैं, जो ब्रजनाथ ने प्रणय के चढ़ते रंग के समय वादों के रूप से उससे की थीं। उसे स्मरण आ गया कि यही वह व्यक्ति है, जिसने कहा था मैं तुम्हें प्राणों से अधिक...

प्यार करता हूं। मेरे समस्त जीवन की एक मात्र सफलता तुम हो। तुम्हें मैं कभी भूल नहीं सकता। एक यह जीवन क्या, अनन्त काल के लिए तुम्हारे प्रेम की डोरी में आबद्ध रहने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

बूँदी ने इसी क्षण गिलास में थोड़ी मदिरा डाली और गट-गट् पी ली। नशे से झूमती हुई वह कहने लगी—तो अब मुझे भी तुम बेवकूफ़ बनाना चाहते हो! मेरे हमेशा के लिए सोये और मुर्दा पड़े हुए सपनों को तुम जगाने की कोशिश कर रहे हो! क्यों?

अन्तिम शब्द एक धमकी के भाव से ओत-प्रोत होकर उसने कहे। तब ब्रजनाथ बाबू अत्यन्त मर्माहत हो उठे। बोले—मैं भगवान की शपथ लेकर कहता हूँ, तुम्हें किसी प्रकार की हानि पहुँचाने का इरादा मेरा क़तई नहीं है। मैं ये बातें सिर्फ़ इस खयाल से कह रहा हूँ कि अगर कभी भूल से भी मुझसे कोई गलती या अपराध हो गया हो, और तुम पर अब तक उसका असर बाक़ी हो, तो मैं उसका प्रायश्चित कर लूँ।

बूँदी ने इस समय इतना अधिक मुँह बनाया कि ब्रजनाथ बाबू के शरीर-भर में कपकपी-सी दौड़ गयी। वह यहाँ तक सोचने लगा—क्या इसका दिमाग़ कुछ फिर गया है? परन्तु तत्काल बूँदी ने एक तुच्छता का-सा भाव दिखलाते हुए कहा—भगवान् की शपथ! आदमियत का खून करनेवाले तुम लोगों को सबसे बड़ा और तेज़ औज़ार खुदा है। किसी की दौलत हड़पनी हो, इज्जत लूटनी हो, बस, खुदा के नाम का गड़ाँसा उसे जिबह करने के लिए तैयार है। चाहे जितनी ज्यादती, जुल्म और गुनाह होता रहे, मगर खुदा के नाम पर, तक़दीर और आक़बत की शकल में, सब बरदाश्त करते चलो!"···इसके बाद उसने फिर मुँह बनाया। वह बोली—कुत्ते कहीं के! उस वक्त भी तो तेरा यही भगवान मददगार रहा होगा जब तूने अपने रुपये के साथ-ही-साथ मालती के हिस्से का रुपया भी ट्रान्सफ़र करवाकर···मिल का शेयर खरीदा होगा।

अब ब्रजनाथ बाबू थर-थर काँपने लगे। हाथ जोड़कर वे बोले—मुझे माफ़ कर दो बूँद। मैं सचमुच अपराधी हूँ।

बूँदी ने कहा—मैं माफ़ करनेवाली कौन होती हूँ। माफ़ी माँग अपने उसी भगवान् से, जिसका नाम लेकर इटली के पादरियों और मुल्लाओं ने अपने मुल्क के नौजवान सिपाहियों को अबीसीनियाँ की रिआया के खून से अपने हाथ रँगने और उसे तहस-नहस करने के लिए आशीर्वाद देकर भेजा था। माफ़ी माँग अपने उस भगवान् से, जिसके नाम पर एक तरफ़ सेठों के मन्दिर में सुबह-शाम पूजा-आरती होती, शंख-घंट बजते और परसाद बाँटा जाता है, और दूसरी तरफ़ किसान भूखों मरते और मिलों के मजदूर लाठी और गोली खाते है। और दूसरी ओर मैं क्यों जाऊँ, क्या उस वक्त भगवान् ने तेरी मदद न की होगी 'जब तू ने एक बेगुनाह नौजवान लड़की से यह वादा करके उसकी असमत ली कि मैं तेरे साथ शादी कर लूँगा, लेकिन बाद में उसको नापाक क़रार देकर ठुकरा दिया। उसका दीनोईमान लेते और उसके अरमानों का खून करते वक्त भी तो तुझे उसी भगवान् को मदद मिली होगी!

अब ब्रजनाथ बाबू कहने लगे—तुम शायद वीणा की बात कह रही हो।

इसी समय "तुमको आज उस बेकश का नाम लेते शरम नहीं आयी!"—बूँदी ने कह दिया। आश्चर्य्य, संताप और दयनीय मुद्रा से ब्रजनाथ बाबू बोले—लेकिन तुमको उस वीणा का क्या पता! वह तो···वह तो···गंगा में डूब कर···।

दाँत पीस कर बूँदी बोली—पापी, हत्यारे! वह गंगा में नहीं डूबी, वह नरक के कुँड में डूबी थी और अब मुजस्सिम तेरे सामने है।

चाहिये तो यह था कि बूँदी के रूप में वीणा को पाकर ब्रजनाथ बाबू मर्माहत हो उठते; किन्तु उसकी प्रतिहिंसा को ही लखकर वे बोले—"तो तुमने आज उसी का यह बदला चुकाया है!" फिर इस कथन के साथ-ही वह कुछ सोचते हुए कुरसी पर बैठ गये।

बूँदी बोली—तुमने सोचा होगा कि हम जिन्दगी भर मौज उड़ाते रहेंगे; क्योंकि वीणा तो मर चुकी है। मेरा कोई कर क्या लेगा! लेकिन

तुमने यह न सोचा कि पाप स्वयं अपना मुँह खोलकर चलता है। मनुष्य उस पर एक सीमा तक ही आवरण डाल सकता है।

"लेकिन तुमको मेरी इन गुप्त-से-गुप्त बातों का पता कैसे चला वीणा?"

वीणा मदिरा ढाल रही थी। रूमाल से मुँह पोंछने के बाद बोली—वीणा जैसे प्यारे नाम से मुझे मत पुकार पापी!

"तुम अब तो मुझे क्षमा कर दो, वीणा! (वह फ़र्श पर घुटनों के बल बैठ गया) मैं घुटने टेककर तुमसे क्षमा माँगता हूँ।"

किन्तु झूमती हुई वीणा बोली—मेरे बदन का रोआँ-रोआँ जैसे जल रहा है। मेरे शरीर का अणु अणु प्रतिहिंसा के खौलते कड़ाहे में, बुलबुलों के साथ, तैर रहा है। मुझसे बोल मत पापी।...हाय मैं नागिन हूँ, नागिन। तुझे पता नहीं है कि तू ने मुझ पर पैर रख दिया था। आज मैंने मौक़ा पाकर तुझे चबा लिया है। जा अपना इलाज करा। नहीं तो...।

कहते-कहते वीणा मत्थे पर हाथ मार कर फ़र्श पर गिर पड़ी!

ब्रजनाथ को अब चेत आया कि उसने कब, किस समय, क्या ग़लती की है। किन्तु उसको कोई महत्व न देकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—ख़ैर, मैं जिस योग्य था, उसका फल मुझे मिल गया। अब आँखें खोलो और मुझको यह बतलाओ कि अब मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ।

किन्तु इधर-उधर देखता हुआ सोचने वह यही लगा कि यदि किसी तरह मैं रुपये उड़ा सकूँ, तो कितना अच्छा हो!

वीणा के मुँह से कोई उत्तर न निकल सका।

थोड़ी देर में जब ब्रजनाथ चलने लगा, तो वीणा ने स्वयं ही नोटों का बण्डल उसके पास फेंक दिया।

चलते क्षण वही बण्डल उठाता हुआ ब्रजनाथ चोर की भाँति चारों ओर निगाह दौड़ा कर देख रहा था कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है।

सत्ताइस

प्रकाश की जो रश्मियाँ बिजली से दौड़ती हैं, वे जगत के वाह्य अन्धकार को जिस प्रकार नष्ट कर देती हैं, उसी प्रकार मनुष्य के चेतन मस्तिष्क और हृदय-जगत् में भी कुछ विद्युद्धाराएँ दौड़ा करती हैं। वे हमारे अणु-अणु को स्पर्श करती हुई शरीर भर में एक अभिनव पुलक की सृष्टि कर देती हैं। आनन्द की चरम परिणति का वही एक मात्र अवसर होता है। जीवन के नाना स्थूल व्यापारों में आनन्द की जो भी सीमा रेखायें देख पड़ती हैं, उसी परिणति के साकार रूपान्तर को स्पष्ट करती हैं।

पर इस समस्त जीवन पर राज्य करनेवाली यह विद्युत्शक्ति है कौन-सी ?

वह है आत्मदान।

विनायक ने चुपचाप सुन तो लिया कि मालती की कृपा से ही उसको यह ट्यूशन मिला है। किन्तु तब से वह अनेक बार यह भी सोच चुका है कि यह ठीक नहीं हुआ। बात छब्बीस तारीख के लगभग हुई थी। ज़्यों-त्यों करके उसने चार दिन और बिता दिये। अन्त में तीस तारीख को ही उसने एक पत्र डाल कर मालती को सूचित कर दिया कि जिस अहसान के बोझ से मैं इस महीने-भर दबा रहा, आज मैं उससे छुट्टी ले रहा हूँ। अब मैं कल से आ न सकूँगा। पत्र लम्बा था और उसमें उसने मुख्य रूप से इसी प्रश्न पर प्रकाश डाला था कि आपने मेरे ऊपर जो कृपा की है, मैं उसे कृपा के रूप में स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। मैं नहीं मानता कि कोई आदमी किसी के साथ कृपा करता है। मनुष्य में एक वृत्ति होती है, जो अपने से हीन, असमर्थ और अनाश्रित व्यक्ति को सहायता देकर सन्तुष्ट हुआ करती है। उसमें एक बड़प्पन का भाव होता है। वह इसमें एक गौरव का अनुभव करती है कि उसके द्वारा किसी अधिकारी व्यक्ति को कुछ लाभ हो जाय। उसी वृत्ति से प्रेरित होकर आपने मुझे यह ट्यूशन दिला दिया था। पर आपने इसमें क .स्वार्थ-त्याग किया, यह मैं नहीं मानता। मैं यदि यह ट्यूशन बराबर स्वीकार किये रहूँ, तो आपके प्रति

कृतज्ञता का भाव मुझे बराबर दबाये रहेगा जब कभी आप मिलेंगी, मैं सोचूँगा, मैं इनका कितना आभारी हूँ! उस समय मेरी स्वतंत्रता अपना अस्तित्व संकटापन्न देखेगी। मैं अपने भीतर एक हीनभाव का अनुभव करने को विवश होऊँगा। इससे यह कहीं अच्छा है कि जहाँ कहीं भी मैं काम पाऊँ, इस भाव से पाऊँ कि अवसर को देखते हुए मैं ही इसका एक मात्र अधिकारी हूँ। उस समय मेरी स्वतंत्रता पर तो किसी तरह का बोझ न होगा। मैं वार्तालाप और विचार विनियम में सर्वथा स्वतंत्र तो रहूँगा। आपको यदि इस बात का अहङ्कार है कि आप मेरे ऊपर कृपा कर सकती हैं, तो मुझे इस बात का भी गौरव है कि मैं अपनी स्वतन्त्रता किसी भी क़ीमत पर बेच नहीं सकता। परिणाम की बात सामने हो, तो मैं यहाँ केवल इतना कहना चाहता हूँ कि मैं भूख की पीड़ा से तड़प-तड़प कर मर भी सकता हूँ। परन्तु मैं दयनीय नहीं बन सकता। आपने मुझे समझ क्या रक्खा है?

"यहाँ एक बात मैं और स्पष्ट कर दूँ कि कृपा करने और उपकृत होने की रूढ़ि भी वास्तव में पूँजीजीवी समाज की ही देन है। निरन्तर शोषण कर पाने की परिस्थितियाँ बनी रखने की यह एक नीति रही है कि एक ओर तो मनुष्य का इतना असमर्थ और असहाय बना दिया जाय कि वह उठ न सके। दूसरी ओर उस पर दया-दाक्षिण्य दिखलाकर भड़कते हुए असंतोष को ठंढा कर दिया जाय। किन्तु मैं मनुष्य को दयनीय समझने की इस वृत्ति से ही घृणा करता हूँ। बल्कि मैं तो असल में मनुष्य को दयनीय बनानेवाली सत्ता का ही शत्रु हूँ।

पत्र पहुँचते ही मालती ने जो उसे देखा, तो पहले तो वह सन्न रह गयी, पर फिर उसे ज़रा भी बुरा नहीं मालूम हुआ। वरन् उसके भीतर विनायक के लिए आदरभाव पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया। वह सोचने लगी, यह आदमी अपने विचारों और विश्वासों का आदर करना जानता है। इसके अन्दर दृढ़ता है। यह कष्ट सहन कर सकता है। प्रलोभन इसको व्रत से विचलित नहीं कर सकते!

मालती पत्र पढ़कर टेबिल पर रखना ही चाहती थी कि उसी स
आ पहुँची पूर्णिमा। मुसकराती हुई बोली—किसका पत्र है? प
हुई बहुत प्रसन्न हो रही हो!

मालती ने पत्र पूर्णिमा के हाथ में दे दिया। पूर्णिमा ने पढ़ा, तो प
तो वह चकित रह गयी। फिर उसने कहा—तुमने बेकार में चिढ़ा दिय
अहसान का पहाड़ ऊपर रक्खे बिना संतोष नहीं हुआ। ख़ैर। इससे
बहस नहीं। पर इस तरह का आदमी दरिद्रता का जीवन बिताये और बिल
हम लोगों की सांस्कारिक स्वाभाविक चुहलबाजियों द्वारा, यह तो
नहीं है।

पर मालती खिलखिलाती ही रही। बोली—एक तो इस आ
में 'सेंस आफ़ ह्यूमर' नहीं है, दूसरे यह इनफ़ीरिआरिटी काम्प्लैक्स से
है। ऐसी दशा में हम कर ही क्या सकते हैं।

बात यहीं समाप्त नहीं हो गई। पूर्णिमा ने यह पत्र तारिणी को
दिखलाया। तारिणी कुछ बनकर बोली—मुझे तो इन सब प्र
को सोचने की छुट्टी है नहीं। योग्य आदमी का मैं आदर करती
परन्तु योग्यता का दम्भ मुझे स्वीकार नहीं होता। मैं तो सोच रही
कि तीस के बजाय मैं उन्हें अगले मास से पचास रुपये दूँगी। पर
तो वह बात भी गयी।

चिन्तित पूर्णिमा बोली—लेकिन जीजी, सोचो तो सही, तुम
क्या जारही हो। यह कितना अच्छा हो कि यही बात तुम एक पत्र
लिख दो। उस में यह भी स्पष्ट कर दो कि इस बार यह प्रस्ता
अपनी प्रेरणा से ही आपके सम्मुख रख रही हूँ। इसमें कृपा अगर वि
पक्ष में सम्भव हो सकती है, तो केवल आपके पक्ष में। हम लोग
आभारी होंगे। तात्पर्य्य यह है कि आपको हम किसी तरह छोड़ेंगे नहीं

पहले तारिणी बोली—'मैं इस झंझट में नहीं पड़ती।' पर जब उ
देखा कि इस उत्तर का पूर्णिमा पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा, तो वह बोली

अच्छा, तुम अगर ऐसा चाहती हो तो तुम्हारी खातिर मैं माने लेती हूँ। पर शर्त यह है कि चिट्ठी तुम्हीं को लिखनी पड़ेगी।

वात कहती हुई तारिणी बरावर पूर्णिमा की ओर देखती रही।

पूर्णिमा ने कहा—इसमें क्या है? पत्र मैं लिख दूँगी, हस्ताक्षर तुम कर देना।

तारिणी बोली—अच्छी वात है। मैं हस्ताक्षर कर दूँगी। पर मेरा एक प्रस्ताव और है। अवकी वार जब विनायक वावू आवें, तो उनसे कहा जाय कि मालती कहती थीं, मेरी एक वार की डाँट का तो इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि बीस रुपये मासिक वढ़ गये। यदि मैं निरन्तर झिड़कियाँ देने का अवसर पाऊँ, तव तो विनायक वावू मालामाल हो उठें।

"लेकिन जीजी तुम यह कह क्या रही हो!" आश्चर्य्य से ओतप्रोत होकर पूर्णिमा वोली—जानती हो, विनायक वावू इसका क्या अर्थ लगायेंगे? यह आदमी भीतर से इतना कड़ा और उग्र है कि व्यङ्ग-विनोद का भी उत्तर गम्भीर होकर देता है। कहीं कोई ऐसी वात न कह दे जो हमारे लिए अपमानजनक हो!

तारिणी ने उत्तर दिया—तुम इसकी फ़िकर मत करो। कई दिन से माँ जी मुझसे विनायक वावू के सम्वन्ध में पूछ-ताँछ कर रही है। वे इस वात पर राज़ी हैं कि अगर मालती स्वीकार कर ले, तो वे अपने हिस्से का सारा रुपया विनायक का भेंट कर देंगी।

पूर्णिमा ख़ुशी के मारे नाच उठी। विस्मयान्वित होकर वोली—पर तुम कहती क्या हो जीजी! ऐसा भी कहीं हो सकता है!

तारिणी ने उत्तर दिया—क्यों नहीं हो सकता? तीन विषयों का एम० ए० उसे अव तक तो मिल नहीं सका। और अव मिल ही जायगा, इसका भी कोई भरोसा नहीं है।

"लेकिन मालती स्वीकार ही क्यों करने लगी"—पूर्णिमा ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा।

"तुम तो हो पगली" तारिणी बोली—माँ कह रही थीं कि अगर

मालती अपने हृदय में विनायक बाबू के लिए कहीं कोई जगह न रखती होती, तो...तो सुशील को पढ़ाने के लिए उसे यहाँ रखने का प्रस्ताव वह कभी न करती।

पूर्णिमा के नेत्र तक जैसे हँस रहे थे। उसके मुँह से निकल पड़ा—अच्छा! माँ ऐसा कह रही थीं!—माँ!!

"उनका यह भी कहना था"—तारिणी कहती रही—अगर उनके प्रति उसके मन में अनुराग न होता, तो वह उनके साथ-साथ गाड़ी पर जाने को कभी तैयार न होती।

पूर्णिमा के पैर जमीन पर अस्थिर हो रहे थे। वह बोली—माँ ने अध्ययन खूब किया है।

तारिणी बराबर कहती जारही थी—उन्होंने एक दिन यह भी देखा था कि विनायक बाबू से वह इस तरह बातें कर रही थी, जैसे...जैसे एक के सिवा दूसरा कोई कभी कर ही नहीं सकता।

यहीं पर पूर्णिमा को थोड़ी आपत्ति थी। वह बोली—परन्तु बीबी के लिए यह कोई नयी बात तो है नहीं। आये दिनों अकसर ऐसी सम्भावनाएँ देख पड़ती रही हैं; परन्तु परिणाम सबका नकारात्मक ही रहा है।

तारिणी बोली—मेरी चलेगी, तो मैं इस बार ऐसा कदापि न होने दूँगी।

तीसरे दिन शाम की बात है। स्वदेशी-प्रदर्शिनी के कारण सायंकाल मालरोड पर चहलपहल विशेष है। मालती, तारिणी, पूर्णिमा और रेणु सब घूमकर थक गयी हैं। इस चक्कर के समाप्त होते ही सब चली जायँगी। एकाएक कपड़े की एक रेशमी दूकान पर रुककर तारिणी बोली—कोई साड़ी ही पसन्द करो पूनो।

पूर्णिमा बोली—रेणु दीदी, इस बार तुम्हारी पसन्द हम लोग देखना चाहती हैं।

रेणु सकुचा गई। बोली—बना लो, बना लो खूब। विनायक बाबू सामने होते, तो देखती, कैसे मुझे बना पाती हो!

मालती हँसती हुई बोली—यानी विनायक बाबू जैसे कोई डरावने जन्तु हों। बात कहकर रूमाल उसने मुख पर लगा लिया।

रेणु साड़ी देखने लगी।

पूर्णिमा बोली—उनकी भी दवा हो रही है दीदी। बस, थोड़ी ही कसर है।

मालती को देख कर एक खद्दरधारी ने इसी समय नमस्कार किया।

मालती बोली—ओः तुम हो विपिन। कहो, अच्छे तो हो?

"आपकी कृपा है।"—विपिन बोला—आपको शर्म्माजी ने याद किया है।

आश्चर्य्य से मालती ने पूछा—मुझको? आप शायद भूल रहे हैं। न्होंने भाभी को बुलाया होगा।

बात कहते हुए उसने रेणु की ओर देखा भी।

विपिन के होठों पर मुसकान फूट पड़ी। आप सोचती हैं, मैं आपको ा माँ जी को पहचानता नहीं हूँ?

रेणु बोली—ठीक तो है, हो आओ न। इस तरह तर्क-वितर्क क्यों र रही हो?

मालती शर्म्मा जी के पास जा रही है।

वह चलती हुई कुछ सोच रही है। कुछ चित्र उसके मानस-पट पर आ हे हैं। अभी कल रेणु उससे मिल चुकी है। कई घंटे वह उसकेकमरे में पड़ी ही थी। रञ्जन बाहर खेल रहा था। अनेक तरह की बातें रेणु ने की थीं।

आते ही मैंने पूछा, अच्छी तो हो भाभी, तो उन्होंने एक निःश्वास ळया और वे बोली—हाँ, अच्छी ही हूँ।

"क्या मतलब?" एकाएक आश्चर्य्य से मैंने पूछ दिया था।

वह बोली—मतलब यह है कि मैं तुम्हारे शरण आयी हूँ। मेरी रक्षा रो बहन!

बात कहते हुए उसकी आँखें भरी हुई थीं। पलक भीग रहे थे।

मैंने कहा—साफ़-साफ़ कहो, क्या बात है? मैं तुम्हारे लिए सब छ कर सकती हूँ।

रेणु रो पड़ी थी। बोली—मैं एक भीख माँगती हूँ।

१५

मैंने कहा—कहो न भाभी, मैं प्राण देकर भी तुम्हारी बात रखूँगी।

वह बोली—मैं हार मानती हूँ। वे कभी स्वीकार नहीं करेंगे कि तुम्हें कितना चाहते हैं। तुम उनकी दशा देख रही हो; कितने दुर्बल हो गये हैं! वे कभी तुमसे कहेंगे नहीं कि तुम उनकी प्रेयसी हो। वे प्राण तक दे देंगे। तुम कुछ ऐसा करो कि वे अपने साथ अत्याचार न करें। वे तुमसे हँसें, बोलें, घूमें। तुम्हारे साथ चाहे जिस तरह रहें, मुझे कभी कोई आपत्ति न होगी। किसी तरह तो वे प्रसन्न रहें, किसी तरह उनका जीवन तो सुरक्षित रहे। विचित्र बात है बहन। मैं तो समझ ही नहीं सकती। कहते थे प्रेयसी, प्रेयसी तो देवी होती है। वह अर्चना की वस्तु है। उसके साथ कहीं ब्याह हो सकता है? विवाह तो देवी को नारी बना डालता है। विवाह तो शरीर के उन स्थूल व्यापारों से सम्बद्ध है, जिनसे गन्ध आती है।—जो बासी पड़ते-पड़ते अन्त में सड़ तक जाते हैं। किन्तु प्रेयसी तो प्राणेश्वरी होती है। विवाह तो भूख-शांति का एक मार्ग है। किन्तु तृष्णा जो अजर होती है, उसकी शान्ति तो प्रेयसी ही करती है अपने आत्मदान से। वह बदला नहीं चाहती। उसे कोई कांक्षा नहीं होती। वह अर्पित ही करती चलती है। किन्तु पत्नी? वह तो बदला चाहती है। चाहती है कि वह कुछ पाये, उसको कुछ प्राप्त हो। कल्पना पर उसका निवास नहीं होता। मानसिक पूजा का जो एक सौन्दर्य्य होता है, एक माधुर्य्य होता है, वह उससे दूर रहती है। वह नश्वर है।

मैं मौन रही। कुछ मेरी समझ में न आया, क्या उत्तर दूँ। तब वह बोली—मुझे क्षमा कर दो मालती। मैंने तुमको दोषी समझा था। मैं उनको भी दोषी समझती थी। किन्तु मैं स्पष्ट देख रही हूँ कि वे बहुत ऊँचे हैं। हम लोग उन्हें पा नहीं सकते।

मैं तब भी मौन रही।

तब वे फूट फूटकर रो पड़ीं। रोती हुई ही वे बोलीं—तुम अब अपने वचन की रक्षा करो मालती। उन्हें बचा लो। नहीं तो वे···वे मालूम नहीं अपने को क्या कर डालेंगे।

उत्तर में मैं इतना ही कह सकी—मैं कोशिश करूँगी।

और इस समय मालती चली तो जा रही है; पर उसके हृदय की गति तीव्र है और पैर कभी-कभी जैसे काँप उठते हैं। उसके मन में आता है, वह कहेगी क्या? वह यह भी सोचती है—लेकिन वे मुझसे चाहते क्या हैं? मैं तो उन्हें तंग नहीं करती, मैं तो उनसे मिलती भी नहीं।

उसकी आँखें भर आना चाहती हैं।

इसी क्षण विपिन ने कहा—बस यहीं हैं। वह आ रहे हैं, वह।

शर्म्माजी के निकट आते ही विपिन अलग हो गया।

पास आने पर शर्म्माजी बोले—बहुत आवश्यक काम आने पर भी तुमको याद न करूँ, यह मुझसे हो नहीं सका। जानता हूँ, तुम मुझसे नाराज़ हो। लेकिन आज मैं तुमको नाराज़ नहीं करूँगा। घड़ियाँ टल रही हैं। किसी भी क्षण मैं सरकार के निमंत्रण पर जा सकता हूँ। ऐसी परिस्थिति में पत्र का काम कौन सम्हालेगा, कुछ सोचा है? पत्र के सम्पादन का चार्ज मैं विनायक को और व्यवस्था तुमको सौंप रहा हूँ।'

मालती मौन है। वह क्यों कहे कि मैं तैयार हूँ। जहाँ हृदय का मेल नहीं है, वहाँ कर्म का मेल कैसे हो सकता है।

तब शर्म्माजी आप ही बोले—तुम बुरा मान गयी हो। लेकिन मैंने तुमको कभी अपने से दूर नहीं समझा है। कितनी पीड़ा, कितना दर्द मैंने सहन किया है, तुम न जान सकोगी। किन्तु क्या सब बातें कहने से ही जानी जाती हैं? मुझे मालूम है, तुम विवाहित-जीवन को आदर्श नहीं मानतीं। तुम्हारे हृदय में विवाह-प्रथा के प्रति घृणा भी कम नहीं है। किन्तु तब तुमने यह सार्वजनिक सेवा का व्रत क्यों ले रक्खा है? जीवन के प्रति तुम्हें प्रयोग ही करना था, तो अपने मार्ग पर नित नव प्रयोगों के लिए तुमको कोई कमी तो थी नहीं। यहीं तुमसे भूल हो गयी है। जो भी हो, तुमको तो अब आदर्श की ओर ही जाना पड़ेगा। समाज की प्रतिष्ठा प्राप्त किये बिना तुम उसका परिवर्तन कैसे कर सकोगी? क्या तुमको सहन होगा कि तुम कहीं व्याख्यान दे रही हो, लोग श्रद्धापूर्वक

तुम्हारा एक-एक शब्द सुन रहे हैं। ऐसी स्थिति में कोई तुम्हारा परिचय देता हुआ कहे, यह इतनी स्वेच्छाचारिणी हैं कि नित्य नये-नये प्रेमी खोजती रहती हैं। माना कि वे गलत कह रहे हों; पर तुम उनका मुँह कैसे बन्द करोगी?

"फिर विवाह के प्रति समाज में कहीं-कहीं जो विरोध देख पड़ता है, क्या यह विवाह-जीवन के दोषों की एक कटु प्रतिक्रिया नहीं है? मैं यह नहीं कहता कि विवाह प्रेम की आदर्श कल्पना है। किन्तु समाज निर्माण के लिए, अब तक, विवाह से उत्तम दूसरी कोई आदर्श कल्पना भी तो स्थिर नहीं हुई है। फिर अविवाहितजीवन भी तो विकृतियों से परे नहीं है। मैं पूछता हूँ—क्या मैं तुमको पा नहीं सकता? किन्तु फिर क्या रेणु का गला घोंट दूँ? और इसकी ही क्या गारंटी है कि मुझको पाकर तुम पूर्ण ही हो जातीं। पूर्ण कभी आदमी हो सका है? जो लोग सोच-सोचकर आगे पैर रखते हैं, वे साहसहीन हैं, कायर हैं; तो जो लोग बिना आगे सोचे-समझे दौड़ते हैं, क्या वे अबोध नहीं हैं?

"किन्तु आपतो मुझसे घृणा करते हैं।"—मालती बोली। उसकी आँखों से जैसे ज्वाला फूट रही थी।

"कौन कहता है कि···?"

"मैंने अपने कानों से सुना है।"

"तुमने गलत नहीं सुना; मैंने गलत समझा हो, यह बात दूसरी है। किन्तु मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि तुम जन-सेवा के इस पवित्र पथ में पूर्ण समर्थ बनो। अतीत के दोषों और अपराधों को वर्तमान की छाती पर लादना मैंने छोड़ दिया है। तुम पहले चाहे जैसी रही हो, किन्तु आज तो मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। तुम्हें मालूम नहीं, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मालती।

रेणु, तारिणी और पूर्णिमा मुख्य द्वार पर खड़े-खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं। बातें करते उसी ओर जाते हुए मालती के दक्षिण कर को शर्म्माजी ने अपने हाथ में ले लिया है। प्रदर्शिनी का समय हो जाने के कारण बिजली की बत्तियाँ बुझती हुई देखकर शर्म्माजी बोले—अरे, लाइट आफ़ हो रही है।

उत्तरंग मालती बोली—नहीं तो।

"देख नहीं रही हो, प्रकाश कितना क्षीण है? बत्तियाँ बुझ गयी हैं।"

"मैं तो कुछ और देख रही हूँ। मेरे सामने तो एक ज्योतिपुञ्ज है।"

शर्म्माजी मुसकराकर हाथ छोड़ देते हैं।

इसी समय पीछे से आ गया विनायक। बोला—शर्म्माजी।

आवाज सुनकर शर्म्माजी खड़े हो गये।

विनायक उनके कान के पास जाकर फुसफुसाने लगा।

शर्म्माजी बोले—मैं भी तैयार हूं।

रेणु के पास पहुँचते-पहुँचते विपिन भी मिल गया। सब लोग द्वार से निकलने लगे। द्वार पर वे अभी आये ही थे कि देखते क्या हैं—एक युवती चिथड़े लपेटे हुए है; फिर भी उसके गुप्तांग पूरे ढक नहीं पाते। वह कुत्तों को ढेला मारती है, किन्तु वे दूर हटते-हटते, फिर निकट आ-आकर उसको घेर लेते हैं। वे भौंक रहे हैं। किन्तु वह पागल युवती संगतिहीन भाषा में कह रही है—बेकार भौंकते हो। अरे पागलो, क्या मैं तुम्हारी जाति की हूँ? क्या मेरे कोई है नहीं?'''मेरा स्वामी नुमायश देखने गया है। लौटने दो, मैं कैसी मरम्मत कराती हूं।

वह जिसे देखती है, उसी की ओर संकेत करके कह उठती है—'तुम भी नहीं हो! तुम भी नहीं हो!' जरा ठिठुककर वे लोग आगे बढ़ गये। मालती अपनी भाभियों से जा मिली। विनायक शर्म्माजी के ताँगे में बैठ गया। जब ताँगा चलने को हुआ, तो शर्म्माजी बोल उठे—विपिन कहां है? उन्होंने विनायक से कहा—जरा देख तो लेना, कहाँ रह गया।

विनायक विपिन को इधर-उधर खोजता रहा। अन्त में जब वह नहीं मिला तो उसे भी लौट जाना पड़ा।

घर पहुँचने पर दो घंटे बाद शर्म्माजी गिरफ़्तार कर लिये गये। उनके चलते-चलावे बहुत से लोग वहाँ जमा हो गये थे।

मालती के साथ पूर्णिमा भी आगयी थी। क्रम-क्रम से अनेक फूल-मालाएँ उन्हें पहनायी गयीं। मालती ने भी एक माला पहनायी।

पूर्णिमा बोली—इस समय मैं एक सुसंवाद भी आपको देना चाहती हूँ शर्माजी।

उसने अपना दाहना हाथ विनायक के कन्धे पर रख कर इशारे से कहा—शरमाओ मत।

किन्तु विनायक को उस दिन का स्वप्न याद आ रहा है।

उत्फुल्ल शर्म्माजी ने कह दिया—सुनाओ-सुनाओ। जल्दी करो। मैं भी खुशी मना लूँ।

फिर उन्होंने देखा, विनायक इधर-उधर झाँकने लगा है और सकुचाती हुई मालती जैसे मना करती करती कह रही है—पर वह तो बाद की बात है। अभी से···।

शर्म्माजी कुछ ताड़ गये। प्रसन्नता से उछलते हुए बोले—दोनों को मेरी बधाइयाँ हैं—हजार-हजार बधाइयाँ!

रेणु ने मालती को छाती से लगा लिया है। उसके नेत्र भर आये हैं।

अन्त में जब शर्म्माजी घर से बाहर होने लगे, तो रञ्जन बोला—मैं भी चलूँगा बाबू, मुझे भी ले चलो।

गिरधारी ने ऊपर उठाकर उसका चुम्बन लेते हुए कहा—तुम यहीं रहो, मैं तुम्हारे लिए तस्वीरें ले आऊँगा। अच्छा।

पर रञ्जन कह रहा था—लाल तस्वीरें लाना, अच्छा बाबू।

माल रोड पर—

अब प्रकाश और भी मन्द पड़ गया है। कहीं कोई देख नहीं पड़ता। हाँ, थोड़ी दूर पर एक छाया अवश्य देख पड़ती है। दो व्यक्ति जा रहे हैं। उसके लम्बे केश बिखरे हुए हैं। उसकी साड़ी का छोर जमीन पर घसिटता जा रहा है! साथी उसे ठेल रहा है और ऐसा जान पड़ता है, मानो कह रहा हो—इधर चलना है, इधर।